रहो भीतर जीओ बाहर

आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती प्रकाशन

प्रकाशक :
आदर्श साहित्य विभाग
जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-341306
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (01581) 226080,224671
ई-मेल : books@jvbharati.org

Books are available online at
http://books.jvbharati.org

ISBN : 978-93-89793-57-4

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

द्वितीय संस्करण : सितम्बर 2021 (1000 प्रतियां)

मूल्य : 220/- (दो सौ बीस रुपये मात्र)

मुद्रक : पायोराईट प्रिन्टर्स, जयपुर

RAHO BHITAR : JIYO BAHAR by Acharya Mahapragya ₹ 220/-

श्रद्धार्पण

अध्यात्म की साधना का मौलिक तत्त्व है भीतर में रहना। भीतर में रहने वाला व्यक्ति आध्यात्मिक होता है और बाहर रहने वाला व्यक्ति भौतिक दृष्टिकोण वाला होता है। पदार्थों में अनासक्त रहना और आत्मा से आकर्षण रखना भीतर में रहना होता है। पदार्थों में आसक्त रहना और आत्मा में अरुचि रखना बाहर रहना होता है।

शरीरधारी को पदार्थों की दुनिया में जीना होता है। पदार्थ-निरपेक्ष होकर जीवन नहीं जीया जा सकता। खाना भी होता है, पीना भी होता है और भी कार्य करने होते हैं। इन संदर्भों में पदार्थों को काम में लेना होता है। पदार्थों का उपयोग करना एक बात है और उनका उपभोग करना दूसरी बात है। भीतर में रहने वाला व्यक्ति आवश्यकतानुसार पदार्थ का उपयोग करता है, परंतु आसक्ति के साथ वह उसका उपभोग नहीं करता। आसक्तिमुक्त चेतना के साथ पदार्थों को काम में लेना पदार्थों का उपयोग है और आसक्ति के साथ पदार्थों का सेवन करना पदार्थों का उपभोग होता है। आध्यात्मिक चेतना वाला व्यक्ति इस सूत्र को ध्यान में रखे कि मैं पदार्थों का उपयोग भले ही करूं, परंतु उनका उपभोग न करूं। अनासक्ति के साथ पदार्थों का उपयोग करना ही 'रहो भीतर जीओ बाहर' का मूल मंत्र है।

परमपूज्य परम वंदनीय युगप्रधान आचार्यश्री महाप्रज्ञजी अध्यात्म के अनंत आकाश के एक उज्ज्वल नक्षत्र थे। वे प्रवक्ता और प्रलेखक भी थे। वर्तमान में उनकी जन्म शताब्दी का वर्ष चल रहा है, जो 'ज्ञान चेतना वर्ष' के रूप में अभिहित किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'रहो भीतर जीओ बाहर' भीतर में रहने की प्रेरणा देने वाली सिद्ध हो। इस भावना के साथ परमपूज्य गुरुदेव के प्रति मेरा श्रद्धार्पण।

बल्लारी (कर्नाटक)
1 जनवरी 2020

गुरुदेव का अंतेवासी शिष्य
श्रद्धाप्रणत आचार्य महाश्रमण

अनुक्रम

1. मुझे आत्मा में रहना है	7
2. आत्मा का अनुभव करें	11
3. आत्मा और पदार्थ	15
4. शरीर और आत्मा	19
5. शरण है शुद्ध चेतना	28
6. स्व को समझें	35
7. स्वयं से परिचय करो	38
8. स्वयं को जानो	44
9. अपने भीतर जाओ	52
10. कैसे करें चेतना में प्रवेश?	59
11. प्रवेश करें अतीन्द्रिय चेतना में	64
12. परम तत्त्व को भीतर खोजो	72
13. कठिन है अपनी पहचान	79
14. रास्ता अपने भीतर जाने का	86
15. ध्यान : साक्षात्कार की प्रक्रिया	93
16. ध्यान है जीने की कला	98
17. ध्यान की भूमिकाएं	102
18. ध्यान : स्वयं के साथ रहने का सूत्र	108

19. ध्यान : इन्द्रिय प्रतिसंलीनता का द्वार 112
20. मनोगुप्ति और ध्यान 118
21. कायोत्सर्ग 124
22. श्वास : एक विश्लेषण 132
23. रूपांतरण का उपाय : लेश्याध्यान 141
24. चंचलता और एकाग्रता 145
25. मन को पकड़ने की चाबी 149
26. अभ्यास करें भावना का 155
27. मैं अकेला हूं 160
28. शांति का हेतु है निवृत्ति 168
29. सौंदर्य आचार और व्यवहार का 176
30. खोज करें समाधि की 182
31. कैसे जीएं? 188
32. इन्द्रियातीत सुख 193
33. सुख की नींद 198
34. अव्यक्त को व्यक्त कैसे करें? 205
35. विकास हो नियंत्रण की शक्ति का 208
36. संतुलन प्राण का 216
37. चक्रव्यूह तोड़ें आसक्ति का 221
38. संतुलन राग और विराग में 230
39. वर्जन करें राग और द्वेष का 234
40. अनुशासन : एक उपाय 239
41. चैतन्य विकास के सूत्र 247
42. साधना में मंत्रों की भूमिका 254

1. मुझे आत्मा में रहना है

मैं प्रायः एक प्रश्न पूछता हूं कि आपने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया है या बिना प्रयोजन ही जी रहे हैं। जीवन का लक्ष्य सामयिक नहीं होना चाहिए। सामयिक लक्ष्य तो हमारे बहुत बनते हैं। एक केन्द्रीय लक्ष्य होना चाहिए कि मुझे क्या बनना है? कहां तक पहुंचना है? उत्तराध्ययन सूत्र में एक बड़ा प्रश्न पूछा गया–तुम इस शरीर का बोझ क्यों ढो रहे हो? शरीर की तुम्हें जरूरत क्या है? क्यों शरीर की इतनी सेवा कर रहे हो? आदमी जितनी सेवा शरीर की करता है, उतनी सेवा किसी की नहीं करता। चौबीस घंटो में शायद आठ से दस घंटे अपने शरीर की सेवा में ही बिता देता है। उत्तर दिया गया–ऊर्ध्व यात्रा के लिए और अर्जित संस्कारों का शोधन करने के लिए हम इस शरीर को धारण कर रहे हैं। बहुत जरूरी है संस्कारों का शोधन करना। जो संस्कार हमने अर्जित किए हैं, जो संस्कार हमारे भीतर समस्या पैदा कर रहे हैं, अशांति पैदा कर रहे हैं, झगड़ा पैदा कर रहे हैं, उन संस्कारों का शोधन कैसे हो? पारिभाषिक शब्दावली में निर्जरा कैसे हो? एक लक्ष्य बन जाए कि मुझे वह जीवन जीना है, जिसमें संस्कारों का शोधन होता रहे, अतीत का शोधन होता रहे, अतीत का परिमार्जन और परिष्कार होता रहे और वर्तमान में अच्छा जीवन जी सकूं।

शरीर-धारण का लक्ष्य

पुव्वकम्मखयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे ।

पूर्व कर्मों को क्षीण करने के लिए इस शरीर को तुम धारण करो। चेतना का विकास करना हमारा केन्द्रीय लक्ष्य होना चाहिए। उसके साथ बहुत सारी बातें आ जाती हैं। चेतना का विकास है आरोग्य, उसमें स्वास्थ्य आ गया। चेतना का विकास है मानसिक शांति, मन की शांति। जब-जब शरीर में आते हैं, लड़ाई-झगड़ा, राग-द्वेष-कलह करते हैं। जब-जब आत्मा में आते हैं,

सारे विग्रह समाप्त हो जाते हैं। मैं कभी-कभी पूछता हूं कि चौबीस घंटे का लेखा-जोखा करो कि कितने घंटे शरीर में रहते हो और कितने घंटे आत्मा में रहते हो? सबको सोचना है, देखना है।

हमारे दो निवास स्थान हैं–एक हमारा निवास स्थान है आत्मा और एक हमारा निवास स्थान है शरीर। लक्ष्य बनाओ कि मुझे आत्मा में रहना है। अगर यह हमारा केन्द्रीय लक्ष्य बन जाता है कि मुझे आत्मा में अधिक रहना है तो लड़ाई-झगड़ा, कलह, परस्पर में अनबन, वैमनस्य, द्वेष सारे समाप्त हो जाएंगे। आत्मा में केवल परम शांति है, समाधि है और कुछ नहीं है।

भीतर : बाहर

जब-जब लड़ाई-झगड़े करते हैं सोच लेना चाहिए कि अब शरीर में आ गए हैं। जब शरीर में आते हैं तो स्थिति बदल जाती है। जब आदमी मजाक करता है तो स्थिति बदल जाती है। एक समझदार आदमी भी कैसी बात करने लग जाता है। बादशाह ने देखा कि बीरबल का बेटा नगर के बाहर एक पहाड़ पर बैठा हुआ कुछ खुदाई कर रहा है। जब बादशाह, बीरबल या उसके बेटे को देखता तो वह भी अपने आप से बाहर चला जाता। भूल जाता कि मैं बादशाह हूं। बादशाह ने कहा–अरे! क्या कर रहा है? क्या खोज रहा है? वह भी तो बीरबल का बेटा था। बोला–क्यों? आप क्या करेंगे? मुझे बता दे तो आधा तेरा हो जाएगा, आधा मेरा हो जाएगा। बोला–मैं अपने बाप को खोज रहा हूं। अब आधा तेरा, आधा मेरा? आदमी जब-जब बाहर जाता है, अपने पिता को भी आधा-आधा कर देता है। बाहर जाने पर उसकी सारी दुनिया बदल जाती है। जब-जब भीतर जाता है, गंभीर हो जाता है, सारी स्थितियां बदल जाती हैं।

जब-जब बुरे विचार, बुरे भाव, बुरी कल्पनाएं आती हैं, तब-तब हम बाहर चले जाते हैं यानी शरीर में आ जाते हैं। उस समय हम आत्मा में नहीं रहते। जब अच्छे विचार, अच्छे भाव, अच्छी कल्पना, अच्छा चिंतन, मैत्री का भाव, मानवता का भाव आता है तब हम आत्मा में रहते हैं। अपने आपको देखते रहें कि मैं कब आत्मा में रहता हूं और कब शरीर में रहता हूं? देखते-देखते सबकुछ बदल जाएगा।

शरीर में या आत्मा में?

आचार्य भिक्षु के पास एक व्यक्ति आया। पूछा–आप कौन हैं? भीखण। अच्छा आप भीखणजी हैं। आपका मुंह देखने वाला नरक में जाता है। वह बेचारा शरीर में था। यह शरीर की भाषा थी। आचार्य भिक्षु बोले–कोई बात नहीं, तुम अच्छे आदमी लगते हो। तुम्हारा मुंह देखने वाला कहां जाता है? वह तो शरीर में था। शरीर में अहंकार होता है। अहंकार की भाषा अलग होती है, अहंकार की भाषा में बोला–मेरा मुंह देखने वाला स्वर्ग में जाता है। आचार्य भिक्षु आत्मा में थे। उन्होंने एक निष्कर्ष निकाल लिया, गणित कर दिया और कहा–बहुत अच्छा हुआ। मैं तो ऐसा नहीं मानता, पर तेरे हिसाब से तूने मेरा मुंह देखा है, नरक में जाओगे और मैंने तेरा मुंह देखा है, मैं तो स्वर्ग में जाऊंगा। मेरे लिए तो अच्छा ही है। वह बेचारा शर्मिंदा हो गया। जब व्यक्ति आत्मकेन्द्रित होता है, चिंतन सकारात्मक हो जाता है।

आत्मा की आवाज

बहुत वर्ष पहले किसी बड़े राजनेता ने कहा–यह मेरी आत्मा की आवाज है। मैंने उत्तर में कहा–भाई! आत्मा की आवाज कहना बड़ा कठिन है। बहुधा आदमी राग-द्वेष में जीता है और उस आवाज को भी कह देता है कि मेरी आत्मा की आवाज है, वह तो राग-द्वेष की आवाज है। आत्मा की आवाज वीतराग की होती है। जो राग-द्वेष की भूमिका से ऊपर उठ चुका है, उसकी आवाज को हम आत्मा की आवाज मान सकते हैं। हम जीवन का लक्ष्य बनाएं कि मुझे आत्मा में अधिक रहने का अभ्यास करना है। लक्ष्यपूर्वक चलने से स्वभाव बदलता है, आदतें बदलती हैं, झगड़े खत्म होते हैं, अशांति दूर होती है, तनाव दूर होता है और एक नए संसार की यात्रा शुरू हो जाती है। हम लक्ष्यविहीन न चलें।

केन्द्रीय लक्ष्य

बहुत लोग हैं जिन्होंने लक्ष्य ही नहीं बनाया। अगर नहीं बनाया है तो आज से ही जीवन का केन्द्रीय लक्ष्य बनाएं। स्वयं बना लें, बहुत अच्छी बात है। स्वयं नहीं बना सकें तो परामर्श ले लें कि जीवन का मुख्य लक्ष्य क्या होना चाहिए? जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य होना चाहिए–आत्मा में रहना। आदमी आत्मा में नहीं रहता, वहां फिर दूसरी बातें चलती हैं।

एक वकील तेली के घर गया। दोनों बातचीत कर रहे थे। वकील ने बाहर देखा–कोल्हू का बैल चल रहा था। वकील ने पूछा–इसकी आंखों पर पट्टी क्यों बांधी? तेली बोला–साहब! इसको यह पता न चले कि मैं एक जगह ही घूम रहा हूं, इसलिए पट्टी बांध दी। बात समाप्त हो गई। थोड़ी देर रुका और फिर पूछा–इसके गले में घंटी क्यों बांधी? बोला–साहब! मैं काम में लगा रहता हूं तो मुझे पता चल जाए कि बैल चल रहा है या रुक गया है। वकील बोला–यह खड़ा-खड़ा ही घंटी बजा देगा तो? तेली बोला–साहब! यह बैल है, वकील नहीं है।

वकील की अपनी अलग भाषा होती है, वह कानून की भाषा में बोलता है, आत्मा की भाषा में नहीं। जब-जब शरीर में होते हैं, हम दूसरी भाषा में बोलते हैं, दूसरी भाषा में सोचते हैं, दूसरी आंखों से देखते हैं। व्यक्तित्व के विकास का इससे बड़ा कोई लक्ष्य नहीं होगा, कोई साधन नहीं होगा कि हम आत्मा में रहना सीख जाएं। कम से कम चौबीस घंटे में एक-दो घंटे तो अपनी आत्मा में बिताएं। अगर यह छोटी-सी बात समझ में आए तो जीवन की सफलता का सबसे बड़ा मंत्र हमारे हाथ में आ जाएगा।

2. आत्मा का अनुभव करें

गंगा, यमुना आदि बड़ी बड़ी नदियों का जल निरंतर बह रहा है। हम केवल वर्तमान के प्रवाह को देखते हैं तब ऐसा लगता है कि नदी जल से परिपूर्ण है। हम मूल पर विचार करें। एक मिनट पहले जो पानी हमने देखा था, वह चला गया, दूसरा आ गया। इसका नाम है संतति, अविच्छिन्नता। जल की संतति चल रही है, पर जिस पानी में आपने पैर रखा, वह पानी चला गया, जिस पानी में हाथ धोया, वह पानी चला गया या जिस पानी को आपने देखा, वह पानी चला गया।

एक क्रम है, संतति है। एक जाता है दूसरा आता है, फिर भी खालीपन नहीं लगता, क्योंकि उत्पाद हो रहा है, व्यय हो रहा है। भगवान महावीर से पूछा–भंते! तत्त्व क्या है? उत्तर दिया–ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है। ध्रुव है तो फिर आदमी की मृत्यु क्यों होती है? मकान नष्ट क्यों होता है? कपड़ा नष्ट क्यों होता है? ये सब क्यों होता है? उत्तर मिला–अध्रुव भी है, अशाश्वत भी है, अनित्य भी है। उत्पाद होता है और नाश होता है। जन्म होता है और मरण होता है। यह चक्र अनवरत चलता रहता है। दोनों साथ-साथ चलते हैं। शाश्वत और अशाश्वत अलग नहीं हैं। ध्रुव और अध्रुव अलग नहीं हैं। नित्य और अनित्य पृथक्-पृथक् नहीं हैं। दोनों एक साथ चल रहे हैं।

शुद्ध आत्मा

आत्मा शाश्वत है, वह कभी नष्ट नहीं होती, किंतु शरीर नष्ट हो जाता है। गीता में लिखा है–आत्मा पुराने कपड़ों को छोड़कर नए कपड़ों को धारण कर लेती है, नया कपड़ा पहन लेती है। ठीक इसी प्रकार पुराने शरीर को जीव छोड़ देता है और नए शरीर का निर्माण कर लेता है। बिना शरीर के जीव संसार

में नहीं रहता। कोई भी सांसारिक प्राणी बिना शरीर के नहीं रह सकता। हमारे दो शरीर हैं–एक सूक्ष्म शरीर, जो दिखाई नहीं देता, भीतर बैठा-बैठा काम कर रहा है। दूसरा स्थूल शरीर, जो दिखाई देता है और बाहर से भी काम करता है। सूक्ष्म शरीर कभी छूटता नहीं है। वह जिस दिन छूटेगा, फिर जीव शरीर धारण नहीं करेगा। संसार-भ्रमण से छुटकारा हो जाएगा। जीव कर्म बंधन से मुक्त हो जाएगा। सूक्ष्म शरीर के छूटते ही आत्मा अशरीर बन जाएगी। केवल शुद्ध आत्मा रहेगी।

आत्मा को पाने की प्रक्रिया

हम वर्तमान में आत्मा को देखना चाहें तो केवल आत्मा हमें दिखाई नहीं देती। शुद्ध आत्मा हमें दिखाई नहीं देगी, कैसे दिखाई देगी? बहुत लोगों ने प्रयत्न किया कि आत्मा का दर्शन हो। भाषा अलग हो सकती है। कोई कहता है–भगवान का दर्शन हो, कोई कहता है–परमात्मा का दर्शन हो। कैसे होगा? जो अशरीर है, वह तुम्हें दिखाई नहीं देगा और सशरीर अवस्था में पूरा परमात्मा प्रकट नहीं होगा। जो प्रकट होगा, वह सामने नहीं आएगा। बहुत लोगों ने आत्मा के साक्षात्कार का लक्ष्य बनाया, पर साक्षात्कार करना आसान कार्य नहीं है। मंथन के बिना साक्षात्कार नहीं होता।

एक दार्शनिक आत्मा पर प्रवचन कर रहा था। सब लोग बड़े ध्यान से सुन रहे थे। एक युवक आया। उसने पूछा–आत्मा को कैसे पाएं? दार्शनिक ने उत्तर दिया–तुम सीधा आत्मा को देखना चाहते हो यह संभव नहीं है। पहले शरीर को तपाओ, फिर मन को जमाओ, फिर उसका मंथन करो, आत्मा का साक्षात्कार हो जाएगा। मंथन करना जरूरी है। मंथन हो तब सचाई हमारे हाथ लगेगी, कुछ समझने का मौका मिलेगा। हम मंथन नहीं करते, सीधा आत्मा को पाना चाहते हैं। बिना प्रयत्न आत्मा कैसे मिलेगी? आत्ममंथन की प्रक्रिया जानने के बाद आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है और जीव शरीर-मुक्त हो जाता है।

कष्ट का कारण है ममता

कपड़ा पुराना होता है और फट जाता है, तब थोड़ा कष्ट भी होता है। कष्ट होने का कारण है ममत्व। ठीक इसी प्रकार शरीर चला गया, आदमी चला गया। इस बात का कष्ट नहीं होता। कष्ट संबंधों का होता है। आपको

संबंध याद आ रहा है। शरीर याद नहीं आ रहा है। जिस व्यक्ति का जिसके साथ संबंध हो गया, उसको उसकी याद आती है।

हमारी पूरी दुनिया में लगभग पांच-छः अरब आदमी हैं। लाखों आदमी रोज मरते हैं। हजारों-हजारों लोग हिन्दुस्तान में दुर्घटना से मरते हैं। हजारों लाखों नए जन्मते हैं। जिनकी प्रतिदिन मृत्यु हो रही है, क्या कभी आपने शोक मनाया? कभी कोई यूरोप में मर रहा है, कभी कोई अमेरिका में मर रहा है। कभी कोई अफ्रीका में मर रहा है या हिन्दुस्तान या पाकिस्तान की सीमा पर मर रहा है। क्या कभी किसी के लिए शोक मनाया? नहीं मनाया। क्या कभी आपको दुःख हुआ? नहीं हुआ। क्यों? क्योंकि उनके साथ हमारा संबंध नहीं है। जिनके साथ संयोग हो गया, संबंध हो गया और जिनको हमने अपना मान लिया, वह चला जाता है तब दुःख होता है। दुःख किसी के चले जाने का नहीं, मौत का नहीं, दुःख है संबंध-विच्छेद का, दुःख है संयोग टूट जाने का। हम ऐसा काम करें कि संबंध में भी असंबंध का जीवन जीने की कला सीख लें। संयोग में भी असंयोग की कला सीख लें, जन्म में भी मौत को देखने की कला सीख लें।

आदमी की मृत्यु कब होती है? क्या साठ-सत्तर वर्ष का होकर वह मृत्यु को प्राप्त करता है? बिल्कुल नहीं, जिस क्षण जन्मा उस क्षण से ही मरना शुरू हो गया। उस क्षण वह यदि नहीं मरता है तो फिर वह कभी नहीं मरेगा। जन्म और मरण साथ में चल रहे हैं, संयोग और वियोग साथ-साथ चल रहे हैं। एक समय आता है जब हमें लगता है कि वह व्यक्ति चला गया, फिर कष्ट होता है। यह संयोग का कष्ट है, संबंध का कष्ट है, जान-पहचान का कष्ट है, परिचित का कष्ट है। अपरिचित का कष्ट नहीं होता, क्योंकि उसके साथ संबंध नहीं होता।

आत्मस्थ बनें

इस संदर्भ में अध्यात्म की बात को समझें। अध्यात्म के मर्म को समझें। अध्यात्म का रहस्य-सूत्र है–संबंधातीत होना। सामाजिक प्राणी संबंधों का जीवन जीता है। उसके साथ-साथ हम संबंधातीत जीवन भी जीना सीखें। उसके लिए संयम का अभ्यास करें। यह एक शब्द सैकड़ों समस्याओं का समाधान है। आप बीमार हैं, आहार का संयम करें। ज्यादा लड़ाई-झगड़ा होता

है, वाणी का संयम करें। ज्यादा मन परेशान होता है या बुरे विचार आते हैं, मन का संयम करें। अर्थ का संयम करें। दिशाओं में गमनागमन का संयम करें।

अणुव्रत प्रवर्तक आचार्य तुलसी ने एक सूत्र दिया–संयमः खलु जीवनम्–संयम ही जीवन है। यह सूत्र बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इसका एक प्रतिपक्ष और बना लेना चाहिए। असंयमः खलु मरणम्–जीवन और मृत्यु की स्पष्ट परिभाषाएं हो गईं। एक आदमी का आयुष्य पूरा हो गया, उसकी मृत्यु हो गई यानी उसकी देह का वियोग हो गया। वास्तव में तो मरण उनका है, जो असंयम का जीवन जीते हैं, इसलिए जीवन-मरण के रहस्य को समझें, आत्मा के रहस्य को समझें। संबंध और संबंधातीत स्थिति को समझें, समझकर आत्मस्थ बनें। न शोक, न आर्त्तध्यान, न दुःख, केवल अपनी आत्मा का अनुभव करें।

3. आत्मा और पदार्थ

हमें आत्मा को देखना है, वह दिखाई नहीं देती। पदार्थ दिखाई दे रहा है, वह दृश्य है, स्थूल है। सूक्ष्म है, वह दिखाई नहीं देता। आत्मा तो और अधिक सूक्ष्म है, अमूर्त है। उसे देखना है। आत्मा के द्वारा आत्मा को देखना बहुत बड़ी बात है। अभी तो स्थूल जगत देखना बहुत बाकी है तो आत्म जगत की बात करना, आत्मा को देखना बहुत आगे की बात है।

डरो मत

कभी-कभी हमें स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना जरूरी होता है। सूक्ष्म में गए बिना समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। आज की बहुत सारी जो समस्याएं हैं, उनमें पहली समस्या है भय की समस्या। आदमी भयभीत रहता है। चारों ओर डर है। अभय रहना बहुत मुश्किल है। भय ही भय का वातावरण है। कभी पड़ोसी का भय, कभी चोर का भय, कभी घर वालों का भय। आदमी घर वालों से भी बहुत सावधान रहता है। घर के मुखिया ने कोट खोला। उसमें हजार रुपए थे। बाद में ध्यान आया कि कोट खोल तो दिया, पर उसमें रुपए हैं। सुबह जेब साफ मिलेगी। भय पैदा हो गया। घर से भी भय, कर्मकरों से भी भय, सरकारी कर्मचारियों से भय, अधिकारियों से भय–इस प्रकार भय के सैकड़ों प्रकार बन जाते हैं। आदमी डरता बहुत है। इसीलिए भगवान महावीर ने कहा–मा भेत्तव्वं–डरो मत। किसी से भी न डरें। बुढ़ापे से मत डरो, बीमारी से मत डरो, मौत से मत डरो, किसी से भी मत डरो।

अभय बनो

धर्म का पहला बिंदु क्या होगा? अध्यात्म का पहला बिंदु क्या होगा? अभय। जो अभय बन गया, अध्यात्म का द्वार उसके लिए खुल गया। जब तक डरता है, अध्यात्म का दरवाजा बंद रहता है। अध्यात्म की बात को हम छोड़

भी दें, घर का दरवाजा भी उसके लिए बंद रहता है। कितनी सुरक्षा आदमी करता है, फिर भी चैन नहीं रहता। एक भाई बोला–बैंक से बड़ी राशि ला रहा था और बीच में ही डकैत आए और सारी राशि ले गए। कुछ राशि छुपे-छुपे भी चली जाती है। जोधपुर की घटना है। एक जेबकतरे को न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। पूछा–तुम दिनदहाड़े सबके बीच में जेब कैसे काट लेते हो?

बोला–हुजूर! आप सावधान रहें, आपकी भी जेब काट सकता हूं।

मेरी जेब कैसे काटोगे?

आप कल ध्यान रखना।

न्यायाधीश घर से चला और न्यायालय में पहुंचा। पहुंचकर जेब को संभाला। जेब तो कटी हुई थी।

सर्वत्र भय है।

एक है अध्यात्म का जगत और दूसरा है लौकिक जगत। अध्यात्म का प्रारंभिक बिंदु है अभय। लौकिक जगत का प्रारंभिक बिंदु है भय। जहां आदमी पदार्थ की परिक्रमा करता है, वहां भय पैदा होता है। जहां आत्मा की परिक्रमा करता है, वहां अभय रहता है। इसका कारण क्या है? जहां पदार्थ है वह लिया हुआ है, अपना नहीं है। आत्मा चेतनायुक्त है, वह अपनी है। जो अपनी है उसको कोई छीन नहीं सकता, इसलिए वहां डर भी नहीं है। पदार्थ लिया हुआ है, उस पर दूसरा अधिकार कर सकता है, छीन सकता है, झपट सकता है, लूट सकता है, इसलिए भय है। जहां भय है, वहां तनाव है। एक भाई आया–टेंशन बहुत रहता है। उसके पीछे कोई भय अवश्य है तभी तनाव पैदा होता है। जहां भय नहीं है, वहां तनाव भी नहीं है।

पदार्थ का स्वभाव है अतृप्ति

पदार्थ जगत का एक स्वभाव है अतृप्ति। कितना ही भोग कर लें, व्यक्ति को कभी तृप्ति नहीं होती। एक क्षण में लगता है तृप्ति हुई और कुछ ही समय के बाद फिर अतृप्ति की अनुभूति होती है। किसी व्यक्ति ने सुबह का भोजन किया और कहता है–मैं तो एकदम तृप्त हो गया। पदार्थ जगत में क्षणिक तृप्ति को हम तृप्ति मान लेते हैं, पर तृप्ति के साथ अतृप्ति जुड़ी रहती है।

सांख्य दर्शन में बहुत सुंदर समझाया गया है कि एक आदमी ने भोजन किया। चार घंटे बाद कहता है–भूख लग गई। क्या चार घंटे बाद भूख लगी है? जिस क्षण में वह तृप्त हुआ, उसी क्षण में भूख लगनी शुरू हो गई और समय पूरा होते ही उसको अनुभव हो गया कि मुझे भूख लग गई है। अतृप्ति पदार्थ के साथ जुड़ी हुई है। आचार्यश्री तुलसी ने 'आत्मा के आसपास' पुस्तक में लिखा–

ईंधन से क्या अग्नि को, हुई कभी भी तृप्ति।

ईंधन से अग्नि नहीं बुझती। आग में ईंधन डालो, क्या आग बुझेगी? कभी नहीं बुझेगी। ईंधन मत डालो, आग बुझ जाएगी। ईंधन डालना पदार्थ जगत का स्वभाव है। ईंधन डालते जाओ और अतृप्ति को बढ़ाते जाओ। कोई भी काम एक बार मत करो, अतृप्ति का अनुभव नहीं होगा। यदि एक बार कर लिया तो करने के बाद फिर दूसरी बार, तीसरी बार, चौथी बार करने की बात मन में आएगी। पदार्थ जगत का एक लक्षण है अतृप्ति। क्या कोई भी आदमी भोग के द्वारा तृप्त होकर जी सकता है?'

पदार्थ का भय

धर्म और अध्यात्म के साथ पदार्थ का तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए। धर्म से क्या लाभ और पदार्थ के संग्रह से क्या लाभ? जहां पदार्थ है, वहां भय जुड़ गया। एक श्रावक सामायिक करने गया और सामायिक में याद आया कि दो हजार रुपये की थैली कोई ले नहीं जाए। हम बहुत गहराई के साथ अनुभव करें कि जहां पदार्थ का संबंध है, वहां भय जुड़ा हुआ है। गृहस्थों की क्या बात है, साधु-संतों को भी भय होता है। कपड़ा बढ़िया है, माला अच्छी है, घड़ी है। कभी-कभी मन में आ जाता है कि कोई ले न जाए। ले जाए तो ले जाए क्या फर्क पड़ा, पर मन में आ जाता है। आखिर छद्मस्थ हैं, सरागी हैं, वीतरागी नहीं हैं। कभी-कभी कहना भी पड़ता है कि देखो, ध्यान रखना, ये चीजें पड़ी हैं। यह ध्यान रखने की बात कहां से उपजी? भय से उपजी है। अगर भय न हो तो कहने की जरूरत ही नहीं है। आचार्यश्री तुलसी ने गीत में लिखा है–

संता रा खुल्ला है बारणा।
कब ही ल्यो कोई निहार,
संता रा खुल्ला है बारणा।

संतों के दरवाजे खुले हैं, पर संतों के मन में भी आ जाता है कि ध्यान रखना। इसका मतलब? भय बोल रहा है भीतर। जहां पदार्थ का जगत है, वहां भय का होना स्वाभाविक है। पुरानी हस्तलिखित प्रतियां, जो हमारे भंडार में हैं, बहुत कीमती हैं, विदेशी लोग हजारों रूपये देकर भी खरीदने के लिए तैयार हैं।

जहां हमारा पुस्तकों का, ग्रंथों का भंडार है, सावधानी रखनी पड़ती है। आखिर भय तो है ही। साधु में यह होना नहीं चाहिए। डरो मत, डरो मत। डर तो बुढ़ापे का भी लगता है। आज तो मैं ठीक काम कर रहा हूं। बूढ़ा हो जाऊंगा, तब क्या होगा? विकल्प तो मन में आ ही जाता है। मेरी सेवा कौन करेगा? मेरा क्या होगा? किस प्रकार की स्थिति बनेगी? बीमार हो जाऊंगा तब क्या होगा? बुढ़ापे का भय है। रोग का भी भय है।

भय की प्रतिध्वनि

संतान की इच्छा क्यों है? लड़का पैदा हो, लड़का नहीं होगा तो मेरी संपत्ति का क्या होगा? बुढ़ापे में सेवा कौन करेगा? कौन पूछने वाला होगा और मेरा नाम कैसे चलेगा? यह भय है कि कहीं मेरा नाम न मिट जाए। यह संतान की आकांक्षा नहीं है, लड़का हो इसकी नहीं है, अपने भय की ही प्रतिध्वनि है। अपना भय बोलता है कि लड़का होना चाहिए, क्योंकि लड़की तो दूसरे घर चली जाएगी। वह सेवा नहीं करेगी। लड़के की इच्छा करना अपने स्वार्थ से जुड़ा हुआ भय है। अभय होना बहुत मुश्किल है।

दो जगत हैं–एक पदार्थ का जगत, एक आत्मा का जगत। पदार्थ जगत के तीन परिणाम हैं–भय, तनाव और अतृप्ति। दूसरा है आत्मा का जगत। इसके तीन परिणाम हैं–अभय, तनाव-मुक्ति और सहज तृप्ति। इन दोनों को समझकर हमें यथार्थ को पहचानना है।

4. शरीर और आत्मा

हमारे जीवन के दो पक्ष हैं–एक शरीर और दूसरा आत्मा। शरीर पौद्गलिक है, भौतिक है और आत्मा चैतन्यमय है, इसलिए दो पक्ष बन गए–एक भौतिक पक्ष और दूसरा आत्मिक पक्ष। इन दोनों का सम्यक् दर्शन हो तो जीवन अच्छा चलता है। केवल आत्मा या केवल पुद्गल का आग्रह हो तो जीवन एकांगी बनता है और मिथ्या दृष्टिकोण पनपता है।

सफलता का सबसे बड़ा सूत्र है–सम्यक् दर्शन, सम्यक् दृष्टिकोण। सम्यक् दृष्टिकोण है तो समस्या सुलझती है। मिथ्या दृष्टिकोण है तो समस्या उलझ जाती है। हमारा सबसे पहला प्रयत्न होना चाहिए–सम्यक् दर्शन कैसे जागे? हमारी दृष्टि साफ कैसे रहे, यह बहुत आवश्यक है। व्यवहार में भी आंख साफ नहीं है तो दिखाई नहीं देता। जिसकी भीतर की आंख जागृत नहीं है, उसे सत्य उपलब्ध नहीं हो सकता।

भीतर का नेत्र

जिस व्यक्ति को सचाई दिखाई नहीं देती, वह सुखी जीवन नहीं जी सकता, अच्छा जीवन नहीं जी सकता। सबसे बड़ी बात है कि हमारा दर्शन सम्यक् हो, आंख साफ हो, हम देख सकें। ये दो आंखें तो चर्मचक्षु हैं। इन दो आंखों से नहीं, एक हमारे भीतर का नेत्र है, उससे हम सचाई को देख सकते हैं। जो आदमी उस भीतर की आंख से सचाई को देखता है, वह कभी दुःखी नहीं बनता। दुनिया में प्रतिकूल परिस्थितियां भी आती हैं, अनुकूल भी आती हैं।

कोई भी व्यक्ति सदा एक रूप नहीं रहता। मैंने अनेक बड़े-बड़े लोगों को देखा, जो बहुत बड़े उद्योगपति थे, जिनके पास प्रचुर ऐश्वर्य था, उनको भी परिस्थितियां आने पर रोते हुए भी देखा। कभी बेटे का दुःख, कभी बेटी का दुःख, कभी बंटबारे का दुःख तो, कभी भाईयों का दुःख।

सम्यक् दृष्टिकोण

वि.सं. 2016 की बात है। आचार्य तुलसी कोलकाता में थे। एक महिला दर्शन करने आई। वह उस समय के हिन्दुस्तान के दो-चार प्रतिष्ठित उद्योगपतियों में से एक घराने की महिला थी। उसने कहा–महाराज! दुःखी बहुत हूं। मुझे शांति का कोई उपाय बताओ। हमने आश्चर्य के साथ कहा–लोग तो तुम्हारे जैसा होने के लिए तरसते हैं। इतना बड़ा औद्योगिक परिवार, जिसके पास अरबों-खरबों की संपत्ति है, उस परिवार की महिला कहती है–मैं बहुत दुःखी हूं। गुरुदेव ने कहा–आपको दुःख किस बात का है। महाराज! पति का स्वर्गवास हो गया और बेटे खानों (mines) को लेकर झगड़ा कर रहे हैं। जहां सम्यक् दर्शन नहीं होता, वहां लड़ाई-झगड़ा, कलह, कदाग्रह चलता रहता है। यदि सम्यक् दर्शन हो जाए तो हर परिस्थिति में आदमी शांति के साथ जी सकता है। अपेक्षा है हमारी आंख साफ हो जाए।

दृष्टिकोण का सम्यक् होना बहुत मुश्किल है। अगर व्यक्ति का दृष्टिकोण सही है, तो सब ठीक है। थोड़ा दृष्टिकोण बदलते ही सृष्टि बदल जाती है। एक बार हम लोग दिल्ली में थे। जनता पार्टी का शासन था, मोरारजी भाई देसाई प्रधानमंत्री थे। पूज्य गुरुदेव अध्यात्म साधना केन्द्र में विराज रहे थे। हमें सूचना मिली कि इन्दिराजी आ रही हैं। इन्दिराजी आई, उनके साथ कुछ लोग भी आए। उन्होंने बताया–अभी इन्दिराजी बहुत तनाव में हैं। शासन दूसरी पार्टी का चल रहा था, कुछ समस्याएं भी थीं। थोड़ी देर वार्तालाप के बाद गुरुदेव ने कहा–यदि आप तनाव का अनुभव करती हैं तो आधा घंटा प्रेक्षाध्यान का प्रयोग कर लें, संभव है आपका तनाव दूर हो जाए।

गुरुदेव ने मुझे प्रयोग कराने का निर्देश दिया। मैंने आधा घंटा प्रयोग कराया। सारी बात समझाई, परिस्थिति आ सकती है, पर परिस्थिति के बाद तनाव आना जरूरी नहीं है। परिस्थिति आना तो प्राकृतिक है, प्रकृति का स्वभाव है, इस दुनिया का नियम है, किंतु तनाव लाना, दुःखी होना यह कोई नियम नहीं है। यह हमारे दृष्टिकोण पर निर्भर है। मैंने आधा घंटा प्रयोग कराया। प्रयोग करने के बाद बाहर आई। गुरुदेव के पास आकर बोली–'मेरा तनाव समाप्त हो गया, अब मैं बहुत प्रसन्न हूं।' इस विषय की संक्षिप्त चर्चा उनकी जीवनी में की गई है।

आप भी निश्चय कर लें, जीवन में परिस्थितियां आएंगी, इस दुनिया में कोई भी जन्म लेगा वह परिस्थिति से मुक्त नहीं रह सकता, यह दुनिया का नियम है। मानकर चलें कि कभी बचपन में, कभी यौवन में, कभी बुढ़ापे में अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति पैदा हो सकती है, उसे रोका भी नहीं जा सकता। परिस्थिति के साथ अगर आदमी चले तो वह भी कठपुतली बन जाएगा, फिर कठपुतली में और आदमी में अंतर क्या रहेगा। कठपुतली को जैसे नचाया जाता है, वैसे नाचती है। मैंने बचपन में एक संकल्प किया था मैं किसी के हाथ की कठपुतली नहीं बनूंगा। इस संकल्प ने साधना के द्वार खोल दिए। किसी ने प्रशंसा कर दी, व्यक्ति खुश हो गया। इसका मतलब दूसरे के हाथ की कठपुतली है। अपने आपमें खुश नहीं है और किसी ने निंदा कर दी तो नाराज हो गया। इसका मतलब भी यही है कि दूसरे के हाथ की कठपुतली है।

अनुकूलता और प्रतिकूलता

खुश होना भी अपना स्वतंत्र कर्तृत्व नहीं है और नाराज होना भी कर्तृत्व नहीं है। दूसरे के कारण हो रहा है। इसका अर्थ है कि आदमी स्वतंत्र नहीं है। दूसरों के हाथ की कठपुतली है। जैसे नचाओ वैसे नाचता रहता है। यह कोई अच्छा जीवन नहीं होता। धूप तेज होती है तो रेत गर्म हो जाती है। ठंडी हवा चलती है तो धूल ठंडी हो जाती है। धूल का अपना अस्तित्व नहीं है। हवा के कारण कभी ठंडी होती है, कभी गर्म हो जाती है। ऐसे ही आदमी कभी ठंडा होता है, कभी गर्म होता है। थोड़ा अनुकूल वातावरण मिलता है, अहंकार में फूल जाता है और थोड़ा प्रतिकूल वातावरण मिलते ही हीनभावना में चला जाता है। ये दो वृत्तियां हमेशा मनुष्य को सताती रहती हैं–एक हीनभावना की मनोवृत्ति, एक अहंकार की मनोवृत्ति। मनोविज्ञान में इन दोनों वृत्तियों पर बहुत लिखा गया है, बहुत चिंतन किया गया है।

भीतर है मोह

ऐसा क्यों होता है? इसका कारण क्या है? इसका कारण है मोह, यह सबको नचा रहा है। इसका किसी को पता नहीं चलता। बाहर में तो यदि कोई थोड़ा सा भी कष्ट दे तो आदमी उसी वक्त न्यायालय में चला जाता है, मुकद्दमा दायर कर देता है, पर भीतर बैठा हुआ मोह नचा रहा है। वह विचित्र मनःस्थिति पैदा करता है। उसी के कारण मनःस्थिति बदलती रहती है। हमारी

चेतना विकृत बन जाती है। नशे में आदमी ठीक सोच नहीं सकता। एक भाई ने घटना सुनाई। हिन्दुस्तान का एक बड़ा उद्योगपति मरणासन्न स्थिति में था। उसके बेटा नहीं था, दत्तक पुत्र था। उसका एक मित्र आया, देखा, पिता मरने की स्थिति में है और पुत्र क्लब में शराब पी रहा है।

उसने दत्तक पुत्र को फोन किया कि तुम्हारे पिता कि यह स्थिति है। तुम आ जाओ। वह मोह में ग्रस्त था। उसने कहा–यह बात रोज सुनता हूं कि पिताजी मरणासन्न हैं। सच बताओ वे जाने की स्थिति में हैं तब तो आऊं? यह कहानी नहीं है, प्रत्यक्ष घटना है। यह सारा क्यों होता है? मोह के कारण नशे की आदत हो गई। शराब पीता है, नशा करता है, जानता है तो भी करता है। यह प्रश्न बहुत बार आता है कि हम जानते हैं कि यह कार्य अच्छा है, फिर भी नहीं करते। जानते हैं, यह कार्य अच्छा नहीं है, फिर भी करते हैं। डॉक्टर ने मिठाई खाने का निषेध कर दिया, फिर भी खाता है, क्यों? भीतर बैठा हुआ मोह यह सब करने के लिए विवश कर रहा है।

मोह से होती है चेतना में विकृति

अगर हम मोह को पकड़ सकें तो हमारा दृष्टिकोण भी सम्यक् हो सकता है और चारित्र भी सम्यक् हो सकता है। मैंने अनेक बार राजनेताओं से कहा–आपकी विधानसभा और पार्लियामेंट में कोई सदस्य आए, उसे कम से कम तीन-चार सप्ताह का प्रशिक्षण मिलना चाहिए, जिससे मोह कम होगा, सही काम कर सकेंगे, फिर न तो पैसा इकट्ठा करने की बात होगी, न कोई घोटाले की बात होगी, न गबन की बात। बाजार में मिलावट होती है, झूठा तोल-माप भी होता है, धोखाधड़ी भी बहुत होती है। सबकुछ चलता है। आज से नहीं, यह सदा से चलता आ रहा है। प्रश्न है यह क्यों चलता है? इसका समाधान खोजने के लिए कई राजनैतिक प्रणालियां हमारे सामने आईं।

साधना का उद्देश्य

पहले कई स्थानों पर राजतंत्र था, अब राजतंत्र के स्थान पर लोकतंत्र आ गया। कभी समाजवाद की प्रणाली आई, कभी साम्यवाद की आई–अनेक प्रणालियां आईं, पर समस्या को पकड़ा नहीं जा सका। फ्रांस में एक बड़ी विचित्र मूर्ति है। प्रायः आदमी जब वृद्ध होता है तो आगे के केश साफ हो जाते

हैं, पीछे के केश रहते हैं। उस मूर्ति में आगे तो केश हैं, पीछे के केश साफ हो गए। प्रश्न पूछा गया–ऐसा क्यों? उत्तर मिला इसलिए है कि क्षण को पीछे से नहीं पकड़ा जा सकता। हम भी इस सचाई को पकड़ सकें और मोह को उपशांत कर सकें।

यदि मुझसे पूछा जाए कि धार्मिक साधना का उद्देश्य क्या है? आदमी धर्म क्यों करता है? इसका उत्तर होगा–धर्म साधना का एकमात्र उद्देश्य है मोह का उपशमन। उपासना की अनेक पद्धतियां हैं। कोई आदमी भक्तियोग करता है, कोई ज्ञानयोग की आराधना करता है, कोई कर्मयोग करता है। जिसकी जैसी रुचि हुई वैसा करना प्रारंभ कर दिया। आखिर पहुंचना कहां है?

रास्ते अलग हो सकते हैं, किंतु प्राप्तव्य स्थान, गंतव्य स्थान तो हमारा एक ही होगा। अहमदाबाद पहुंचना है तो दस रास्ते होंगे। आखिर सब रास्ते एक जगह मिल जाते हैं। पहुंचना कहां है? हम इस पर विचार करें।

ध्येय को स्पष्ट करें

सबसे पहले ध्येय का निर्णय करें। हमारा ध्येय क्या है? हमें कहां पहुंचना है? पहुंचना है मोह के उपशमन तक। आत्मा की वह अवस्था, जहां मोह विलीन हो गया, जहां सारा कषाय शांत हो गया। कोई उत्तेजना नहीं है, आवेश नहीं है, न क्रोध का आवेश, न अहंकार का आवेश, न माया का आवेश और न लोभ का आवेश, न वासना और रति-अरति का आवेश। सारे आवेश शांत हो गए। उस स्थिति को प्राप्त करना है। अब उसे आप चाहे तो मोक्ष कह दें, चाहे आत्मा कह दें, चाहे परमात्मा, कुछ भी कहें। यही एकमात्र ध्येय है, परंतु बहुत लोग ध्येय को नहीं जानते। उनको पता ही नहीं है कि उन्हें कहां जाना है?

मुझे कहां जाना है? मुझे क्या होना है? धर्म क्यों कर रहे हैं? जिन लोगों के पास रोटी, कपड़ा, मकान हैं और कुछ साधन सामग्री है, उनको धर्म की कोई जरूरत नहीं है। वे धर्म क्यों करें? निकम्मा काम है उनके लिए। कोई आवश्यकता ही नहीं है। अगर धर्म का संबंध प्राप्त पदार्थ से जोड़ें तब तो गरीब आदमी के लिए तो धर्म करना जरूरी है। अमीर आदमी के लिए धर्म करना बिल्कुल आवश्यक नहीं है। उसे उल्टा कर देखें।

अमीर आदमी के लिए धर्म करना ज्यादा जरूरी है। उसका मोह प्रबल होता है। गरीब में इतना मोह नहीं होता। जैसे-जैसे पैसा बढ़ता है, धन

बढ़ता है, पदार्थ बढ़ता है, सुविधा बढ़ती है, वैसे ही साथ में मोह का ग्राफ भी ऊंचा चला जाता है। दोनों को देखो–एक है धन का ग्राफ और दूसरा है मोह का ग्राफ। मोह का ग्राफ थोड़ा ऊंचा मिलेगा। यदि वह नहीं है तो आदमी उतना बढ़ भी नहीं सकता, इसलिए ध्येय की अवधारणा करें। मुझे क्या होना है? कहां जाना है? कहां पहुंचना है? यदि लक्ष्य स्पष्ट नहीं है तो कुछ नहीं होगा।

परमात्मा का दर्शन

एक बार दोपहर के समय मैं अपने स्थान से दूसरे स्थान पर जा रहा था। उस समय अग्रवाल समाज की पांच-दस बहिनों ने रास्ता रोक लिया, सड़क पर खड़ी हो गईं।

मैंने पूछा–बोलो, क्या बात है?

उन्होंने कहा–'कल रात आपने कहा था कि तीसरा नेत्र खुल जाए तो परमात्मा का दर्शन हो सकता है। हमें तो आप सांवरिया के दर्शन करा दें।' इतनी गद्‌गद् हो रही थीं। श्रद्धा से आंखों में आंसू बह रहे थे।

मैंने कहा–दर्शन तो अब भी हो सकता है, आज भी हो सकता है, कल भी हो सकता है। कोरी भावुकता नहीं, सबसे पहले यह निर्णय करो कि आप क्या होना चाहती हैं और आप कहां पहुंचना चाहती हैं। जब तक हमारा लक्ष्य स्पष्ट नहीं है, हमारी गति स्पष्ट नहीं हो सकती।

आपने ध्येय बना लिया मुम्बई जाना है। अब आप वही रास्ता लें। जब आपका लक्ष्य स्पष्ट नहीं होता तो समस्या आ जाती है। एक आदमी गाड़ी में चढ़ गया। दो-तीन दिन तक रेल में घूमता रहा। किसी ने पूछा–'तुम इधर-उधर कैसे घूम रहे हो? कहां जाना है?' उसने कहा–मुझे पता नहीं है, फिर रेल में क्यों चढ़े हो? मैं आया तो था अपने मित्र को चढ़ाने के लिए, वह रह गया स्टेशन पर और मैं गाड़ी में चढ़ गया। अब मुझे पता नहीं कहां जाना है? हम बहुत गहराई के साथ लक्ष्य का निर्धारण करें।

लक्ष्य है मोक्ष-प्राप्ति

प्राचीन साहित्य में धार्मिक का लक्ष्य बतलाया गया–मोक्ष। कुछ दार्शनिक दूसरी भाषा में कहते हैं–परमात्मा के पास चले जाना, परमात्मा में विलीन

हो जाना, यह लक्ष्य है। सबसे पहले हमारा लक्ष्य होना चाहिए–आत्मा की पवित्रता। मोह का विलय होने पर सारा आचार लक्ष्य के अनुरूप होगा और उसी दिशा में पैर आगे बढ़ेंगे। जब लक्ष्य स्पष्ट नहीं है तो कभी इधर जाएंगे, कभी उधर जाएंगे।

लक्ष्य की स्पष्टता के बाद हम चिंतन करें कि हमें भीतर पहुंचना है। भीतर को जानना है। एक ही लक्ष्य बना लिया कि मुझे भीतर जाना है। न स्वर्ग की कामना, न मोक्ष की बात।

भीतर कहां जाएंगे? यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। भीतर का जगत बहुत बड़ा है। आप अगर हजार दिन तक चलें तो भी यहां से वहां तक नहीं पहुंच सकते। स्थूल जगत के नियमों को समझने का प्रयत्न किया है, किंतु सूक्ष्म को समझने का प्रयत्न नहीं किया। स्थूल में तो ऐसा लगता है यहां से यहां तक इतना-सा स्थान है। आप शास्त्रों को पढ़ें, एनोटॉमी पढ़ें, फिजियोलॉजी पढ़ें, आपको पता लगेगा कि हमारे शरीर के भीतर कितनी कोशिकाएं हैं? अरबों-खरबों कोशिकाएं हमारे शरीर के भीतर हैं। उनका एक जाल बिछा हुआ है। उन्हें अगर फैलाया जाए तो, चलते चलते-दिल्ली आ जाएगी, कोलकाता आ जाएगा और आगे चलें तो अमेरिका आ जाएगा और आगे चलें तो उत्तरी ध्रुव आ जाएगा तो भी वह शृंखला पूरी नहीं होगी। इतना शरीर के भीतर है। हम केवल स्थूल नियमों को जानते हैं। सूक्ष्म जगत के नियमों को नहीं जानते हैं। नियमों को जानना बहुत जरूरी है।

नियम की खोज सत्य की खोज है, नियम का ज्ञान सत्य का ज्ञान है। बहुत सारे लोग नियम नहीं जानते। हम लोग सूक्ष्म नियमों को नहीं जानते। केवल स्थूल में उलझे रहते हैं। सूक्ष्म में हमारी गति नहीं है, इसलिए यह प्रश्न हो सकता है कि भीतर कहां जाएंगे? भीतर में बहुत कुछ है। आप भी भीतर देखना शुरू करें, भीतर की यात्रा, अंतर्यात्रा शुरू करें, एक वर्ष, दो वर्ष, दस वर्ष, बीस वर्ष तक देखते चले जाएं तो भी उसका पार नहीं पा सकते।

भीतर की यात्रा

हम लक्ष्य बना लें कि हमें भीतर की यात्रा करना है। मोक्ष तो बहुत दूर की बात है। मोह का विलय करना है। इसका मतलब है कि भीतर की यात्रा करना

है। बाहर की यात्रा करें, मोह बढ़ता चला जाएगा। बाजार में जाएं, मोह बढ़ता चला जाएगा। जो भी देखें मन ललचा जाएगा। आजकल हमारे मुनिजी भी भिक्षा में कभी-कभी रंग-बिरंगे पुड़िए लाते हैं। मैं पूछता हूं–क्या है?

संत–'सौंफ का पुड़िया है, धनिये का पुड़िया है।' खोल कर देखते हैं तो ऐसा लगता है कि पैसा कमाने का बहुत अच्छा तरीका है। मूल को बिगाड़ दिया, रंग को देकर आकर्षण पैदा कर दिया। बाजार में हर आदमी का मन ललचा जाता है। शायद आजकल लोग घर का खाना भी कम पसंद करते हैं, बाजार का खाना, होटल का खाना ज्यादा पसंद करते हैं, क्योंकि वहां तड़क-भड़क अधिक है। यह सारी रंगीन दुनिया है, रंगीन चश्मा है। बाहर में आकर्षण लगता है, पर यदि स्वस्थ रहना है, शांति का जीवन जीना है, मानसिक शांति को बनाए रखना है, तनाव मुक्त रहना है तो केवल बाहर की यात्रा से काम नहीं होगा, बाहर की यात्रा को बंद भी नहीं किया जा सकता।

हमारा कार्य दो आयामों में चलता है–एक है शरीर की यात्रा और एक है आत्मा की यात्रा। केवल शरीर की यात्रा न हो, आत्मा की यात्रा भी साथ-साथ चले। जो व्यक्ति शरीर की यात्रा करते हैं और आत्मा की यात्रा नहीं करते, वे बाह्य जगत की यात्रा करते हैं।

मैं आत्मा हूं

चिंतन का एक कोण है–मैं शरीर नहीं हूं, मैं आत्मा हूं, फिर उल्टा चलें–मैं आत्मा हूं और साथ-साथ शरीर भी हूं। शरीर में मेरा निवास हो रहा है तो मैं शरीर हूं। शरीर हूं, इसीलिए मुझे पदार्थ से संबंध जोड़ना पड़ेगा। रोटी, पानी, कपड़ा, दवा सबसे संबंध जोड़ना पड़ेगा। मैं कोरा शरीर नहीं हूं, आत्मा हूं, इसीलिए मुझे आत्मा का चिंतन करना होगा।

इस प्रकार एक समन्वय हो गया–मैं शरीर भी हूं, आत्मा भी हूं। मुझे शरीर के लिए भी कार्य करना है और आत्मा के लिए भी करना है, किंतु केवल शरीर के लिए नहीं करना है, केवल आत्मा के लिए भी नहीं करना है। यह अनेकांत है, समन्वय की दृष्टि है। इसीलिए समन्वयात्मक चिंतन करें। न तो धन में आसक्त बनें, न पदार्थ में आसक्त बनें, न भोजन, कपड़े, पदार्थ आदि चीजों में आसक्त बनें। हम आत्मदर्शन की बात करते हैं, टी.वी. ने मनुष्य के मस्तिष्क

को हिंसक बना दिया। कुछ दिनों पहले हमारे पास टी.वी. चैनल पर काम करने वाले लोग आए थे।

प्रभुदयाल डाबड़ीवाल की दोहित्री भी उस टीम में थी। मैंने उनसे कहा–तुम लोग हिंसा के दृश्य दिखाते हो, कभी-कभी थोड़ा अहिंसात्मक दृश्य भी दिखाओ, जिससे लोगों का, खासकर बच्चों का दिमाग थोड़ा संतुलित रहे। अमेरिका में एक बच्चा स्कूल में जाता है और दस छात्रों को बिना मतलब मार डालता है। पिता ने पुत्र से कहा–शोर मत करो। बच्चा बोला–डैडी चुप, इस बार कहा तो शूट कर दूंगा। सारे हिंसा के दृश्य देख रहे हैं। हिंसक के साथ अहिंसक दृश्य भी हो तो संतुलन हो सकता है। उन्होंने कहा–हमारी भी कुछ प्रतिबद्धताएं हैं। जनता ऐसे दृश्यों को देखना चाहती है।

भीतर जाने का अभ्यास

यह एक चक्र है। इसे कैसे तोड़ा जाए? यदि आप अपने बच्चों को, युवकों को आधा घंटा भी भीतर जाने का अभ्यास करा दें तो खतरा नहीं होगा। वे हिंसात्मक दृश्य देखेंगे तो भी खतरा नहीं होगा। भीतर जाने का अभ्यास नहीं हो रहा है, कोरी बाहर की यात्रा है तो निश्चित खतरा है। मुझे लगता है–दो-तीन-चार दशक के बाद आने वाली पीढ़ी ने अगर ध्यान नहीं दिया तो वह इतनी भयंकर पीढ़ी बन सकती है, फिर बाहर के शत्रुओं को देश पर आक्रमण करने की जरूरत नहीं, हर घर में आक्रमण की स्थिति बन जाएगी।

इसीलिए बड़ी जागरूकता के साथ हम निर्णय करें। संतुलन बनाएं, एक ओर कभी नहीं झुकें। न पदार्थ की ओर झुकें, न धर्म की ओर झुकें। कोरे धर्म से काम नहीं चलता, आखिर खाने के लिए रोटी चाहिए, पदार्थ की भी जरूरत पड़ती है, दोनों में संतुलन स्थापित करें। पदार्थ के स्थान पर पदार्थ का उपयोग और पवित्रता के स्थान पर धर्म का उपयोग। यह तभी संभव है जब मोह के उपशमन की साधना हो, दृष्टिकोण समन्वयात्मक हो। इस प्रकार जीवन में संतुलित विकास करें, भीतर की ओर जाने का प्रयास करें।

5. शरण है शुद्ध चेतना

इस दुनिया में आदमी अकेला नहीं है, दूसरा भी है। दूसरा होने के दो अर्थ हैं–सहयोग और भय। आदमी दूसरे से डरता है। उपनिषद् का एक सुंदर वचन है–द्वितीयाद् वै भयम्। जहां दूसरा हुआ, वहां भय पैदा हो गया। अकेले कमरे में रहता है, चिंता नहीं होती, दूसरा होते ही मन में आता है कि कहीं धन चुराकर तो नहीं ले जाएगा, कहीं कोई चीज इधर-उधर तो नहीं कर देगा। दूसरा होते ही भय पैदा हो गया।

एक बहन अकेली बैठी थी। कोई आदमी आया, कुछ रुपए बिखेर दिए और बोला–देखो, ये रुपए बिखरे पड़े हैं। तुम्हारा पति छोड़ कर गया है। उसने उधर देखकर रुपयों को इकट्ठा करना शुरू किया और पीछे से उसके पास जो थैला था, जिसमें हजार रुपए थे, लेकर चंपत हो गया। अकेले में कोई भय नहीं था। दूसरा आया और भय हो गया। कुछ लोग ऐसे हैं, जो अकेले होते हैं तो डरते हैं। दूसरे लोग आ जाते हैं तो डर समाप्त हो जाता है। दोनों ओर समस्याएं हैं–अकेले की समस्या, द्वंद्व की समस्या।

खोज शरण की

हमारी द्वंद्वात्मक दुनिया में द्वंद्व की समस्या है। दूसरा होना अच्छा भी है और दूसरा होना बुरा भी है। अब आदमी क्या करे? शरण की खोज करे। वह खोज दो दिशाओं में हुई है। एक बाह्य जगत की दिशा में शरण की खोज हुई और एक अंतर् जगत की दिशा में शरण की खोज हुई। जब बाह्य जगत की दिशा में शरण की खोज हुई तो वहां शस्त्र का निर्माण हुआ। आदमी के पास लाठी है और अकेला चलता है तो डर नहीं लगता, क्योंकि कुत्ता नहीं काटेगा। लाठी भी शरण बन गई और लाठी से काम नहीं चला तो फिर ऐसी लाठियां बनीं, जो बाहर से लकड़ी जैसी लगती हैं और भीतर से मानो शस्त्र हैं, फिर

तलवारें बनी, बंदूके बनीं, तोपे बनीं और अणुबम तक पहुंच गए, अणु अस्त्रों तक पहुंच गए–यह सारा विकास क्यों हुआ?

शस्त्रों का विकास शरण की खोज में हुआ। शस्त्र है तो शरण देगा और शस्त्र नहीं है तो कोई बचा नहीं सकेगा। शरण की खोज का प्रारंभ छोटी-सी लाठी के द्वारा हुआ और वह आगे विकसित होते-होते भयंकर अणु अस्त्रों तक पहुंच गया। क्या हम मान लें कि जिसके पास अणुबम है, उसे कोई भय नहीं है, उसे शरण मिल गई। यह कहना तो मुश्किल है। वह भी डर रहा है, अभय नहीं है तो हम एक सिद्धांत स्थापित करते हैं कि जहां बाहर में शरण की खोज है, वहां कोई अभय नहीं हो सकता, भय मुक्त नहीं हो सकता और विश्वास कर नहीं बैठ सकता, फिर भीतर शरण की खोज शुरू की, तब स्वर मुखर हुआ–

णाणं सरणं मे–ज्ञान मेरी शरण है।
दंसणं सरणं मे–दर्शन मेरी शरण है।
चरित्तं सरणं मे–चरित्र मेरी शरण है।
तवो सरणं मे–तप मेरी शरण है।
संजमं सरणं मे–संयम मेरी शरण है।
सरणं भगवं महावीरो–भगवान महावीर मेरी शरण है।

अब दो दिशाएं हो गईं–एक आदमी शरण खोज रहा है शस्त्रों में और दूसरा आदमी शरण खोज रहा है अपने भीतर। उसने यह मान लिया कि अंतिम सचाई यह है कि बाहर कोई शरण नहीं है। आजकल लोग कमांडो रखते हैं, क्योंकि वहां शरण दिखाई देती है, पर जो भी आतंकवादी या दूसरे आते हैं, वे सबसे पहले कमांडो को ही मारते हैं, फिर उस मालिक की शरण कहां रही? बड़ा कठिन कार्य है। बाहर की दुनिया में शरण है, यह कहना एकांततः कठिन है। भीतर की दुनिया में हम कह सकते हैं कि वहां एकांततः शरण है। वहां कोई भय नहीं है। एकांततः शरण का तात्पर्य है भय से मुक्त हो गया, आत्मा के सान्निध्य में चला गया। जब शरीर के सान्निध्य में रहता है, तब भय की भावना पैदा होती है और शरण की बात पैदा होती है। जब आत्मा की सन्निधि में चला गया–जहां ज्ञान, दर्शन, चारित्र, संयम, तप शरण है अथवा भगवान महावीर या यह कहें कि वीतराग शरण है, वहां भय समाप्त हो गया।

अशरण कौन?

अशरण का सबसे बड़ा कारण क्या है? सबसे बड़ा कारण है अज्ञान। हमारा ज्ञान सम्यक् नहीं है। हमारा चिंतन का तरीका सही नहीं है। हम सोचते हैं, चिंतन करते हैं, पर सम्यक् चिंतन नहीं करते अथवा सम्यक् चिंतन करना नहीं जानते। वहीं से भय पैदा होता है। अगर सम्यक् चिंतन करना सीख जाएं तो भय समाप्त हो सकता है। आदमी अपने अज्ञान के कारण सही सोचना नहीं जानता। एक कुंभकार गधे को लेकर पशु चिकित्सालय में गया। डॉक्टर ने उसे देखा, दवाई दी और गधा एकदम दौड़ने लग गया। उसने कहा–आप फीस क्या लेंगे? डॉक्टर ने कहा–एक रुपया। डॉक्टर साहब! गधा तो दौड़ गया, भाग गया। मैं पीछे रह गया। मुझे दो रुपए की दवाई दो तो गधे को जाकर पकड़ लूंगा। चिंतन भी गलत है, सोचने का तरीका भी सही नहीं है।

चिंतन का तरीका सही होना चाहिए। मैं देखता हूं कि धर्म के क्षेत्र में भी बहुत कम लोग हैं, जो सम्यक् प्रकार से चिंतन करते हैं। पारिवारिक क्षेत्र में और संस्थाओं के क्षेत्र में भी सब जगह वाद-विवाद, कलह, कदाग्रह का कारण है–सम्यक् चिंतन का अभाव। कभी हमारा चिंतन क्रोध से ग्रस्त हो जाता है, कभी अहंकार से अभिभूत हो जाता है और कभी लोभ और स्वार्थ से प्रभावित हो जाता है।

स्थानाङ्ग सूत्र में असत्य के दस प्रकार बतलाए गए हैं–एक आदमी झूठ बोलता है, वह असत्य है। उसे सब मानेंगे। एक आदमी गुस्से में आकर बोलता है, वह वचन भी असत्य वचन है। कुछ लोग आवेश में आकर कह देते हैं कि मुझे चारों आहार-पानी का त्याग है, संथारा–अनशन कर लेते हैं, फिर हमारे पास आते हैं। उसने अनशन कर लिया, अब क्या करें? वह खाए बिना रह नहीं सकता।

मैंने कहा–उसे अनशन क्यों मानते हो? आवेश में आकर अगर कोई सत्य बात भी कहता है तो आगम का सिद्धांत है कि वह असत्य वचन है, सत्य नहीं है, क्योंकि वह क्रोध से आविष्ट चेतना से काम कर रहा है।

शरण है शुद्ध चेतना

हमारी चेतना दो प्रकार की होती है–अनाविष्ट चेतना और आविष्ट चेतना। जब चेतना आविष्ट होती है, किसी आवेश से ग्रस्त होती है तो उस

समय वचन भी, चिंतन भी सत्य नहीं होता, असत्य हो जाता है। हम अनाविष्ट चेतना से काम करें, काम सही होगा। हमारा सम्यक् चिंतन हमारी सबसे बड़ी शरण है।

मैंने स्वयं अनुभव किया है। चिंतन सही नहीं होता तब विवाद बढ़ जाता है। चिंतन सही हो जाता है, अनेकांतात्मक हो जाता है, विवाद समाप्त हो जाता है। सम्यक् चिंतन और सम्यक् ज्ञान वास्तव में शरण है। हमारा सम्यक् दृष्टिकोण भी शरण है। गलत दृष्टिकोण भय पैदा करता है, समस्या पैदा करता है और सम्यक् दृष्टिकोण शरण बन जाता है। बहुत कुछ निर्भर है दृष्टिकोण पर। हमारा दृष्टिकोण कैसा है? जब तक हम दृष्टिकोण को सही नहीं करते, तब तक कुछ नहीं होता।

दृष्टिकोण गलत है, वह क्रिया भी यथार्थ नहीं होती, एक विकृति पैदा करती है। एक आदमी बाजार में साग-सब्जी लाने के लिए फटा हुआ चोला और मैला पजामा पहनकर जाता है। किसी ने पूछ लिया–तुम संपन्न आदमी हो, ऐसे कपड़े पहनकर बाजार में क्यों आते हो? बोला–तुम समझते नहीं हो, मैं बढ़िया कपड़े पहनकर जाता हूं तो सब्जी महंगी मिलती है और ऐसे कपड़े पहनकर जाता हूं तो सब्जी सस्ती मिलती है। उसने कहा–फिर हाथ में कटोरा रख लो, बिना पैसे ही मिल जाएगी। ऐसी स्थिति में क्या करें?

जब सही दृष्टिकोण ही गलत हो जाता है तो उसे चाहे स्वार्थ से ग्रस्त दृष्टिकोण कह दो, चाहे स्वार्थ से प्रभावित, चाहे लोभ से प्रभावित दृष्टिकोण कहो। देखने का कोण ही बदल गया, फिर वह आदमी कोई अच्छा काम कर नहीं सकता और भय मुक्त भी नहीं हो सकता। आशंका बनी की बनी रहती है।

सम्यक् चरित्र की शरण

सम्यक् चरित्र सबसे बड़ी शरण है। जिस आदमी का आचरण अच्छा है, वह स्वयं में शरण है, उसे शरण खोजने की जरूरत ही नहीं है, क्योंकि उसका ज्ञान अच्छा हो गया, दृष्टिकोण अच्छा हो गया तो फिर भय टिक ही नहीं सकता।

सिकंदर एक संन्यासी को अपने देश में ले जाना चाहता था। उसे पता चला कि यहां एक बहुत अच्छा तपस्वी है। वह जंगल में गया, जाकर संन्यासी

के सामने खड़ा हो गया। बोलो, क्या चाहते हो? कुछ नहीं चाहता। धूप सामने आ रही है। तुम आगे आ गए, हट जाओ। एक तरफ हो जाओ।

सिकंदर बोला–मैं इसलिए आया हूं कि तुम मेरे देश में चलो।

बोला–मैं नहीं जाऊंगा। एक बार कहा, दो बार कहा, तीन बार कहा। एक ही उत्तर दिया।

सिकंदर ने हाथ में तलवार लेकर कहा–तुम नहीं जानते, तुम्हारे सामने विश्व विजयी सम्राट सिकंदर खड़ा है? मेरे साथ चलो, नहीं तो सिर कट जाएगा।

तपस्वी बोला–सम्राट! तुम अपने घर में रहो, मुझे क्यों डराते हो? तुम कहते हो सिर कट जाएगा, सिर मेरा है ही नहीं, कट जाएगा तो कोई बात नहीं। सिकंदर झुक गया।

अब उसका क्या करे? जिसको चिंता नहीं कि सिर कट जाएगा। दुनिया में इससे आगे कोई डराने का, धमकाने का उपाय नहीं है। अंतिम उपाय है मार डालूंगा। जो मरने से भी नहीं डरता, उसे फिर किसका डर होगा?

मैंने भिक्षु स्वामी के बारे में एक कविता लिखी–

मौत से मरता नहीं मैं,
मौत मुझसे मर चुकी है।
मौत से डरता नहीं मैं,
मौत मुझसे डर चुकी है।

सारी दुनिया शरण

जो व्यक्ति अभय है उस आदमी का कौन क्या करेगा? दुनिया की कोई ताकत नहीं कि उसे मार सके। एक बार कुछ भिक्षु भगवान बुद्ध के सामने आए और बोले–हमें जनपथ विहार की आज्ञा दें। बुद्ध ने कहा–देखो, तुम जिस जनपथ विहार के लिए जाना चाहते हो, वहां तुम्हें कष्ट हो सकता है। कोई गालियां दे सकते हैं। उन्होंने कहा–कोई कठिनाई नहीं है, हम सहन करेंगे। तुम्हारी पिटाई कर सकते हैं। जब गालियां देंगे तो हम सोचेंगे कि हमें गालियां दी, पीटा नहीं और जब पीटेंगे तब हम सोचेंगे कि पीटा है, मारा तो नहीं। अगर

मारने पर उतारू हो जाएंगे तो हम सोचेंगे कि शरीर को ही तो मारेंगे, हमारी आत्मा को तो कोई नहीं मार सकता। जब इस कक्षा में कोई व्यक्ति पहुंच जाता है, इस भूमिका पर आ जाता है, फिर उसके लिए सारी दुनिया शरण बन जाती है। वह अपने आप में भी शरण की अनुभूति करता है। जब आदमी भीतर चला गया तो उस व्यक्ति को बाहर में शरण खोजने की जरूरत नहीं होती। यह अध्यात्म का चिंतन है।

आत्मा की शरण

एक भीतर की शरण है और एक है बाहर की शरण। दोनों में अंतर है। एक ओर शस्त्रों का विकास हुआ और एक ओर चेतना का विकास हुआ। व्यवहार की दुनिया में जीने वाला आदमी अपनी सुरक्षा की व्यवस्था करता है। वह यह मान कर चलता है कि केवल व्यवहार की दुनिया में सुरक्षा नहीं है। व्यक्ति को अपने भीतर की सुरक्षा की तैयारी करनी चाहिए। अगर भीतर की सुरक्षा है तो बाहर का तो व्यवहार है, पर अगर आत्मा की सुरक्षा की बात नहीं है तो फिर व्यवहार भी नहीं होगा।

आत्मा की शरण है यानी अपनी चेतना की शरण है। जिसमें सम्यक् ज्ञान का विकास है, जिसमें सम्यक् दर्शन का विकास है, जिसमें सम्यक् चारित्र का विकास है, जिसमें संयम की शक्ति यानी इन्द्रियों के निग्रह करने की शक्ति है, मन का निग्रह करने की शक्ति है और जिसमें तप के द्वारा पूर्व संस्कारों के शोधन की शक्ति है, वह व्यक्ति आत्मा की वास्तविक शरण में चला जाता है। यह अंतिम सचाई है।

जब नमि राजर्षि मुनि बन रहे थे, तब इन्द्र ब्राह्मण वेश में सामने आकर खड़ा हो गया। उसने कहा–आप मुनि बन रहे हो, यह उपयुक्त समय नहीं है। मुनि बनना है, पर पहले आप राजा हैं, शासक हैं और मिथिला का पूरा राज्य आपका है। पागारं कारायित्ताणं–पहले आप प्राकार बनाओ–सुरक्षा के जितने साधन हैं, उन साधनों का, शस्त्रों का निर्माण करो, फिर आप मुनि बनना।

राजर्षि ने कहा–मुझे कोई डर ही नहीं है। मैं शस्त्र का निर्माण किसलिए करूं? तुम कहते हो प्राकार बनाओ। मैंने तो अपना प्राकार बना लिया। तीन गुप्तियों से गुप्त हो गया–मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति–ये तीन गुप्तियां

हैं। इनसे शक्तिशाली दुनिया में और कोई प्राकार नहीं है। दूसरे प्राकारों को तोपों के गोलों से या प्रक्षेपास्त्रों से भी तोड़ा जा सकता है।

मैंने जो अपना प्राकार बनाया है त्रिगुप्ति का, इसे तोड़ने की किसी शस्त्र में शक्ति नहीं है। यह अध्यात्म की खोज है। जो व्यक्ति अध्यात्म की शरण में जाता है, वह सर्वथा अभय बन जाता है, इसलिए सब लोग अभय बनने का प्रयत्न करें।

6. स्व को समझें

एक है शब्दों का संसार और दूसरा है विचारों का संसार। शब्द और विचार दोनों साथ-साथ चलते हैं। किसी को अच्छा लगता है, किसी को नहीं भी लगता, किंतु दोनों का प्रवाह निरंतर जारी है। बहुत लोग प्रवचन करते हैं। अनेक विषयों पर बोलते हैं। वे अपने प्रवचन में पदार्थ की उपयोगिता पर बहुत बल देते हैं। पदार्थ की चर्चा सुनते-सुनते व्यक्ति नीरसता का अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में अपदार्थ की खोज हो, यह जरूरी है।

'स्व' पर ध्यान रहे

यदि पदार्थ से अपदार्थ की ओर आकर्षण बढ़ता है तो यह एक अच्छा अनुभव है। कुछ लोग परमात्मा के बारे में बहुत बोलते हैं। आत्मा और परमात्मा के बारे में उनका लंबा प्रवचन होता है। बात तो बहुत अच्छी है, किंतु आत्मा और परमात्मा के बीच में इतनी अधिक दूरी है कि निकट जाने में कठिनाई ही नहीं, बहुत ज्यादा कठिनाई है, इसलिए यह दूर की बात मन में आकर्षण पैदा नहीं करती।

मेरा केन्द्रीय विषय है 'स्व' यानी व्यक्ति। न पदार्थ, न आत्मा, न परमात्मा। प्रसंगवश ये विषय भी आते हैं, किंतु मूल है उसका स्व, स्वयं व्यक्ति। समस्या का जनक व्यक्ति स्वयं ही है और समस्या का समाधान भी व्यक्ति स्वयं ही करता है। जहां से समस्या पैदा होती है, वहां से समस्या का समाधान होता है। स्व ज्यादा प्रिय होता है। जहां पराया है, वहां तो ऊब आ सकती है, किंतु स्व से कोई ऊब नहीं होती, बल्कि भीतर से और ज्यादा आनंद की अनुभूति होती है।

सुख का स्रोत तो हमारे भीतर है, बाहर नहीं है, किंतु हम अपने अज्ञान के कारण आनंद और सुख को नहीं पकड़ पाते, उसके स्थान पर दुःख और

समस्या को पकड़ते हैं। अगर हमारा चिंतन बदल जाए और हम 'स्व' को पकड़ने का प्रयत्न करें, अपने अस्तित्व पर ध्यान केन्द्रित करें तो बहुत बड़ा समाधान हो सकता है।

हम विश्व की बात करें, बहुत अच्छी बात है। अपने राष्ट्र की, अपने समाज की बात करें, बहुत अच्छी बात है, किंतु उसके साथ-साथ यदि 'स्व' की बात नहीं करेंगे, कोई बहुत सार्थक समाधान नहीं आएगा। न समाज की समस्या को अच्छा समाधान मिल पाएगा, न राष्ट्र और न विश्व की समस्या को समाधान मिल पाएगा। सबसे पहले पकड़ना है व्यक्ति को, स्व को। यह एक तरह से अपने ही दर्पण में अपना बिंब देखना है। यदि अपनी चेतना का दर्पण इतना उजला, पारदर्शी और पवित्र है तो वह हमारे लिए बहुत उपयोगी बन सकता है।

राग और विराग का संतुलन

समाज रागात्मक होता है। हम एकदम वीतरागता की बात समाज के सामने नहीं कर सकते। यदि करेंगे तो कोई सुनेगा भी नहीं। हमें समाज की प्रकृति को भी समझना है तो साथ-साथ वीतराग की बात को भी समझना है। कोरा राग एकाकार होता है। आदमी अपने आपको भूल जाता है और वह बहुत अनर्थकारी होता है। कोरा वैराग्य चल भी नहीं सकता। हमें तो ऐसा मार्ग चुनना है, जहां राग और विराग का संतुलन हो। दिन-रात, चौबीस घंटे केवल एक रागात्मक कथा ही सामने आए, जिसमें ऐसे चित्र, ऐसी घटनाएं, ऐसे दृश्य सामने आते हैं कि पवित्र चेतना तो सुप्त हो जाती है और एनीमल ब्रेन या पशु मस्तिष्क की परत जागृत हो जाती है। वैसी स्थिति में सारे अपराध होते हैं। समाचार-पत्रों में ऐसे अपराधों की कहानियां प्रथम पृष्ठ पर छपती हैं। ऐसा क्यों होता है?

वर्तमान में एनीमल ब्रेन को बहुत जागृत किया जा रहा है। जरूरत है, उससे बचा जाए और राग तथा विराग का संतुलन किया जाए। दिन-रात के, चौबीस घंटों में एक घंटा-दो घंटा वैराग्य की बात को भी सुनने और देखने का अवसर निकाला जाए। ऐसा होता है तो शायद फिर केवल रागात्मकता नहीं होगी और पाशविकता भी जागृत नहीं होगी। दोनों में संतुलन के बिना काम नहीं होता। संतुलन नहीं होता तो व्यक्ति 'स्व' को भुला देता है। अपनी विस्मृति हो जाती है, फिर 'स्व' और 'पर' की स्मृति भी व्यामोहात्मक हो जाती है।

पति ने पत्नी से कहा–'इतनी देर हो गई इस्तरी को काम ले रही हो।'

पत्नी बोली–'पड़ोसी से मांगकर लाई हूं, तुम क्यों चिंता करते हो?'

पति बोला–'इस्तरी पड़ौसी की है, पर बिजली पड़ौसी की नहीं है, वह मेरी खर्च हो रही है। इस पर तो ध्यान दो।'

जहां सचाई को भुला दिया जाता है, वहां ऐसी भ्रांतियां पैदा हो जाती हैं। इन भ्रांतियों के कारण आदमी बहुत गलत काम कर लेता है। वह गलत को भी सही मान लेता है। उसे लगता ही नहीं कि यह गलत है।

जब चेतना में भ्रांति होती है तो आदमी को गलत बात भी सही लगती है। मिथ्यात्व का लक्षण है मार्ग को कुमार्ग और कुमार्ग को मार्ग मान लेना। जो मार्ग है, उसे तो उन्मार्ग मान लेता है और जो उन्मार्ग है, उसे मार्ग समझ लिया जाता है।

कुछ लोग नौका पर सवार हुए। नौका नदी के बीच धार में पहुंची तो पानी की एक तेज लहर आई और भंवर में फंसकर नौका बुरी तरह से हिचकोले खाने लगी। ऐसा लग रहा था मानो नौका डूबने वाली है। नौका में सवार लोग बुरी तरह घबरा गए। उसमें सवार एक युवक बोला–'नौका डूबती है तो डूबे, यह हमारी नहीं है। हमने तो केवल दो रुपये किराया खर्च किया है, उसका संतोष कर लेंगे।'

नौका के डूबने के साथ स्वयं के डूब जाने की बात आदमी भूल जाता है। न जाने ऐसी कितनी भ्रांतियां मोहात्मक और मूर्च्छात्मक चेतना के द्वारा होती हैं। उन भ्रांतियों के साथ आदमी जीता है तो अपने साथ भ्रांतियों का पूरा एक समूह खड़ा कर लेता है। भ्रांति पैदा न हो, मूर्च्छा न हो। उसके लिए जरूरी है संतुलन।

आदमी अपने को जानना चाहता है, पहचानना चाहता है। यह स्व-बोध, अपने अस्तित्व का बोध, अपनी चेतना का बोध, पदार्थ और अपदार्थ को समझने का बोध व्यक्ति और समाज–दोनों के लिए बहुत कल्याणकारी है। इसको हम ध्यान में रखकर इस दिशा में विकास करें तो निश्चय ही बड़े अच्छे और कार्यकारी परिणाम आएंगे।

7. स्वयं से परिचय करो

हम बाहर के जगत से बहुत परिचित हैं। गांव को देखते हैं, मकानों को देखते हैं, मनुष्यों को देखते हैं, पशु-पक्षियों को देखते हैं। ये सब परिचित हैं और अध्ययन के द्वारा पूरे जगत से परिचित हो रहे हैं। अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका आदि देशों को जानते हैं। हमारी कठिनाई है कि हम बाहर से बहुत परिचित हैं, किंतु अपने आप से बिल्कुल परिचित नहीं हैं, अपने भीतरी जगत से परिचित नहीं हैं। ध्यान अपने आप से परिचित होने का एक उपाय है। आदमी अपने आपको जाने, अपने आपको पहचाने और अपने आप से परिचित हो जाए। केवल दूसरों पर ही सारा ध्यान केन्द्रित न करे।

स्वयं को देखो

भीतर की दुनिया बहुत बड़ी दुनिया है। हम उसे नहीं जानते। आंख सबको देखती है, किंतु आंख को जब स्वयं को देखना होता है तब कांच के सामने जाना होता है। आपने अपने आप को देखने के लिए कोई शीशा बनाया या नहीं, जिसके सामने खड़े होकर आप अपने आपको देख सकें। वह शीशा है आंख को बंद कर लेना, कान को बंद कर लेना, बाहरी स्पंदनों को भी बंद कर लेना और इन्द्रियों से परे चले जाना। जब-जब आप भीतर जाएंगे, एक दर्पण आपके सामने आएगा और आप अपने आपको देख सकेंगे, जान सकेंगे, पहचान सकेंगे। एक बहुत बड़ा विज्ञान सामने आएगा और आप अपने आपको देख सकेंगे, जान सकेंगे, पहचान सकेंगे। अपने आपको देखने के साधन हैं–इन्द्रियों से परे जाओ और मन से भी परे जाओ। मन से परे जाकर देखो तब पता लगेगा कि मेरा अस्तित्व क्या है? मैं कौन हूं? क्या हूं? अभी तो पता नहीं लग रहा है कि मैं कौन हूं? अभी तो केवल जो नाम मिला, वह नाम हो गया। जो जाति मिली, वह जाति हो गई, जो संप्रदाय मिला, वह संप्रदाय

हो गया। सारा बाहरी व्यक्तित्व है, बाहरी निमित्तों, साधनों और उपादानों से बना हुआ है।

हमारी चेतना कहां है?

वास्तव में हम क्या हैं? हमारा स्वरूप क्या है? इसका कोई पता नहीं है। अपने आप अपने स्वरूप का पता लगाना बड़ा कठिन है कि मैं कौन हूं? मैं क्या हूं? कहां हूं? एक अमेरिका का उद्योगपति था हुकर। वह यात्रा कर रहा था। अपना हेलीकॉप्टर स्वयं ही चला रहा था। अचानक हेलीकॉप्टर खराब हो गया। जंगल में उतरना पड़ा। स्वयं पेड़ पर चढ़ गया। भयंकर जंगल में कोई आदमी दिखाई नहीं दे रहा था। थोड़ी देर बाद एक आदमी आया।

हुकर ने पूछा–यहां कोई बस स्टैंड है या नहीं है? यहां कोई रेलवे स्टेशन है या नहीं? कोई हवाई अड्डा है या नहीं है? उत्तर दिया–कुछ भी नहीं है।

हुकर बोला–तुम इतना ही नहीं जानते हो कि तुम कहां रहते हो?

वह आदमी बोला–महाशय! मैं इतना तो जानता हूं कि मैं कहां हूं, पर आप यह भी नहीं जानते कि आप कहां हैं? हमारी स्थिति यह है कि हम नहीं जानते कि हम कहां हैं? हमारी चेतना कहां है?

बिंब को देखें

आज की समस्या क्या है? जब-जब समाज की चेतना नाभि के आस-पास और नाभि के नीचे होती है, तब हिंसा, अपराध, अनैतिकता आदि बुराइयां पनपती हैं। जब हमारी चेतना नाभि से ऊपर विशुद्धिकेन्द्र या दर्शनकेन्द्र पर रहती है यानी दोनों भृकुटियों के बीच आ जाती है तो सारी समस्याएं समाप्त हो जाती हैं। मैं कहां हूं? इस बात को जानना बहुत जरूरी है और मैं कौन हूं? यह जानना भी जरूरी है। क्या किसी ने अपना चेहरा देखा है? जब-जब शीशे के सामने जाकर खड़े होते हैं, तब-तब अपना चेहरा देखते हैं। मैं नहीं मानता कि किसी ने अपना चेहरा देखा है। सबने अपना प्रतिबिंब देखा है।

बिंब कहां देखा? प्रतिबिंब या परछाई देखी है। अपना मूल स्वरूप कहां देखा है? एक दिन मैंने देखा–चिड़िया आधा घंटा तक प्रतिबिंब पर चोंच मारती रही। जहां प्रतिबिंब है, वहां लड़ाई होती है। जहां बिंब है, वहां कोई लड़ाई नहीं होती। जहां प्रतिध्वनि है, वहां लड़ाई होती है। जहां ध्वनि है, वहां

लड़ाई नहीं होती। प्रतिबिंब और प्रतिध्वनि दोनों ही समस्या पैदा कर रहे हैं। एक लड़का भयंकर जंगल में गया। वहां उसे बहुत डर लगता। डरावनी आवाज में बोलता तो वापस प्रतिध्वनि आती। लड़का बहुत डर जाता। एक दिन मां से कहा–जंगल में कोई भूत रहता है, वह मुझे बहुत डराता है।

मां यथार्थता को समझती थी। मां ने कहा–बेटा! ऐसा करो कि आज तुम जंगल में जाओ। वहां जाकर बोलना–मैं तुझसे बहुत प्यार करता हूं। तुम मेरे मित्र हो। उसने वैसा ही कहा। वापस प्रतिध्वनि आई। मैं तुमसे बहुत प्यार करता हूं, तुम मेरे मित्र हो। उसने सोचा–हां, मां ने भूत को शांत कर दिया। हम प्रतिध्वनि को सुनते हैं और उसी के आधार पर अपनी कल्पना बनाते हैं। प्रतिबिंब को देखते हैं और उसी को अपना स्वरूप मान लेते हैं।

नाम और रूप

हम केवल बाहर को देखते-देखते इतने बेभान हो जाते हैं कि अपना कोई पता ही नहीं रहता, हम अपने आपको नहीं जानते। हम सबकुछ दूसरे के माध्यम से जानते हैं। दूसरे के माध्यम से यानी नाम और रूप के आधार पर जानते हैं। तुम्हारा नाम क्या है? बस पहचान हो गई। नाम को जानते हैं, रूप को जानते हैं। संप्रदाय में रूप के आधार पर पहचान होती है। जब मुंहपत्ती होती है तो महाराज बन जाते हैं और मुंहपत्ती नहीं होती, तब आदमी बन जाते हैं। हम नाम और रूप से परिचित हैं। अपने आप से परिचित नहीं हैं। नाम भी हमारा आरोपित है, आकार भी हमारा आरोपित है। हमारी चेतना, हमारी आत्मा, हमारा अपना असली स्वरूप हम नहीं जानते और वह तब तक नहीं जान पाएंगे, जब तक इन्द्रिय जगत में रहेंगे। हमें कभी न कभी इन्द्रिय जगत से परे अतीन्द्रिय चेतना की यात्रा करनी होगी, अंतर्यात्रा करनी होगी। सारी की सारी बाहर की यात्रा चल रही है। हम भीतर की यात्रा नहीं कर पा रहे हैं।

भीतर है आनंद

प्रेक्षाध्यान का शिविर चल रहा था। ध्यान का अभ्यास करने वाले लोग प्रायः मेरे पास आते थे। मैं कभी-कभी उन्हें पूछता था–ध्यान का प्रयोग कैसा चल रहा है? वे कहते–बहुत आनंद आ रहा है। आनंद कहां से आया? हमारे मुनिजी जो प्रयोग करवा रहे थे, उन्होंने आपको एक पैसा भी नहीं दिया, अन्य

कोई वस्तु भी नहीं दी, फिर आनंद कहां से आया? उन्होंने उत्तर दिया–हम अपने भीतरी जगत के आनंद का अनुभव कर रहे थे।

एक बार हम दिल्ली में थे। विदेशी लोगों के लिए एक शिविर था। उस शिविर में अमेरिका, यूरोप, कनाडा आदि अनेक देशों के लोग आए हुए थे।

अमेरिका की हवाई यूनिवर्सिटी एक प्रोफेसर ग्लेंडीपेज शिविर में थे। चैतन्यकेन्द्र पर ध्यान का प्रयोग कराया। जैसे ही प्रयोग संपन्न हुआ, वे मेरे पास आए। आकर बोले–महाप्रज्ञ जी! आज मुझे जितना आनंद आया, जीवन में कभी नहीं आया। मैं अमेरिका में रहने वाला हूं। मुझे सब सुविधाएं प्राप्त हैं, पर इतना आनंद कभी भी अनुभव नहीं किया। आप सोचेंगे आनंद कहां से आया? हमारे भीतर बहुत कुछ है। हमारे भीतर सुख है, आनंद है, शक्ति है, ज्ञान है, पर हम उनसे परिचित नहीं हैं।

योग मिले ज्योतिषी का

जो स्वयं से परिचित नहीं होता उसकी अवस्था विकट बन जाती है। एक युवक बाजार में भीख मांग रहा था। सामने से एक ज्योतिषी आया। वह फेस रीडिंग करने वाला था। उसने उसकी आकृति देखी, ललाट की रेखाएं देखी और बोला–इसकी रेखाएं कहती हैं कि यह गरीब नहीं है, भिखारी नहीं है और यह भिखारी बना हुआ भीख मांग रहा है। अपने ज्ञान को प्रमाणित करने के लिए वह उसके पास गया और बोला–युवक! तुम भीख क्यों मांग रहे हो?

बोला–मैं भी संपन्न था। कभी करोड़पति आदमी का बेटा था, पर पिता की मृत्यु हो गई। मैं छोटा था। सब धन मेरे परिवार वालों ने लूट लिया और मैं अनाथ हो गया। अब भीख मांगने के सिवाय मेरे पास कोई चारा नहीं है।

उसने कहा–तुम भिखारी तो नहीं हो सकते। युवक ने कहा–सचाई यही है कि मैं भिखारी हूं। उसने उसको ध्यान से देखा।

ध्यान देकर कहा–तुम्हारे गले में ताबीज है। उसके भीतर बहुत बड़ा हीरा होना चाहिए। युवक ने ताबीज खोला। खोलते ही चमचमाता हीरा मिल गया। हीरा बेचा और फिर से धनी बन गया। वह हीरा सबके पास बंधा हुआ है। अपेक्षा है, कोई वैसा ज्योतिषी मिल जाए, जो आपको बता दे कि तुम्हारे पास हीरा है। हम जानते नहीं हैं कि हमारे पास आनंद है। अगर यह भ्रांति टूट जाए

तो आदमी अपने आपको जान सकता है, पहचान सकता है और सारी स्थिति बदल सकती है।

हमारा ध्यान के प्रयोग में विश्वास है। कोरी बात कहने में विश्वास नहीं है। वाचिक उपदेश में, कथा में हमारा विश्वास है। उससे चालीस प्रतिशत आदमी बदलता है, उससे भी परिवर्तन आता है, सोचने का दृष्टिकोण बदलता है। साठ या सत्तर प्रतिशत परिवर्तन करना हो तो हमें प्रयोग की भूमिका पर जाना होगा, प्रयोग करना होगा। जब आप प्रयोग करेंगे तो पता चलेगा कि भीतर क्या है?

सिद्धांत और प्रयोग–दोनों का एक समन्वय है। ध्यान का प्रयोग दोनों का सहवर्ती प्रयोग है। ध्यान करने वालों ने बहुत रस लिया और रस के साथ प्रयोग कर रहे थे। अगर यह प्रयोग बचपन से ही शुरू हो जाए तो व्यक्ति न नशे में जाएगा, न अपराध में जाएगा और न बुराई में जाएगा। एक नई पीढ़ी का निर्माण होगा। ध्यान के अनेक प्रयोग हैं। उनमें एक है श्वास का प्रयोग। अगर श्वास लेने का सही तरीका आ जाए तो अन्य बातें अपने आप आ जाती हैं। जिन लोगों ने श्वास का प्रयोग किया है, वे आगे बढ़ गए। जिन्होंने इसका प्रयोग नहीं किया, वे वर्ष में दस दिन तक एक बार ध्यान शिविर अवश्य करें और श्वास के प्रयोग सीखें। जैसे मोटर चलते-चलते खराब होती है, सर्विस में दे देते हैं, ठीक हो जाती है। हर चीज को विश्राम देना होता है। आप भी मान लें कि वर्ष में दस दिन ऐसा विश्राम करें, जिससे शरीर के सारे पुर्जे दुरुस्त हो जाएं। शरीर ठीक हो जाएगा, मन और भावना भी ठीक हो जाएगी।

ध्यान है जीवन जीने की कला

ध्यान का प्रयोग अध्यात्म की चेतना को जगाने का, सबके साथ एकात्मकता, भाईचारा, आत्मीय संबंध और मानवीय संबंधों को सुधारने का बहुत बड़ा प्रयोग है। इसके द्वारा कलह का निवारण होता है। यह हमारा अनुभव है। हजारों-हजारों लोगों ने अनुभव किया और बताया कि ध्यान के प्रयोग से घर में शांति हो गई। मन की शांति, आत्मा की शांति और परिवार की शांति के लिए प्रयत्न करें।

एक बार एक अंतर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस हुई थी। मैंने उसमें कहा–सब लोग विश्व-शांति की बात करते हैं। हमारा इसमें विश्वास नहीं है। पहले अपनी

शांति की बात करें। वहां से शुरू करें, फिर विश्व शांति का रास्ता खुलेगा। अपने आप में तो अशांत हैं और विश्व शांति की बात करते हैं। घर में झगड़ा चलता है और बाहर जाकर स्टेज पर विश्वशांति की बात करते हैं। घर में तो शांति है ही नहीं और बाहर शांति की बात करें, अच्छा नहीं होता, इसलिए व्यक्ति पहले अपने आप में शांति का अनुभव करे।

विश्व शांति का मार्ग भी प्रशस्त होगा। यह ध्यान का प्रयोग पूरे जीवन का दर्शन है। इसके द्वारा आहार संयम, वाणी संयम, शरीर का संयम करना है और आरोग्यपूर्ण स्वस्थ जीवन जीना है। यह जीवन जीने की अद्‌भुत कला है। इस कला को समग्रता से समझकर इसका उपयोग करें।

8. स्वयं को जानो

धर्म को समझने का अर्थ है अपने आपको समझना। व्यक्ति दूसरों को बहुत समझता है, जानता है, किंतु अपने बारे में बहुत कम जानता है। आश्चर्य है कि जो स्वयं के बारे में कम जानता है, वह दूसरों को कैसे जानता है? अंग्रेजी में जैन पारिभाषिक कोष बनाने का काम चल रहा था। उस प्रसंग में प्रोफेसर भार्गव और गुलाबचन्द चिण्डालिया दोनों बैठे थे। गुलाबजी ने एक बड़ी अच्छी बात कही–हमें ज्ञान के लिए नॉलेज शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वहां नोइंग शब्द होना चाहिए।

नॉलेज तो सारा इन्फॉर्मेशन से जुड़ा हुआ है। वर्तमान की सारी शिक्षा सूचनात्मक है। कहां, कितना, क्या हो रहा है? उसकी सारी जानकारियां मिल जाती हैं। भूगोल, इतिहास आदि विषयों में सूचनाएं ज्यादा हैं। किस देश में क्या हो रहा है? कितना व्यापार होता है? कहां, कितना,क्या उत्पाद होता है? आदि बहुत सारी सूचनाएं मिल जाती हैं। शिक्षा का रूप भी ज्ञानात्मक न होकर सूचनात्मक बन गया है।

ज्ञानी कौन?

हमें ज्ञान पर विचार करना चाहिए। यह प्रश्न होगा कि यह विश्व क्या है? पदार्थ क्या है? मैं कौन हूं? कहां से आया हूं? जो व्यक्ति अपने बारे में नहीं सोचता, उसके धार्मिक बनने में भी शायद कठिनाई होती है। आचारांग सूत्र द्वादशांगी का पहला सूत्र है। उसमें भगवान महावीर का मूल वचन है। उसका एक सूक्त है–अप्पाणं विप्पसायए। आत्मा को प्रसन्न रखो।

कभी-कभी आदमी कहता है कि मैं खुश हूं। खुश रहना अलग बात है और प्रसन्न होना अलग बात है। बादल नहीं है तो आकाश स्वच्छ है, निर्मल

है, प्रसन्न है। आत्मा को निर्मल बनाओ, आत्मा पर ज्यादा लेप मत लगाओ, जिससे तुम्हारा ज्ञान नीचे दब जाए। हर आदमी के पास ज्ञान बहुत है यानी वह बहुत पढ़ा-लिखा है। पढ़ा-लिखा कौन होता है? जो स्कूल में गया, पुस्तकें पढ़ी, उसे हम मानते हैं कि पढ़ा-लिखा आदमी है। जो कभी स्कूल में नहीं गया, किंतु ज्ञान जागृत है, हम उसे पढ़ा-लिखा नहीं मानते, क्योंकि हमने ज्ञान को केवल सूचनात्मक मान लिया है। अगर ज्ञान को ज्ञानात्मक मानते तो शायद पढ़े-लिखे की परिभाषा करने में कठिनाई हो जाती। जो स्कूल में नहीं गए, किंतु भीतर से ज्ञान पैदा हो गया, वे बहुत बड़े ज्ञानी हो गए। पढ़े-लिखे माने जाने वाले लोग उन्हीं के नीचे काम करते हैं, उनके विचारों को महत्त्व देते हैं।

अपने आपको समझने का मतलब है अपनी क्षमताओं को समझना। हमारे भीतर जो है, उसको समझना है। जैन दर्शन की दृष्टि से विचार करें तो आत्मा में चार अनंत माने गए हैं–अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंद और अनंत शक्ति। यह अनंत चतुष्टयी आत्मा का गुण है, स्वभाव है। हम अपने ज्ञान का उपयोग कहां करते हैं, कहां अपने दर्शन का उपयोग करते हैं और कहां आनंद का उपयोग करते हैं? बाहर का ज्ञान प्राप्त करना है तो पुस्तकें पढ़ो, विद्यालय जाओ। दर्शन प्राप्त करना है तो दृष्टिकोण सही बनाना होगा। आनंद प्राप्त करना है तो खेल-कूद मनोरंजन का कोई साधन ले लो, टी.वी. देखो, जिससे मनोरंजन हो जाए। जब-जब क्रिकेट कम्पीटिशन होता है, अन्य सारे कार्य भूल जाते हैं। आनंद पाने के लिए मनोरंजन में लग जाते हैं। शक्ति पाना है तो फिर टोनिक खाओ, शक्ति को प्राप्त करो। यह सारा व्यवहार में चलता है।

जागरण ब्रह्ममुहूर्त में

हमें सोचना है कि हमारे भीतर जो है, उसका हम उपयोग करते हैं या नहीं करते? वह तब तक नहीं कर सकते, जब तक आधा घंटा आंख बंद कर अपने भीतर को नहीं देखेंगे। जब भीतर देखना शुरू कर देंगे तब आपके ज्ञान का विकास होगा, आपके आनंद का विकास होगा और आपकी शक्ति का विकास होगा। आनंद हमारे भीतर है। हठयोग के आचार्य ने कहा–हमारे भीतर अमृत का स्राव होता है, अमृत झरता रहता है। वैज्ञानिक बतलाते हैं कि हमारे भीतर ग्रंथियां हैं। अंतःस्रावी ग्रंथियों से हॉर्मोंस का स्राव हो रहा है, वह स्राव आनंद पैदा करता है।

वैज्ञानिक लोग मेलाटानिन और सेराटानिन इन दो रसायनों के बारे में बताते हैं। जब सेराटानिन का स्राव होता है, आदमी एकदम मस्ती में आ जाता है। वह खुश रहता है, प्रसन्न हो जाता है। उसकी सारी चिंताएं दूर हो जाती है, पर एक कठिनाई है कि उसके स्राव का समय ब्रह्म मुहूर्त्त में चार बजे का है। आजकल सारी चर्या बदल गई है। देर रात को सोते हैं और उठते हैं आठ बजे, दस बजे।

कुछ लोग तो हमें ऐसे भी मिले, जो ग्यारह बजे उठते हैं। उनके लिए प्रातःकाल और ब्रह्म मुहूर्त का कोई अर्थ नहीं है। हमारे विकास में एक कारण बना है जागरण का समय। पहले की बात मैं नहीं कह सकता, किंतु जब से पूज्य कालूगणी के पास दीक्षित हुआ तब से देखा–कालूगणी के जागरण का समय था चार बजे का।

कालूगणी लगभग चार बजे उठ जाते। सब साधुओं को जगा देते। उस समय मुनि तुलसी छोटे थे। मुझसे बड़े थे, पर उम्र में छोटे ही थे। बचपन में नींद आना स्वाभाविक भी है। हमें जगाते, फिर नींद आनी शुरू हो जाती। कालूगणी कहते–तुम जाओ, आकाश में तारे देखो। मुनिश्री भीमराजजी स्वामी उस समय के एक प्रबुद्ध साधु थे। वे तारों के बारे में बताते। कौन-सा तारा है? कौन-सा उदय हुआ है? क्या होने वाला है? वर्षा कब होने वाली है? सारा ज्ञान भीमराजजी स्वामी कराते थे।

मुनि तुलसी मुझे तारे नहीं दिखाते, पर कान पकड़कर उठाते। कान लाल हो जाते। कान पकड़ना नींद उड़ाने का अच्छा साधन है। चार बजे उठने का समय तब से निरंतर चल रहा है। जागरण का एक निश्चित समय है। मैं तो जल्दी सोने वाला हूं। गुरुदेव के तो कभी-कभी ग्यारह बज जाते, बारह बज जाते, फिर भी उठने के समय में परिवर्तन नहीं होता। वास्तव में होना तो यह चाहिए कि सोने का भी निश्चित समय हो और जागने का भी निश्चित समय हो। जब भी कोई विशेष कार्य या समस्या सामने आती सोने में विलंब हो जाता, गुरुदेव मुझे फरमा देते–तुम्हारे सोने का समय हो गया। तुम चले जाओ, हम बात कर लेंगे।

आनंद भीतर है

हमारे भीतर असीम आनंद है। जो जैन धर्म को समझता है, आत्मा को समझता है और अनंत चतुष्टयी को समझता है, उसे किसी मनोवैज्ञानिक के

पास जाने की जरूरत नहीं है, उसे शामक गोलियां लेने की कोई अपेक्षा नहीं है, क्योंकि वह जानता है कि हम अपने भीतर से आनंद प्रकट कर सकते हैं। हमारे भीतर आनंद का स्रोत है, बस एक चाबी हाथ लग जाए। चाबी कहां घुमाना है? ताला कैसे खुले? यह सीखना है। आनंद हमारे भीतर है, उसको हम तब तक नहीं जान सकते, जब तक हम ध्यान में न जाएं, एकाग्रता न सध जाए।

अगर आप धार्मिक हैं, धर्म में रूचि है, धर्म की आराधना करते हैं तो सबसे पहला काम यह होना चाहिए कि अपने आपको जानने का प्रयत्न करें। हमारे भीतर क्या है? हम नहीं जानते। व्यक्ति के पास में बहुत कुछ है, फिर भी भिखारी बना हुआ है, दुःखी बना हुआ है। उसे पता नहीं मेरे पास कुछ है।

हमारा यह अज्ञान मिटे, यह जरूरी है। मैं आत्मा हूं, अनंत चतुष्टयी से संपन्न आत्मा हूं, यह ज्ञान होने पर शायद जीवन बदल सकता है, चर्या बदल सकती है। एक नया आत्मविश्वास जीवन के प्रति पैदा हो सकता है। धर्म करने का प्रयोजन भी यही है।

तीन चीजें मुझे चाहिए

पूज्य गुरुदेव दिल्ली में विराज रहे थे। उस समय भारत सरकार में उड़ीसा प्रांत के केन्द्रीय मंत्री गोमांगजी थे। वे बड़े श्रद्धालु व्यक्ति थे। गुरुदेव के दर्शनार्थ आए। गुरुदेव ने पूछ लिया–कैसे आए हो? बोले–महाराज! मैं तीन चीजें पाने के लिए आपके पास आया हूं। वे चीजें बाजार में नहीं मिलती। आपके पास आने से ही मिलती हैं। तीन चीजें हैं–करेज, कॉन्फिडेंस और केरेक्टर। ये तीन चीजें मुझे चाहिए, ये आप ही दे सकते हैं। करेज (साहस) मनोबल मुझे अन्यत्र नहीं मिल सकता।

अगर बाजार में मिलता तो मैं वहां जाता। आपके पास नहीं आता, पर वह वहां नहीं मिलता। आपके पास आने से मनोबल, साहस, शक्ति और स्फूर्ति मिलती है। दूसरी बात है कॉन्फिडेंस। बाजार में विज्ञापनों की चकाचौंध और रंग-बिरंगे पैकेट देखता हूं, तब आत्मविश्वास ढीला हो जाता है, इसलिए उसे वृद्धिंगत करने के लिए आपके पास आया हूं। तीसरी बात है केरेक्टर (चरित्र)। यह भी बाजार में नहीं मिलता। ये तीनों बातें सीखने के लिए आपके पास आया हूं। मनोबल कैसे बढ़े? आत्मविश्वास कैसे बढ़े? चरित्र का विकास कैसे हो?

जरूरी है मनोबल

धार्मिक के पास जाने और धर्मस्थल में जाने के बहुत लाभ हैं। व्यक्ति यह संकल्प ले कि मुझे धर्मस्थान में जाकर सीखना है कि मनोबल कैसे बढ़े? दुनिया में बहुत सारी समस्याएं आती रहती हैं, कठिनाइयां आती रहती हैं। अगर मनोबल कमजोर है तो आदमी दुःख का जीवन जीता है। हमने ऐसे लोगों को देखा है, जिनका दुःख कभी समाप्त ही नहीं होता। क्या दुःखी होकर जीने के लिए मनुष्य बने हो? दुःखी वे व्यक्ति होते हैं, जिनका मनोबल कमजोर होता है। साधना के द्वारा व्यक्ति का मनोबल इतना बढ़ जाए कि आने वाली कठिन से कठिन परिस्थिति को भी झेल सके।

अग्नि-परीक्षा के कांड में कुछ लोगों ने सांप्रदायिक विद्वेष फैला दिया, उस समय स्थानकवासी समाज के प्रबुद्ध संत अमर मुनि ने लिखा–'लोगों ने संकट की घड़ी उपस्थित कर दी, पर आचार्य तुलसी का मनोबल इतना था कि उन्होंने हर स्थिति को सहन कर लिया। दूसरा होता तो पता नहीं कितनी बार घुटने टिक जाते।' सचमुच गुरुदेव का मनोबल बहुत प्रबल था। कोई भी बड़ी से बड़ी समस्या आती, गुरुदेव फरमाते–कोई बात नहीं, कालूगणी की कृपा से सब ठीक हो जाएगा। हमने देखा–कालूगणी का भी मनोबल प्रबल था। अगर कोई व्यक्ति उनके पास समस्या लेकर आता, उसे शांति से समझा देते। जो व्यक्ति समस्या से बंध जाता है वह पचास प्रतिशत पहले ही हार गया। हमारा मनोबल कैसे बढ़े, यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। मानसिक शक्ति सबसे बड़ी शक्ति है। जिसके पास मन की शक्ति नहीं है, मनोबल नहीं है, वह आदमी हमेशा कमजोर बना रहता है। ऐसे लोगों को देखा है, जिनके पास धन तो बहुत है, पर मनोबल बहुत कमजोर है, वे दबे-दबे रहते हैं, धन होने का कोई विशेष लाभ नहीं उठा पाते और ऐसे लोगों को भी देखा है, जिनके पास साधन-सामग्री कम है, पर मनोबल बहुत है। वे लोग आगे आ जाते हैं।

आत्म-विश्वास

दूसरी बात है आत्मविश्वास। उसको बढ़ाना भी बहुत जरूरी है। संदेह से आदमी की शक्तियां क्षीण हो जाती हैं, कर्मजा शक्ति क्षीण होती है। संदेहशील होने से कुछ काम भी नहीं होता। आत्मविश्वास होने पर ही सफलता मिल सकती है। सबसे पहले अपने पर भरोसा हो। मैंने स्वयं अनुभव किया है कि

पूज्य गुरुदेव ने मुझे जब-जब कहा–यह काम करना है, चाहे मैं जानता था या नहीं जानता था, मैंने कभी नहीं कहा कि यह कार्य नहीं होगा। मैंने उस कार्य को करना स्वीकार कर लिया। दूसरा व्यक्ति उसकी मीमांसा कर सकता है कि जानते कुछ है नहीं, कैसे स्वीकार कर लिया।

गुरुदेव महाराष्ट्र की यात्रा कर रहे थे। आगम संपादन का प्रश्न आया। औरंगाबाद में महावीर जयंती का आयोजन था। उससे पहले एक गांव आया मंचर नाम का। हम वहां जैन परिवार में ठहरे हुए थे। सांझ के समय गुरुदेव ने पत्रिकाएं देखीं। उनमें एक पत्रिका थी–धर्मदूत। उस समय बुद्ध जयंती का प्रसंग चल रहा था। उसमें लिखा हुआ था पिटकों का संपादन बरमा, थाइलैण्ड आदि देशों में किया जाएगा। गुरुदेव ने उस संवाद को पढ़ा और मस्तिष्क में कल्पना हुई। गुरुदेव ने तत्काल मुझे बुलाया। मैं गया। गुरुदेव ने धर्मदूत पत्रिका दिखाई और कहा–देखो, क्या लिखा है?

गुरुदेव ने वेदना की भाषा में कहा–सब लोग अपने-अपने ग्रंथों का संपादन कर रहे हैं। हम जैन आगमों का कोई भी कार्य नहीं कर रहे हैं। हमें जैन आगमों के संपादन का काम शुरू करना चाहिए। बोलो, क्या इस कार्य को करना है? मैंने स्वीकार कर लिया। यह नहीं कहा कि संपादन कैसे होता है? मैं नहीं जानता। आत्मविश्वास की बात है। मेरा आत्मविश्वास प्रबल था। गुरुदेव के मार्गदर्शन में आगम संपादन के कार्य को प्रारंभ कर दिया। जोशीजी जैसे वैदिक विद्वान ने कहा–'जैसा जैन आगमों का संपादन आप कर रहे हैं, ऐसा संपादन आज तक न तो किसी वैदिक ग्रंथ का हुआ है, न बौद्ध ग्रंथ का हुआ है।' यह आत्मविश्वास कहां से आया? हमारे भीतर शक्ति है, उसका हम ठीक उपयोग करें तो काम हो जाएगा। संदेह के घेरे में रहें तो कुछ नहीं कर पाएंगे।

चरित्र

तीसरी अपेक्षा है चरित्र के विकास की। चरित्र के बिना आदमी का अच्छा व्यक्तित्व नहीं बनता। तथाकथित चरित्र की समस्याएं भी आती हैं। इन वर्षों में देखा–प्रधानमंत्री को भी एक छोटे न्यायाधीश के सामने जाकर खड़ा होना पड़ता है, एक मंत्री को भी खड़ा होना पड़ता है। कारण स्पष्ट है। चरित्र पर आस्था नहीं है, चरित्र का विकास नहीं है, अन्यथा जो बड़े कहलाते हैं, मुखिया कहलाते हैं, उनका चरित्र तो इतना आदर्श होना चाहिए कि दूसरे लोग

उनसे कुछ सीख सकें। आज तो सारा मामला गड़बड़ा गया। उल्टी गिनती चल रही है।

अनित्य अनुप्रेक्षा

अगर आप वास्तव में धर्म के सही अर्थ को समझते हैं, केवल रूढ़िवादी धर्म के धारक नहीं हैं, धर्म का जो वैज्ञानिक और आंतरिक पक्ष है उसको समझते हैं तो धर्म के द्वारा मनोबल का विकास, आत्मविश्वास का विकास और चरित्र का विकास–इन तीनों का विकास किया जा सकता है।

प्रोफेसर भार्गव, जो बड़े विद्वान हैं, जैन विश्वभारती संस्थान में विजिटिंग प्रोफेसर रहे हैं, अब भी विश्व भारती से जुड़े हुए हैं, काम करते हैं। उनके साथ एक अनहोनी घटना घटित हो गई। उनके सात वर्ष का पोता था, जो उन्हें बहुत प्रिय था। वर्षा आई। कूलर चल रहा था। वह कूलर के पास गया। वहां पानी गिरा था। उसमें करंट आ गया और वह वहीं समाप्त हो गया। इस घटना को देखकर उन्होंने कहा–मैं तो दहल गया हूं, हिल गया हूं।

मैंने कहा–आप जैसे व्यक्ति हिल जाएंगे तो कैसे होगा?

भार्गव साहब ने पूछा–मुझे क्या करना चाहिए?

मैंने कहा–आप आत्मविश्वास पैदा करने के लिए अनित्य अनुप्रेक्षा का प्रयोग करें, दीर्घश्वास का प्रयोग करें। अनित्य अनुप्रेक्षा मनोबल को बढ़ा देती है। उससे हमारी सहन करने की शक्ति बढ़ जाती है। एक तो है घटना को दबाना, यह समझदारी की बात नहीं है। घटना को रूपांतरित कर देना महत्त्वपूर्ण बात है। दुःख भीतर से न होना, वह संभव होता है अनित्य अनुप्रेक्षा के द्वारा, दीर्घश्वास के द्वारा। ये धर्म के प्रयोग हैं, जिनके द्वारा हम दुःख को कम कर सकते हैं। मनोबल नहीं होता है तो छोटी घटना बहुत बड़ी बन जाती है और अगर मनोबल है तो बड़ी घटना भी छोटी-सी लगने लगती है। यह हमारे हाथ की बात है।

धर्म का उपयोग इस प्रकार करें, जिससे अपने आपको पहचान सकें, अपने आपको जान सकें, अपनी शक्तियों को जान सकें और एक अच्छा जीवन जी सकें। मेरा विश्वास है कि जिस व्यक्ति ने अपने आपको समझने का प्रयत्न किया है, शायद वह व्यक्ति अपने आप अस्सी प्रतिशत दुःखों पर विजय प्राप्त

कर लेता है। दस या बीस प्रतिशत दुःख बाहर की घटनाओं से आते-जाते रहते हैं, उनका भी असर कम हो जाएगा। जो अपने आपको नहीं जानता, केवल दूसरों को ही जानता है, अपनी शक्तियों को नहीं जानता, दूसरों पर ही भरोसा करता है, उस व्यक्ति का दुःख कोई भी दूर नहीं कर सकता, इसलिए आचारांग में ठीक लिखा है–आत्मा को प्रसन्न रखो। अगर आत्मा प्रसन्न है तो तुम्हारा सारा काम ठीक होगा। अगर आत्मा रूठ गई, उसको प्रसन्न नहीं रखा, निर्मल नहीं रखा तो कोई भी तुम्हारे दुःख को दूर नहीं कर सकता, इसलिए हम धर्म का उद्देश्य समझें।

धर्म स्थान में जाने का अर्थ समझें, अपने आपको पहचानने का मूल्य समझें और अपने आपको पहचान कर अपनी शक्तियों को पहचानने का प्रयत्न करें और फिर उनका उपयोग करें। आपका व्यक्तित्व तेजस्वी, यशस्वी और आनंदमय बन जाएगा, इसलिए थोड़ा-सा बदलने की जरूरत है।

दिशा को बदलने की जरूरत है, दृष्टि बदलने की जरूरत है। थोड़ी दृष्टि बदल जाए तो काम हो सकता है। दृष्टि बदलते ही जीवन में कुछ परिवर्तन आया है, यह अनुभूति होनी चाहिए। इसके लिए समय का पूरा उपयोग करें, कुछ सीखने का प्रयत्न करें और ध्यान में अवश्य रुचि लें। दरवाजा अपने आप खुल जाएगा और जो भीतर प्रकाश है, वह अपने आप प्रकट हो जाएगा, स्वयं को जानने की दिशा में स्वतः ही चरण गतिशील हो जाएंगे।

9. अपने भीतर जाओ

जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है सुख और शांति। ये दो शब्द सबको प्रिय हैं। कोई दुःखी नहीं होना चाहता और कोई अशांति का जीवन नहीं जीना चाहता। खोज की गई कि सुख कैसे मिले और शांति कैसे मिले? इस खोज पर अनेक आचार्यों ने अध्यात्म की गहराई में जाकर सत्य को खोजने का प्रयास किया और निष्कर्ष पर पहुंचे। शायद शब्द अलग हो सकते हैं, भाषा अलग हो सकती है, पर तात्पर्यार्थ में कोई भेद नहीं लगता। महावीर की वाणी का एक सुंदर सूक्त है–दुःखं हयं जस्स न होइ मोहो–उस व्यक्ति ने दुःख को समाप्त कर दिया, जिसके मन में मोह नहीं है। एक महत्त्वपूर्ण शब्द है मोह।

मोह : सबसे बड़ा कष्ट

अज्ञान और मोह, मूर्खता और मूढ़ता, ये सब शब्द एक जैसे प्रतीत होते हैं। अज्ञान है न जानना। एक व्यक्ति जानता नहीं है, यह अज्ञान है। अज्ञान भी कष्ट का कारण बनता है और ठीक कहा है–अज्ञानं खलु कष्टं। अज्ञान बहुत बड़ा कष्ट है। व्यक्ति क्रोध क्यों करता है, क्योंकि अज्ञान है। अज्ञान भी कष्ट है, पर अज्ञान से भी ज्यादा कष्ट है मोह का।

बाहर और भीतर की दुनिया

हमारी दो दुनिया हैं–एक है बाहर की और दूसरी है भीतर की। भीतर की दुनिया को जानने का प्रयत्न ही नहीं किया, यह सबसे बड़ी समस्या है। अध्यात्म, योग, ध्यान के प्रकार अलग-अलग हैं, किंतु एक ही शृंखला के रूप हैं। सबका एक ही लक्ष्य है कि भीतर जाने का प्रयत्न करो, केवल बाहर मत रहो। इस दुनिया में जीना है तो बाहर रहना पड़ेगा, पर केवल बाहर मत रहो भीतर जाने का भी प्रयत्न करो, भीतर जीना सीखो। जैसे ही आदमी भीतर जाता है चेतना का रूपांतरण हो जाता है, चेतना बदल जाती है। एक प्यास जो

अनादि अनंत है, वह मिट जाती है और एक नए प्रकार का अनुभव होता है। आप बाहर ही बाहर रहते हैं, इसका अर्थ है–आपके पास व्यापार करने के लिए उधार पूंजी ली हुई है। जब भीतर जाते हैं उधार की नहीं, अपनी पूंजी हो जाती है।

सोने का मूल्य कब तक?

एक बड़ी मार्मिक कहानी है। एक भिखारी दिन भर नगर में घूमा, भिक्षा नहीं मिली। ऐसा योग कभी-कभी होता है। सांझ का समय हो गया, भूखा था। नगर के बाहर गया और देखा एक मठ है। मठ में संन्यासी रहते हैं। वह उधर चला गया। मठ के आस-पास पहुंचा तो देखा कुछ चमक रहा है। चमक देखी, फिर रंग देखा, यह तो पीला रंग है। जब चमक हो, पीला रंग हो, सहज ही सोने का आभास हो जाता है। जब सोने की बात मन में आती है तो आदमी सब कुछ भूल जाता है। सोने के कटोरे को देख मन ललचा गया। भूख को भी भूल गया। कटोरा उठाया। एक दबाव सा पड़ गया। स्वभाव को भूल गया और एक पागल की तरह रट लगाने लगा–सोने का कटोरा किसने डाला? सोने का कटोरा किसने डाला? मंत्र-जप की तरह रट लगाने लगा। सोने का कटोरा किसने डाला? सोच नहीं सका, कल्पना से परे की बात है कि सोने का कटोरा ऐसे कोई फेंक दे। आधा पागल हो गया, विक्षिप्त-सा हो गया। घूमता रहा, एक रट लगाता रहा। भीतर कोई संन्यासी खड़ा था। उसने देखा और कहा–भीतर आओ, भीतर आओ। दो-तीन बार उसको आह्वान किया, संबोध दिया तो वह भीतर आने लगा। जैसे ही मठ के दरवाजे में पैर रखा, उसने भी सोने का कटोरा फेंक दिया।

जब बाहर रहते हैं तो सोने का बहुत मूल्य है और जब भीतर चले जाते हैं, फिर उसका मूल्य नहीं रहता। अपनी-अपनी दुनिया के अलग-अलग मानक होते हैं। बाहर की दुनिया के मूल्य अलग हैं और भीतर की दुनिया के मूल्य अलग हैं। बाहर की दुनिया में सोना बहुत कीमती था और भीतर मठ में प्रवेश किया मूल्य समाप्त हो गया, कटोरा फेंक दिया। यह कैसे हो सकता है? क्या कोई सोने के कटोरे को फेंक सकता है? बाहर की दुनिया में जीने वाला सोने का मूल्य जानता है, फेंक नहीं सकता। वह उसकी सुरक्षा करता है। चला जाए तो रोने लगता है। फेंकने की बात तो दूर है।

संवेदन प्रिय-अप्रिय का

जब हम सुख की मीमांसा करें, सुख को समझने का प्रयत्न करें कि सुख क्या है, सुखी कौन हो सकता है तो हमें बाहरी दुनिया के आधार पर मीमांसा नहीं करना है। अपना दृष्टिकोण बदलना होगा और हमें भीतर की दुनिया में जाना होगा। प्रियता और अप्रियता के संवेदन में रहने वाला व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता। सुखी वही हो सकता है, जिसने संवेदना से ऊपर उठकर चेतना के मंच पर अपना आसन बिछा लिया है।

जिस व्यक्ति में प्रिय और अप्रिय संवेदन को सहन करने की क्षमता आ जाती है, तब न प्रिय संवेदन उसको सुखी बनाता है, न अप्रिय संवेदन उसको दुःखी बनाता है। अपने सहज आनंद में जो रहना सीख जाता है, दुनिया में वही व्यक्ति सुखी रह सकता है। दूसरा कोई भी व्यक्ति नहीं रह सकता। आप स्वयं अनुभव करें। हमने लोगों को देखा है। जैन विश्व भारती के प्रांगण में, तुलसी अध्यात्म नीडम् में एक शिविर था। वह संपन्न हो गया। लोग घर जाने लगे। एक भाई को मैंने पूछा–तुम्हारी आंखों में आंसू क्यों आ रहे हैं? क्या हुआ? क्या किसी ने कुछ कह दिया? उसने कहा–नहीं, किसी ने कुछ नहीं कहा। मैंने पूछा–फिर तुम्हारी आँखों में आंसू क्यों? वह बोला–मैं मुम्बई का रहने वाला हूं। साठ वर्ष की मेरी अवस्था है। संपन्न हूं, करोड़पति हूं। जब मैंने दर्शनकेन्द्र पर बाल सूर्य का ध्यान किया, उस समय जो सुख का अनुभव किया, आज तक मैंने अपने जीवन में वैसा सुख कभी भी अनुभव नहीं किया। उसको छोड़कर जा रहा हूं, मुझे कष्ट हो रहा है।

सुख कहां है? हमें अपने भीतर खोजना होगा। बाहर से तो सुख-दुःख का कोई निमित्त बन सकता है, कोई प्रेरक-उत्तेजक बन सकता है, जो उत्तेजना दे देता है। वास्तव में सुख का स्रोत तो हमारे भीतर प्रवाहित हो रहा है।

मोह कम, दुःख कम

जिस व्यक्ति ने अपने मोह को क्षीण कर दिया, शांत कर दिया, कषाय को शांत कर दिया, वह सदा सुखी होता है। 'सदा दिवाली संत के'–संतों के सदा दिवाली है, सदा प्रकाश, सदा आनंद और अभंग आनंद, जिसको कोई भंग नहीं कर सकता, जिसको कोई तोड़ नहीं सकता। जिसने मोह को कम नहीं

किया, मूर्च्छा को कम नहीं किया, वह सुखी नहीं हो सकता। मूर्च्छा का पहला बिंदु है हमारा शरीर। शरीर के प्रति आसक्ति, शरीर के प्रति मूर्च्छा और मोह से दुःख का चक्र शुरू होता है। उपाध्याय विनयविजय जी ने बहुत सुंदर मर्म की, अनुभव की बात लिखी है–

प्रणयविहीने दधदभिषंगं, सहते बहुसन्तापम्।
त्वयि निष्प्रणये पुद्गलनिचये, वहसि मुधा ममतातापम्॥

आत्मा तो पुद्गल के साथ मूर्च्छा कर रही है, पुद्गल का मोह कर रही है वह तो प्रणय-विहीन है, उसमें तो प्रेम नहीं है, प्रणय नहीं है और तुम्हारे भीतर उसके प्रति प्रेम है, वह कैसे निभेगा? दोनों ओर प्रेम हो तब तो निभ सकता है। तुम तो प्रेम करते हो और पुद्गल तुमसे प्रेम नहीं करता है, धोखा देता है। वह तुम्हें संताप दे रहा है। बीमारियां क्यों हो रही हैं? निष्प्रेमी के साथ तुम प्रेम कर रहे हो। अगर उसका भी तुम्हारे प्रति प्रेम होता तो तुम्हें वह कभी नहीं सताता। आने वाले पुद्गल तुम्हें कभी नहीं सताते। कभी दुःख नहीं देते, कभी भूकंप नहीं आता। कभी ये मकान नहीं गिरते, और भी कष्ट नहीं होते।

पुद्गल-पुद्गल से तृप्त होता है और आत्मा-आत्मा से तृप्त होती है। तुमने सारा आरोपण पुद्गल जगत पर, बाह्य जगत पर कर दिया। यह एक समस्या है, इसलिए तुम जरा चिंतन करो, अपने घर को देखो।

अपना घर कहां?

कभी-कभी मैं बच्चों से पूछता हूं–आप लोग कहां से आए हैं? कुछ बच्चे बड़ा अच्छा उत्तर देते हैं कि हम अपने घर से आए हैं। बहुत अच्छा उत्तर है। बच्चा उसको अपना घर मानता है, जहां रहता है। बड़ा आदमी हो गया, उसे तो और आगे बढ़ना पड़ेगा, वह जो ईंट, पत्थर, सीमेंट से बना है अपना घर नहीं हो सकता। अपना घर कहां है? आनंदकेन्द्र हमारा घर है। जिस व्यक्ति ने अपने घर को देख लिया, मूर्च्छा टूट जाएगी, मोह का चक्र टूट जाएगा और भीतर से आनंद का स्रोत बहने लग जाएगा। चाहे उसे धर्म कहो, आनंद कहो, सुख कहो, अपना घर कहो, एक ही बात है।

डायोजिनीज बहुत अच्छा दार्शनिक संत हुआ है यूनान का। एक दिन एक व्यक्ति आकर बोला–मैं धर्म की परिभाषा जानना चाहता हूं। उसने कहा–

अभी मैं व्यस्त हूं, मुझे जल्दी जाना है। तुम अपना पता दे दो, मैं तुम्हें धर्म की परिभाषा बता दूंगा। उसने अपना पता दे दिया। दार्शनिक ने पूछा–यह तुम्हारा स्थायी पता है। बोला–नहीं। पूरे सप्ताह मैं यहां नहीं रहता। बृहस्पतिवार को मैं सरकारी काम के लिए अमुक जगह जाता हूं, उसका पता भी दे दिया। वह भी मेरा स्थायी पता नहीं है। अवकाश के दिन मैं घूमने वहां जाता हूं। दो-चार बार स्थायी पता पूछा–वह गुस्से में आ गया। गुस्से में आकर छाती पर मुक्का मारा और कहा–यह मेरा स्थायी पता है। संत ने कहा–बस तुम्हारा काम हो गया। तुम धर्म की परिभाषा जानना चाहते हो। धर्म की परिभाषा है–भीतर रहना। यहां से बाहर जाना अधर्म है। हम सचाई को समझें कि वास्तव में ही हम तनावमुक्त, संतापमुक्त, दुःखमुक्त होना चाहते हैं तो अपने घर में जाना होगा, अपने घर को समझना होगा और वह घर अपने भीतर है।

मनुष्य जीवन की अमूल्यता

अपने घर में जाने की बात मनुष्य अच्छी तरह से समझ सकता है। उसके पास रिजनिंग-माइंड है और सौभाग्य से उसे बहुमूल्य नाड़ी-संस्थान उपलब्ध हुआ है। इतना बढ़िया नाड़ी-संस्थान, मस्तिष्क और यह पृष्ठरज्जु, इसमें कितना भरा हुआ है। हमें ग्रंथितंत्र मिला है। हमारी अंतःस्रावी ग्रंथियां, हमारे मर्म स्थान, हमारे चैतन्यकेन्द्र में भी इतने स्राव, इतने रसायन बन रहे हैं जो इतना काम कर रहे हैं, पर हम अपने आप को समझने का प्रयत्न नहीं करते। हमारा सारा ध्यान दृश्य जगत पर अटका हुआ है।

संसार एवं मोक्ष

उपाध्याय यशोविजय जी ने एक सुंदर बात कही–दृष्टिदृगात्मता मुक्तिः। मुक्ति क्या है? संसार-भ्रमण क्या है? बहुत संक्षेप में उन्होंने उत्तर दे दिया कि केवल द्रष्टा बनो, साक्षी बनो, घटना को भोगो मत। उसे केवल देखो। समझो, तुम्हारी मुक्ति हो गई। दृश्य के साथ जुड़ जाओ, एकात्म हो जाओ तो संसार है, बंधन है, दुःख है। कभी-कभी आपने देखा होगा कि जब सिनेमा, टी.वी. या कोई भी चित्र सामने आता है, आदमी देखता है, रोने लग जाता है, हंसने लग जाता है। कभी-कभी हार्ट फेल भी हो जाता है। दृश्य के साथ इतना तादात्म्य हो जाता है कि वह समझता है, मैं ही भोग रहा हूं। ज्ञानी जानता है,

अज्ञानी भोगता है, इतना भोगने लग जाता है कि उसके साथ एकमेक बन जाता है। दृश्य के साथ हमारी एकात्मकता हो जाती है, यह समस्या है।

हम वास्तव में सुख की खोज करना चाहते हैं, दुःख से मुक्ति पाना चाहते हैं तो खोज अपने भीतर करनी होगी। सबसे पहले शरीर को समझना होगा। उस के प्रति होने वाले मोह को हम समझ लें। ठीक कहा गया–दुःखं हयं जस्स न होइ मोहो–उसने दुःख को समाप्त कर दिया, जिसके मन में मोह नहीं रहा। मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा–उसने मोह को भी जीत लिया, जिसके मन में तृष्णा नहीं है। तण्हा हया जस्स न होइ लोहो अर्थात् लोभ पर उसने विजय पा ली, जिसके मन में तृष्णा नहीं है, प्यास नहीं है, चाह नहीं है। संस्कृत का, योग का बहुत सुंदर शब्द है–निस्पृहः, कोई स्पृहा नहीं रही, कोई चाह नहीं रही। बहुत बड़ी बात है, चाह का नहीं होना। यह कैसे संभव हो सकता है?

निःस्पृही सुखी

कहा गया है–निःस्पृही सुखी। भगवान बुद्ध की सभा में एक प्रश्न उठा। राजा ने कहा–आपके जितने भिक्षु हैं, सबके चेहरे पर प्रसन्नता है और मेरी प्रजा के चेहरे पर प्रसन्नता दिखाई नहीं देती। कारण क्या है?

बुद्ध ने पहले एक व्यक्ति से पूछा–बोलो! क्या चाहते हो?

कहा–मुझे धन की जरूरत है।

दूसरे से भी वही प्रश्न पूछा।

उसने कहा–मुझे बेटे की जरूरत है।

तीसरे से पूछा, वह भी बोला–मुझे अच्छी नौकरी की जरूरत है।

पूछते गए, पूछते गए। अंतिम कोने पर एक बौद्ध भिक्षु बैठा था। उससे पूछा–बोलो, क्या चाहते हो?

उसने कहा–यही चाहता हूं कि मेरे मन में कोई चाह न रहे।

बुद्ध ने कहा–देखो, सबसे प्रसन्न चेहरा इसका है। प्रसन्नता को गायब करने वाली कोई वस्तु वहां नहीं थी।

एक विदेशी लेखक ने बहुत सुंदर लिखा कि प्रसन्नता को गायब करने वाले कुछ तत्त्व हैं। उनमें एक है इमेजिनेशन ऑफ परफेक्शन। जिसमें संपूर्ण हो

जाने की, परिपूर्ण हो जाने की चाह है। कल्पना होती जाती है कि यह मिले, वह मिले। ये सारी कल्पनाएं हमारी प्रसन्नता को गायब कर देती हैं।

जिसके मन में कोई चाह नहीं, वह सदा प्रसन्न रहेगा। हम लोग सुख की खोज करें तो भीतर खोजें, वह बाहर नहीं मिलेगा। भीतर भी खोजना है तो यह हाड़-मांस में नहीं मिलेगा। आपको मस्तिष्क में जाना होगा। मस्तिष्क में भी जाएं तो भाव-धारा पर जाएं। वहां जाकर खोज करें कि मूर्च्छा को कैसे तोड़ा जा सकता है? कषाय को, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय आदि को कैसे उपशांत किया जा सकता है? वहां पहुंच कर अपनी खोज को आगे बढ़ाएं तो सुख का रहस्य समझ में आएगा कि भीतर में बहुत सारा सुख है।

10. कैसे करें चेतना में प्रवेश?

हर व्यक्ति को जीवन को समझने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि वह जी रहा है, जीवन चला रहा है और जीवन के माध्यम से बहुत कुछ कर रहा है, इसलिए जीवन के चक्र को कैसे घुमाना, कैसे चलाना, इसे जानना जरूरी है। जीवन को जानने के बहुत तत्त्व हैं। उसमें से कुछेक तत्त्वों को समझना बहुत आवश्यक है।

शरीर को समझें

जीवन को समझने के लिए मन को समझना जरूरी है। मन संचालक है और बहुत शक्तिशाली भी है। यह साधना में साधक है और बाधक भी है। मन गतिशील है। वैसे ही शरीर और वाणी भी गतिशील हैं। ये तीनों क्रियाशील हैं। शरीर की गति सीमा में रहे तो शरीर ठीक है। अगर कोई व्यक्ति चौबीस घंटे चलता रहे तो शरीर साथ नहीं देगा। पुराने जमाने की बात है।

चीनी सम्राट ने एक व्यक्ति से कहा–तुम मुझसे जमीन मांग रहे हो। पहले एक काम करो–तुम इस बिंदु से चलना शुरू करो और शाम को यहीं वापस पहुंचना है। जितनी दूर तुम जाओगे उतनी भूमि तुम्हें दे दी जाएगी। शरीर की सीमा को समझा नहीं, शरीर की सक्रियता को, गति को समझा नहीं और लोभ का भाव प्रबल हो गया। इतना दौड़ा, इतनी दूर गया और जब वापस उस बिंदु पर आया तो आते ही जीवन की लीला समाप्त हो गई, क्योंकि शरीर की गति की सीमा को समझने का प्रयत्न नहीं किया।

शरीर की सक्रियता को भी समझना है कि शरीर को कितना सक्रिय रखना चाहिए? कब शरीर से काम लेना चाहिए और कब नहीं लेना चाहिए? अगर कोई प्रेक्षाध्यान का अभ्यासी है तो श्रम, विश्राम और उससे आगे कायोत्सर्ग को समझता है। शरीर की गति को भी समझता है।

वाणी को समझें

वाणी की चंचलता को भी समझना है। केवल बोलना ही नहीं है, वाणी को भी मौन होना चाहिए। हमारे जीवन के तीन प्रमुख तत्त्व हैं–शरीर, वाणी और मन। चौथा है भाव, जो सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। हम जीवन को समझने का प्रयत्न करें तो शरीर की क्रियाशीलता और गति को भी समझें, उसका नियमन करें। वाणी का भी नियमन करें।

मन को समझें

मन को भी समझना है। मन का नियमन कैसे हो? मन की एकाग्रता कैसे बढ़े? मन की गति बहुत तेज है। चंचलता बहुत ज्यादा है। ऐसे लोग बहुत कम मिलेंगे जो काम करने बैठे, उसी काम में लगे रहे। एक घंटा कोई काम करना है तो एक घंटा केवल उसी में मन लगा रहे, अन्यत्र कहीं न जाए। अगर ऐसा हो जाए तो फिर समय इतना बढ़ जाएगा कि जो काम पांच घंटे में करना है, वह काम एक घंटे में हो सकता है, किंतु मन की चंचलता है, गतिशीलता है। उस चंचलता को भी समझ कर कार्य करना है।

प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करने वाला मन की गतिशीलता को, सक्रियता को कम कर सकता है। चंचलता को कम कर उसे एक बिंदु पर टिका सकता है। अगर अभ्यास हो जाए कि पांच मिनट मन उसी पर टिका रहेगा तो बहुत बड़ी बात है। अगर कोई व्यक्ति दस मिनट साधना कर ले कि दस मिनट दूसरा कोई विकल्प नहीं आएगा। जो विकल्प या विचार कर लिया दस मिनट तक वही रहेगा। बहुत बड़ी बात है।

जापान में एक संप्रदाय है झेन, वह ध्यान संप्रदाय है। एक साधक गुरु के पास आया और बोला–गुरुदेव! मैं आपकी साधना का रहस्य जानना चाहता हूं। आप क्या साधना करते हैं? गुरु ने कहा–मेरी साधना बहुत सरल है। भूख लगती है, तब खा लेता हूं। प्यास लगती है, तो पानी पी लेता हूं। नींद आती है, तब सो जाता हूं। बस यही मेरी साधना है। यह तो मैं आज ही कर सकता हूं, अभी कर सकता हूं। उन्होंने कहा–आओ, भोजन का समय हो गया है। मेरे साथ बैठ जाओ, भोजन करो। उन्होंने भोजन शुरू किया। आधा घंटा भोजन में लगा। गुरुदेव! आपकी साधना क्या है? मैंने केवल चावल खाया। चावल

के सिवाय दूसरा विकल्प मेरे मन में नहीं आया। तुम बताओ, तुमने क्या-क्या सोचा। गुरुदेव! स्थिति यह है कि मैं भूल ही गया कि क्या खा रहा हूं। पता नहीं, ध्यान कहां चला गया। गुरु ने कहा–यही साधना है कि चावल खाओ तो चावल का एक दाना भी मत छोड़ो। केवल चावल में रहो। केवल चावलमय बन जाओ। यही मेरी साधना है। बड़ी कठिन साधना है। व्यक्ति खाने बैठता है, लिखने बैठता है, कोई काम करने बैठता है तो एक घंटा में पता नहीं मन कहां-कहां की यात्रा कर लेता है। मन की चंचलता को कम करना और उस पर नियंत्रण पाना बहुत कठिन काम है।

हम जीवन के अर्थ को समझें। वह व्यक्ति जीवन का अर्थ समझता है, जो यह समझता है कि शरीर, वाणी और मन की चंचलता कितनी होनी चाहिए। अगर निर्विकल्प अवस्था आ जाए और पांच मिनट, दस मिनट, आधा घंटा और अगर पचास मिनिट तक एक विषय पर मन टिक सके तो मैं उसे दुनिया का बड़ा साधक मानता हूं। चाहे ध्यान के शिविर में आए या न आए, कोई ध्यान पद्धति का आश्रय ले या ना ले, अगर इस बिंदु तक पहुंच जाए तो वह बहुत बड़ा साधक है। जीवन को समझने के तीन अर्थ बतलाए हैं–शरीर को समझना, वाणी को समझना और मन को समझना।

भावों को समझें

चौथा तत्त्व है हमारा भाव। शरीर, वाणी और मन स्थूल जगत में काम करते हैं। भाव बहुत सूक्ष्म है और वह सूक्ष्म जगत में काम करता है। अगर पूछा जाए कि शरीर को कौन चला रहा है, वाणी को कौन चला रहा है और मन को कौन चला रहा है? मेरा उत्तर होगा–भाव। बहुत सूक्ष्म तंत्र है, सारा संचालन वहां से हो रहा है। जैसा भाव है, मन वैसा ही काम करने लग जाएगा, वाणी भी उधर चली जाएगी और शरीर भी उधर काम करने लग जाएगा।

हम स्थूल जगत में रहने वाले स्थूल बात को समझते हैं। शरीर, वाणी और मन को समझने का प्रयत्न करते हैं, किंतु जो व्यक्ति साधना के क्षेत्र में जाना चाहता है या और भी कोई बड़ा काम करना चाहता है, उसे भाव तंत्र को समझना होगा। हमारे भाव हमें चला रहे हैं। भाव हमारे सूक्ष्म स्पंदनों का पुंज है।

सूक्ष्म स्पंदन हमारे सूक्ष्म शरीर से या चेतना से आते हैं। चेतना के स्पंदन और कर्म शरीर के स्पंदन, तैजस शरीर के स्पंदन, भीतर के सारे वाइब्रेशन सूक्ष्म शरीर से जो आते हैं, उन सारे प्रकंपनों का पुंजीकरण हमारे शरीर में होता है। वह भाव तंत्र बनता है। प्रेक्षाध्यान में हमने उसको समझने का प्रयत्न किया।

मस्तिष्क का एक भाग है लिम्बिक सिस्टम। उसमें हाइपोथैलेमस के प्रकंपन आकार लेते हैं, भाव बनते हैं। वह भाव तंत्र हमारे मस्तिष्क में विद्यमान है। उसके द्वारा सारा संचालन हो रहा है। हम भाव को कैसे शुद्ध रख सकें? भाव दोनों प्रकार के बन सकते हैं। अगर भीतर के स्पंदन नकारात्मक हैं, तो भाव नकारात्मक बन जाते हैं और भीतर के स्पंदन सकारात्मक हैं, तो भाव सकारात्मक बन जाते हैं। कर्मशास्त्र की भाषा में कहें तो औदायिक भाव के स्पंदन आते हैं, तो नकारात्मक भाव बन जाते हैं और क्षायोपशमिक भाव के स्पंदन आते हैं, तो सकारात्मक भाव बन जाते हैं।

कैसे पहुंचे भाव तंत्र तक?

क्षायोपशमिक भाव हमारी शुद्धि का प्रतीक बनता है। हम ध्यान के द्वारा शरीर को स्थिर इसलिए करते हैं कि भाव के स्पंदन तक हमारी चेतना काम कर सके, इसीलिए मौन करते हैं और इसीलिए मन की एकाग्रता का अभ्यास करते हैं, जिससे हमारी सारी गति भाव तंत्र तक जा सके। भाव तंत्र को पकड़ने की क्षमता भी आ जाए कि कौन-सा भाव काम कर रहा है। अब यह समझना है कि भाव को कैसे बदला जा सकता है? एक दिन में कितने भाव आते हैं? क्रोध एक भाव है। पता नहीं दिन में कितनी बार क्रोध आता है। आजकल चालू शब्द है कि छोटे बच्चों का मूड बिगड़ गया। मूड बिगड़ता रहता है। कितनी बार क्रोध आता है, कितनी बार अहंकार का भाव आ जाता है, कितनी बार लोभ का भाव आता है। सारे भाव आते रहते हैं। मन की एकाग्रता के बिना, कायोत्सर्ग के बिना चंचलता की अवस्था में भाव जगत की यात्रा नहीं कर सकते।

ध्यान हमारा साध्य नहीं है, साधन है। साध्य है सूक्ष्म जगत तक पहुंचना। वहां जाने में शरीर, वाणी और मन बाधक न बने, इसलिए इनकी साधना करना जरूरी है। इनके बिना हम सूक्ष्म जगत को समझ नहीं सकते। लक्ष्य तो यह बनाएं कि हमें सूक्ष्म जगत तक जाना है, चेतना को शुद्ध करना है और शुद्ध

चेतना के द्वारा भाव तंत्र को समझना है, इसलिए प्रेक्षाध्यान में कहा जाता है कि मैं चित्त की शुद्धि के लिए प्रेक्षाध्यान का प्रयोग कर रहा हूं। उसके लिए यह बात समझ में आ जाए कि हम एकाग्रता के बिना वहां पहुंच नहीं सकते, इसलिए मन की चंचलता को कैसे कम कर सकें?

ध्यान के अभ्यास से चंचलता कम होती है। एकाग्रता जितनी होगी, काम उतना अच्छा होगा, इसलिए हर व्यक्ति को अपने जीवन को समझना है शरीर, वाणी, मन और भाव को समझना है। भाव जगत तक पहुंचने के लिए, मन की एकाग्रता का विशेष अभ्यास करना है। अगर यह साधना सध जाए तो आदमी चंचलता से पैदा होनेवाली बहुत सारी समस्याओं से मुक्त रह सकता है और चेतना के जगत में प्रवेश कर सकता है।

11. प्रवेश करें अतीन्द्रिय चेतना में

उपनिषद् के दो महत्त्वपूर्ण शब्द हैं–प्रेय और श्रेय। प्रेय जो प्रिय लगता है और जो अच्छा लगता है। श्रेय, जो हितकर है, कल्याण करने वाला है। दोनों हमारे सामने हैं–प्रेय भी और श्रेय भी। जब तक चेतना बचपन की रहती है, तब तक प्रेय अच्छा लगता है, श्रेय अच्छा नहीं लगता। कारण है अज्ञान। बचपन दो प्रकार का होता है–एक अवस्था का बचपन होता है और एक अज्ञान का। ज्ञान का भी बचपन होता है, जिसका ज्ञान बहुत अल्प होता है, वह ज्ञान का बचपन है। चाहे वह नब्बे वर्ष का, सौ वर्ष का हो गया, फिर भी वह बच्चा है, क्योंकि ज्ञान का विकास नहीं हुआ है। दशवैकालिक सूत्र में ठीक कहा गया–अज्ञानी क्या करेगा? वह नहीं जानता कि श्रेय क्या है और पाप क्या है? इसलिए पहली बात यह है कि हमें ज्ञान होना चाहिए कि प्रेय क्या है और श्रेय क्या है?

व्यवहार का आधार है प्रियता

पदार्थ के प्रति जो मोह है वह है प्रेय–प्रियता। प्राणी के कार्य प्रियता के आधार पर चलते हैं। उसे धन प्रिय है, पदार्थ प्रिय है, वस्तु प्रिय है–इस आधार पर बहुत सारा व्यवहार चलता है। लड़की की शादी हो रही थी। बारात आई हुई थी। शादी हो गई, दहेज भी दे दिया। जाने की तैयारी हो रही थी।

कन्या का पिता बोला–बड़ी कठिनाई है, लड़की भी देनी होती है और साथ में दहेज भी देना होता है।

वर का पिता बोला–सेठ साहब! कोई बात नहीं, इतनी कठिनाई का क्यों अनुभव करते हैं। दहेज दे दीजिए और लड़की को आप अपने पास रख लीजिए।

समस्या का समाधान हो गया। धन दे दो। लड़की की कोई चिंता नहीं है। उसे अपने पास रख लो। प्रियता के आधार पर बहुत सारे व्यवहार चलते हैं और वे व्यवहार बहुत समस्या भी पैदा करते हैं।

जो धीर आदमी है, वह दोनों का विवेक करता है। विवेक के बाद वह श्रेय का वरण करता है और जो विवेकशील आदमी नहीं है, धीर नहीं है, वह आदमी योगक्षेम की चिंता में रहता है। जो नहीं मिला, वह पदार्थ मिलना चाहिए और जो मिला है, वह सुरक्षित रहना चाहिए। इस चिंता में, इस उधेड़बुन में रहता है। जब तक व्यक्ति इन्द्रियों की चेतना में जीता है, तब तक प्रेय के पीछे दौड़ता है। इन्द्रिय चेतना में जीने वाला व्यक्ति शब्द के पीछे भी दौड़ता है और रूप के पीछे भी दौड़ता है।

एक लड़की जा रही थी। एक युवक मिला। बोला–तुम बहुत सुंदर हो, क्या मुझसे प्रेम करोगी? लड़की होशियार थी। बोली–तुम मुझे सुंदर कहते हो, मेरे पीछे मेरी बहन आ रही है, उसको देखो, वह बहुत सुंदर है। वह लड़का उधर दौड़ा, रूप के पीछे दौड़ा। आधा किलोमीटर गया और देखा–वह तो बहुत भद्दी थी। वह बोली–तुम यहां क्यों आए हो? युवक ने कहा–तुम बड़ी सुंदर हो। उसने कहा–सुंदरता देखनी है तो आगे जाओ। मेरी छोटी बहन आ रही है। वह बहुत सुंदर है। उधर दौड़ा। न वह मिली, न वह मिली। केवल दौड़ता रहा।

दौड़ गंध,रस के पीछे

आदमी शब्द और गंध के पीछे भी दौड़ता है। बहुत सारे पशु और पक्षी हैं, जो गंध के पीछे दौड़ते हैं, रस के पीछे दौड़ते हैं, भोजन के पीछे दौड़ते हैं। एक बार गुरुदेव जैन विश्वभारती, लाडनूं में विराज रहे थे। नेमीचंद जी पितलिया, मेवाड़ के, जिनको हम बारह मासिया श्रावक कहते हैं, प्रायः पूरे वर्ष आचार्यवर की सेवा में रहने वाले थे। एक बार वे मेवाड़ गए, वापस आए। मैंने पूछा–मेवाड़ क्यों गए थे? दो दिन में वापस आ गए। उन्होंने कहा–दो लड्डू खाने के लिए। वहां कोई शादी में जाना था और वहां दो लड्डू खाकर आ गया। आदमी रस के पीछे भी जाता है। भोजन के लिए आदमी कहां-कहां चला जाता है। विचारकों ने लिखा है–व्यक्ति का निर्माण रसोई से बहुत जुड़ा हुआ है। व्यक्ति कैसा बनेगा, यह बहुत निर्भर है रसोई पर, जीभ के स्वाद पर। यही बात स्पर्श के संदर्भ में है।

इन्द्रिय-चेतना

इन्द्रियों की चेतना में जीने वाला, इन्द्रिय जगत में जीने वाला व्यक्ति प्रेय का वरण करता है। उसके आगे क्या होता है, वह परिणाम नहीं देखता। प्रियता का परिणाम क्या होगा? आज की एक बड़ी जटिल समस्या है प्रेम विवाह की। थोड़ा-सा संपर्क होता है और प्रेम विवाह कर लेते हैं। दुनिया में ऐसा बहुत हो रहा है। हमारे आस-पास में ऐसे जितने लोगों को देखा, उसका परिणाम अच्छा नहीं रहा है। एक बार भावावेश में अपरिचित के साथ भी विवाह कर लेते हैं। अंत में निर्वाह होना बड़ा मुश्किल हो जाता है।

निर्णय प्रेय और श्रेय का

इन्द्रिय जगत का काम है प्रियता पैदा करना। आदमी प्रियता के साथ व्यवहार करता है। एक रोगी है, पाचन तंत्र कमजोर है, उसे गरिष्ठ चीजें नहीं खानी चाहिए, फिर भी खा लेता है। क्यों खाता है? इन्द्रियों की प्रियता है, इसलिए खा लेता है। बाद में सोचता भी है कि अच्छा नहीं किया। खाने के कारण बीमार हो गया। एक प्रसंग है। एक वैद्य था। वैद्य के पास दो व्यक्ति बैठे थे। वैद्य ने एक व्यक्ति की नाड़ी देखी और कहा–भाई! तुम्हारे कोई खास बीमारी नहीं है, थोड़ा गरिष्ठ भोजन करो। तुम ठीक हो जाओगे।

दूसरे रोगी को देखकर कहा–तुम हल्का भोजन करो। वह बोला–वैद्य जी! आपके यहां इतना पक्षपात है। पहले व्यक्ति को कहा–गरिष्ठ चीजें खाओ और मुझे कहा–उबली हुई सब्जी खाओ। इतना पक्षपात क्यों? वैद्य बोला–तुम समझते नहीं हो। वह दुर्बल है और दुर्बलता के कारण बीमारी हो रही है। पुष्ट भोजन करेगा तो ठीक हो जाएगा। तुम खाकर बीमार बने हो, इसलिए तुम्हारा कोलस्ट्रोल भी बढ़ गया है, नाड़ी भी बहुत तेज हो गई है, हार्ट पर भी असर आ रहा है, चर्बी भी बढ़ रही है, इसलिए तुम कम खाओ। वैद्य का निर्णय था हित के आधार पर और उस व्यक्ति का निर्णय था प्रियता के आधार पर।

इन्द्रियातीत चेतना

प्रेय और श्रेय के आधार पर हमारे बहुत सारे निर्णय होते हैं, जो धीर पुरुष हैं, वे श्रेय को प्राथमिकता देते हैं और प्रेय को गौण कर देते हैं। धीर वह होता

है, जिसमें मनोबल होता है, जिसका मन नियंत्रित होता है, इन्द्रियां नियंत्रित होती हैं। मनोनियामिकाशक्तिः धृतिः–मन का नियमन करने वाली शक्ति को धृति कहा जाता है। धीर आदमी विचलित नहीं होता। वह इन्द्रियों के माध्यम से कोई गलत काम नहीं करता। जो धीर होता है, वह इन्द्रिय चेतना से ऊपर उठ जाता है, अतीन्द्रिय चेतना के जगत में प्रवेश कर देता है।

रानी कमलावती का संबोध

जब पुरोहित घर परिवार को छोड़कर दीक्षित हो रहा था, तब राजा ने सोचा–पुरोहित, उसकी पत्नी, उसके दोनों पुत्र, पूरा परिवार दीक्षित हो रहा है। जहां परिवार में पीछे कोई नहीं होता, वहां संपत्ति राज्य की होती है। राजा का सारा ध्यान प्रियता की और जा रहा था। आदेश दिया–पुरोहित की सारी संपत्ति राज्य कोश में ले आओ और वहां स्थापित कर दो। संपत्ति राजा के पास आने लगी। रानी अपने गवाक्ष में बैठी थी। उसने देखा–आज यह इतना धन कहां से आ रहा है? अपने अधिकारियों को बुलाया और पूछा–अरे! आज क्या हो रहा है? इतना धन कहां से आ रहा है? बोला–महारानी जी! क्या आपको पता नहीं है कि पुरोहित जी का पूरा परिवार दीक्षित हो रहा है। पुरोहित की सारी संपत्ति राजकोश में आ रही है। यह सुनकर महारानी को बड़ा अटपटा लगा। एक व्यक्ति संपत्ति का त्याग कर रहा है और हमारे महाराजा उसको मंगा रहे हैं। यह अच्छा नहीं है। महारानी कमलावती तत्काल महाराजा के पास गई। वहां जाकर बोली–महाराज! आज आप क्या कर रहे हैं? बोला–कुछ नहीं कर रहा हूं। यह धन कहां से आ रहा है? राजा ने कहा–यह तो पुरोहित का धन आ रहा है। राजा ने सारी स्थिति समझाई।

महारानी बोली–महाराज! थोड़ा चिंतन करो। कोरे कानून पर मत चलो। यह वमन किया हुआ धन है। पुरोहित जी को आपने ही दिया था। वांत को खाना अच्छा नहीं होता। जिस धन को त्याग दिया, उसको फिर से ले लिया। यह अच्छी बात नहीं है। महाराजा को थोड़ा सोचना पड़ा। कभी-कभी स्त्रियां बड़ी संबोध देने वाली होती हैं। अनेक बार स्त्रियों ने अधीर व्यक्ति को धीर बना दिया। महारानी बोली–अब आप क्या करेंगे?

राजा बोला–धन के बिना राज्य का संचालन कैसे होगा? राज्य को धन की जरूरत है। जब राजस्व कम आता है और खजाने में धन कम होता है तो राजा

की शक्ति भी कम हो जाती है। वह पूरी शक्ति का उपयोग नहीं कर सकता, न अच्छी सेना रख सकता है, न अच्छा निर्माण कार्य कर सकता है, न प्रजा को सुख दे सकता है। धन तो जरूरी है, आखिर धन ही तो काम आएगा। राजा के अनुसार धन ही सबकुछ है। धन की अपनी उपयोगिता है, पर सबकुछ धन नहीं है।

महारानी बोली–महाराज! आप भ्रम में हैं, आप सचाई को नहीं पकड़ रहे हैं। आप जानते हैं कि एक दिन सबको छोड़कर जाना है, कोई भी आदमी अमर नहीं है, सबको मरना है, आज तो उसके पास सबकुछ है, जिस दिन मरेगा उसके साथ कोई नहीं जाएगा। महाराज! धन सबकुछ नहीं है, त्राण देने वाला नहीं है, जो त्राण देने वाला है उसकी ओर आप ध्यान नहीं दे रहे हैं। राजा धर्म की ओर कम ध्यान देता था। महारानी ने जो कहा, वह महत्त्वपूर्ण वाक्य है–एक्को हि धम्मो नरदेव! ताणं। महाराज! एक धर्म ही त्राण है, शरण है। दूसरा कोई भी त्राण देने वाला, शरण देने वाला नहीं है।

धर्म ही शरण है

बीमारी के कारण व्यक्ति अत्राण हो जाता है, उस समय धन त्राण नहीं देता। ऐसी स्थिति में एक धर्म ही त्राण दे सकता है। उस समय उस व्यक्ति को धर्म की बात सुनाओ। अनुप्रेक्षा का प्रयोग कराओ। उस व्यक्ति को सहिष्णुता का मार्ग दिखलाओ। सहन करने की शक्ति को बढ़ाओ, मनोबल को बढ़ाओ। ऐसा संबल मिलता है कि एक बार पीड़ा से कराहता हुआ व्यक्ति भी खुशी में आ जाता है, झूम उठता है।

मुझे उबारो, मुझे तारो

आदमी पहले बहुत अहंकार करता है, पर जब मृत्यु के मुख में जाने की तैयारी होती है, उस समय सारा चिंतन बदल जाता है। एक व्यक्ति था, जिसको धर्म में कोई विश्वास नहीं था, पूरा नास्तिक था। दूसरों को नास्तिक बनाने में भी रस लेता था। धर्म का आलोचक, साधुओं का आलोचक, धर्म करने वालों का आलोचक, गृहस्थों का भी आलोचक था। जब अंतिम समय आया, धारणा बदल गई। उसके द्वारा पूज्य गुरुदेव के सामने प्रार्थना आई कि आचार्यवर मुझे दर्शन दें। हमने सुना तो मन में आया कि यह सूर्य किस दिशा में उगा है? भला वह व्यक्ति, जो सदा धर्म के बारे में नकारात्मक बातें करता था और आज कहता है कि आचार्यवर मुझे दर्शन दें। जब युवा था, शक्तिशाली

था, तब दर्शन की बात मन में नहीं आई। अब जब मृत्यु के आसन पर आ गया, तब धर्म की बात मन में आ रही है। आचार्यवर ने दर्शन दिए।

व्यक्ति बोला–महाराज! मैंने तो जो कुछ किया, सो किया, अब आप मुझे उबारो, तार दो मुझे। मैं बड़ी कठिनाई भोग रहा हूं, कष्ट भोग रहा हूं।

कष्ट दूर करता है मस्तिष्क का रसायन

बीदासर में मूलचंद जी दूगड़ अच्छे श्रावक थे। व्यवस्था-कुशल व्यक्ति थे। कैंसर की बीमारी हो गई। उन्हें बड़ा कष्ट हो रहा था। गुरुदेव तुलसी बीदासर पधारे। दर्शन दिए और पूछा–कैसे चल रहा है? बोले–कष्ट तो होता है, पर मेरे पास कष्ट की दवा है, इलाज है। क्या? जब भी ज्यादा वेदना होती है आपके गीतों का कैसेट चालू कर देता हूं, थोड़ी देर में वेदना गायब हो जाती है, पता ही नहीं चलता कि कोई कष्ट है। यह एक बहुत महत्त्व की बात है। शरीर विज्ञान के आधार पर इसकी व्याख्या की जा सकती है कि जब ज्यादा कष्ट होता है, तब डॉक्टर मार्फिया का इंजेक्शन देते हैं, कष्ट शांत हो जाता है। हमारे शरीर में भी एक रसायन पैदा होता है, जिसका नाम है इन्डोरफिन। जो इंजेक्शन का काम है, वही काम इस रसायन का है। जब कोई आदमी भक्ति में जाता है, वैराग्य की तीव्रता में जाता है, श्रद्धा की तीव्रता में जाता है और धर्म की बात करता है, उस समय व्यक्ति के मस्तिष्क में इन्डोरफिन नामक एक रसायन पैदा होता है, तब पीड़ा गायब हो जाती है।

इन सारे संदर्भों में महारानी की बात को समझने का प्रयत्न करें। महारानी ने कहा–महाराज! एक धर्म ही अंतिम समय में, मौत के समय में, त्राण देने वाला है। आपको यह लग रहा है कि यह धर्म कोई त्राण नहीं देगा, इसलिए आप धन ले रहे हैं। यह मुझे अच्छा नहीं लग रहा है, आप एकांगी दृष्टि से कोई निर्णय न करें। धन का उपयोग अपने स्थान पर है, धन का महत्त्व भी अपने स्थान पर है, पर धर्म का मूल्य अपने स्थान पर है। उसको हम निकम्मा नहीं कह सकते। उसकी अपनी उपयोगिता है, पर धन को ही सबकुछ मत मानो। धन को सबकुछ मानने की जो भावना है, वह इन्द्रिय चेतना से उभरी हुई भावना है। जो व्यक्ति केवल इन्द्रिय चेतना की सीमा में जीता है, उसमें उस प्रकार की भावना पैदा हो जाती है, किंतु जो व्यक्ति यह जानता है कि इन्द्रियों से परे भी कुछ है, वह इन्द्रिय से परे इन्द्रियातीत चेतना में जाना पसंद करता है।

धर्म का सही अर्थ

धर्म क्या है? अगर आप धर्म को ठीक से समझने का प्रयत्न करें तो धर्म का अर्थ है–इन्द्रियातीत चेतना में रहना। एक व्यक्ति इन्द्रिय-चेतना में जीता है, उसका सिद्धांत होगा–किसी ने गाली दी तो दस गाली दो, फिर गाली नहीं देगा। उसका चिंतन प्रतिक्रियात्मक होगा। इसी आधार पर आदमी ईंट का जवाब पत्थर से देता है। ये सारे जो कनसेप्ट हैं, ये सारी जो अवधारणाएं हैं, वे सब इन्द्रिय चेतना से उभरी हुई अवधारणाएं हैं। जिसकी इन्द्रियातीत चेतना है, वह क्षमा करेगा, वह क्षमा करना जानेगा।

महाभारत में एक श्लोक का सुंदर चरण है–क्षमावतामयं लोकः–यह लोक भी क्षमावान के लिए है। इस लोक का लाभ भी क्षमावान ले सकता है और परलोक भी उसी के लिए है। दोनों की तुलना करें कि एक व्यक्ति क्रोध के प्रति क्रोध करता है और गाली के प्रति गाली देता है। दूसरा व्यक्ति क्रोध करने वाले के प्रति और गाली देने वाले के प्रति क्षमा का व्यवहार करता है। एक आदमी को गाली दें तो वह दस गाली देता है और दूसरा आदमी शांत रहता है। यह क्षमा कहां से आती है?

अप्रिय घटना के प्रति भी सहिष्णुता कहां से आती है? इन्द्रिय जगत में जीने वाला व्यक्ति ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता। इन्द्रिय की चेतना से परे चला गया, उसका सारा व्यवहार भिन्न प्रकार का हो जाता है। जो इन्द्रियों से परे का जीवन जीता है, उस व्यक्ति में सहिष्णुता का विकास होता है। महारानी की बात को हम इस संदर्भ में समझें। महारानी का सारा चिंतन इन्द्रियातीत चेतना में चल रहा था और महाराजा का चिंतन इन्द्रिय-जगत में चल रहा था।

महारानी ने उच्च स्वर में कहा–महाराज! एक धर्म ही आपको त्राण देने वाला है। जब आप राज्य को, सारे देश को, परिवार को, धन को छोड़कर जाएंगे, उस समय कोई भी साथ चलने वाला नहीं है, कोई त्राण देने वाला नहीं है। केवल एक धर्म ही त्राण देगा। महारानी ने ऐसा संबोध दिया, जिससे महाराज की चेतना भी बदल गई और व्यवहार भी बदल गया।

हमारा सारा व्यवहार चेतना के साथ चलता है। जिस प्रकार की चेतना होती है, वैसी ही अवधारणाएं बनती हैं और उनके आधार पर हमारा व्यवहार

चलता है। चेतना का रूपांतरण ही धर्म का मुख्य काम है। चेतना को बदलो, वस्तु स्थिति को बदलो। केवल विषय को बदलने से नहीं होगा, मन में छिपे हुए विकारों को बदलो।

धर्म की शरण आदमी को विकारों से बचाती है, दुःख से मुक्त करती है, प्रेय से श्रेय की ओर ले जाती है। जो धीर नहीं है, वह प्रेय की और दौड़ता है और जो धीर आदमी है, वह श्रेय की और जाता है, श्रेय का वरण कर अपनी समस्याओं का समाधान करता है। धार्मिक आदमी प्रेय से श्रेय की दिशा में जाएगा। जो धार्मिक नहीं है, वह प्रेय के चक्रव्यूह में ही उलझा रहेगा, बाहर नहीं आ सकता, इसलिए प्रेय और श्रेय दोनों को समझने का प्रयत्न करें। हमारी गति श्रेय की ओर हो, जिससे हमारी आत्मा का कल्याण हो और समाज की व्यवस्था का भी कल्याण हो।

12. परम तत्त्व को भीतर खोजो

समय का चक्र चलता है। उसके दो रूप निरंतर हमारे सामने आते हैं–एक दिन और एक रात। दिन अच्छा लगता है, क्योंकि उसमें प्रकाश है। रात्रि अच्छी नहीं लगती, क्योंकि उसमें अंधेरा है। अंधेरे को मिटाने के लिए आदमी ने अनेक उपाय किए हैं। चकमक के पत्थर से आग निकाली। थोड़ा प्रकाश का अनुभव हुआ, फिर दीया जला, मोमबत्ती आई, लालटेन आए और अब बिजली आ गई। कितना प्रयत्न हुआ है प्रकाश को पाने के लिए। आदमी अंधेरे में रहना नहीं चाहता। उसने इस बात की ओर ध्यान दिया कि प्रकाश चाहिए, पर इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया कि भीतर भी रात है, वहां भी प्रकाश चाहिए। जैसे समय चक्र के साथ रात और दिन का चक्र चलता है, वैसे ही हमारे भीतर भी दिन और रात दोनों का चक्र चलता है। भीतर प्रकाश भी है और अंधकार भी है।

अंधेरे की शिकायत

भीतर की रात को कैसे प्रकाशमय बनाएं? अंधेरे को कैसे मिटाएं? बाहर अंधेरा है। सूरज आता है तो प्रकाश हो जाता है। एक बार अंधेरा इन्द्र के पास पहुंचा–प्रभो! मेरी एक विनम्र प्रार्थना है। बड़े आदमी सबकी बात सुनते हैं। प्रकाश की सुनते हैं तो अंधकार की भी सुनते हैं। बोलो–क्या बात है? बात यह है कि यह सूरज मेरे पीछे पड़ा हुआ है। मुझे टिकने नहीं देता। मेरे अस्तित्व को समाप्त करना चाहता है। मैं जहां भी जाता हूं,वहां आकर मुझे भगाने का प्रयत्न करता है और भगा भी देता है। सबको न्याय मिलना चाहिए। सबको अपने अस्तित्व की सुरक्षा का अवकाश मिलना चाहिए। सूरज अपना काम करे और मैं अपना काम करूं। मेरे पीछे-पीछे वह क्यों घूमता है?

इन्द्र ने कहा–तुम्हारी बात ठीक है। तुम ठहर जाओ। इन्द्र ने सूरज को बुलाया, बुलाकर कहा–देखो! तुम बहुत शक्तिशाली हो, प्रकाश देने वाले हो,

पर बेचारे अंधकार के पीछे क्यों घूम रहे हो? उसको क्यों सता रहे हो? किसी गरीब आदमी को सताना अच्छा नहीं है। सबको न्याय मिलना चाहिए। सबको जीने का अधिकार है। सबको अपने अस्तित्व की सुरक्षा चाहिए। उसमें बाधा क्यों डालते हो? सूरज ने हाथ जोड़ा और बोला–प्रभो! आप क्या कह रहे हैं? आप कैसी बात कर रहे हैं? मेरे पर दोषारोपण कर रहे हैं। मैं किसके पीछे जाता हूं? इन्द्र बोला–अंधेरे की शिकायत है कि तुम उसके पीछे-पीछे दौड़ते हो। सूरज ने कहा–प्रभो! मुझे पता ही नहीं है कि अंधकार है कौन? मैं जानता ही नहीं हूं। मैंने न तो आज तक अंधकार को देखा है और न मैं उसका नाम जानता हूं, फिर उसका पीछा कैसे कर सकता हूं? आप उसे मेरे सामने लाओ। मैं उससे बात करूंगा। अनावश्यक क्यों मुझ पर दोषारोपण कर रहे हो? मैंने उसका क्या बिगाड़ा? इन्द्र ने कहा–अंधकार को बुलाओ। अंधकार उपस्थित हुआ और बोला–मैं वहां जा ही नहीं सकता, वहां टिक ही नहीं सकता, क्योंकि सूर्य के सामने मेरे अस्तित्व का पता ही नहीं चलेगा।

एक बड़ी समस्या है कि अंधकार अपने अस्तित्व की सुरक्षा चाहता है। शायद इसीलिए जब सूरज आता है तो प्रकाश हो जाता है। अंधकार ने सोचा–बाहर की दुनिया में तो कोई सुरक्षा का स्थान मेरे लिए नहीं है, फिर कहां रहना चाहिए? एक स्थान खोज लिया। कौन-सा स्थान? आदमी के भीतर का स्थान खोज लिया, क्योंकि वह सुरक्षित स्थान है। सूरज भी कुछ बिगाड़ नहीं पाएगा। इसीलिए आदमी के भीतर अंधेरा सघन होता जा रहा है, बढ़ता जा रहा है और प्रकाश कम होता जा रहा है।

अंधकार है बुराइयों का कारण

भीतर बहुत अंधेरा बढ़ गया। उस अंधेरे का ही प्रभाव है कि हिंसा चलती है, झूठ चलता है, अन्याय चलता है, छीना-झपटी चलती है, एक-दूसरे के अधिकारों में हस्तक्षेप चलता है और सत्त्व का हरण किया जाता है। जिन-जिन बातों को हम बुराइयां मानते हैं, वे बुराइयां कहां से आ रही हैं? भीतर में जो अंधेरा है, उसी की ये किरणें हैं। अंधकार की रश्मियां बाहर आती हैं, तब आदमी को अंधकारमय बना देती हैं, दृष्टि अंधकारमय बन जाती है, उसे कुछ पता ही नहीं लगता। भीतर का अंधेरा बड़ा जटिल होता है, इसीलिए आदमी न चाहते हुए भी बुराइयां करता है।

बुराइयां दो प्रकार की होती हैं, एक आदमी बुराई करना चाहता है और बुराई करता है और एक आदमी बुराई करना नहीं चाहता, फिर भी बुराई हो जाती है। दोनों प्रकार का व्यवहार चलता है। बहुत सारे लोग आते हैं और कहते हैं–महाराज! यह गलत काम है, अपराध है, हम करना नहीं चाहते। जैसे शराब पीना नहीं चाहते, पर रहा नहीं जाता। भीतर अंधकार है। वह अंधकार कौन-सा है? कामना का अंधकार है, क्रोध का अंधकार है। भीतर रात है। उस रात्रि को आदमी दिन में नहीं बदल सकता। आदमी को अंधेरे में दिखाई नहीं देता। एक वस्तु पड़ी है। अंधेरे में पता नहीं लगता कि वस्तु कहां है? प्रश्नव्याकरण सूत्र में नरक के वर्णन में एक शब्द आया है–निच्चं अंधकारं–वहां नित्य अंधकार रहता है। यदा कदा बिजली नहीं होती है तो लोगों को कठिनाई लगती है। वहां रात-दिन का भेद ही नहीं है। मनुष्य लोक में समय चक्र का भेद है। इतने घंटे का दिन और इतने घंटे की रात, पर नरक में तो यह भेद ही समाप्त है। सदैव अंधकार है। वहां प्रकाश कभी नहीं होता। कैसे जीते होंगे?

लोग कहते हैं कि नरक में कष्ट है। कष्ट क्या है? प्रकाश का न होना सबसे बड़ा कष्ट है। एक दूसरे को देख नहीं सकते। कोई काम नहीं कर सकते। अंधकार अपने आप में भारी समस्या है। दुनिया में सबसे बड़ा दुःख है अंधकार, प्रकाश का अभाव। जिस व्यक्ति के भीतर अंधकार रहता है, रात्रि रहती है, कभी दिन नहीं होता, उस व्यक्ति को कितना कष्ट होता है।

ज्ञान प्रकाश है

जैन साहित्य में बहुत सुंदर बात कही गई है–णाणं पयासयरं। ज्ञान प्रकाश करने वाला है। जिस व्यक्ति के भीतर ज्ञान हो गया, रात्रि मिट गई, अंधकार मिट गया, पूरा नहीं मिटा, फिर भी उजाला हो गया। प्रकाश भी समान नहीं होता।

मैंने प्रकाश के बारे में एक बात लिखी। पूज्य गुरुदेव ने मद्रास में चातुर्मास किया। मैं जिस कक्ष में बैठता था, दिन में काम करता और चौथे प्रहर में उस कक्ष में अंधेरा हो जाता, वहां लिखना मुश्किल हो गया। मैं बाहर गया। वहां थोड़ी देर काम किया, फिर वहां भी अंधेरा आने लगा, फिर खिड़की के पास जाकर बैठा, वहां लिखा। जब किसी को देखना है तो मेरे कक्ष में प्रकाश है। लिखना है तो वहां अंधेरा है। बाहर आया लिखने लगा। वहां लिखने का भी

प्रकाश है, देखने का भी प्रकाश है। थोड़ा समय बीता। आदमी के देखने का प्रकाश रह गया, लिखने का प्रकाश कम हो गया। तीसरा स्थान बदलना पड़ा।

प्रकाश की खोज करें तो तीसरा स्थान नहीं, असंख्य स्थान बदलने पड़ेंगे। अभी प्रकाश, बाद में अंधेरा, फिर प्रकाश, फिर अंधेरा, आखिर में वहां पहुंचना है जहां कभी अंधेरा नहीं होता। सुबह कक्ष की एक साइड में बैठकर लिखता हूं, वहां प्रकाश होता है। शाम को प्रकाश चाहिए तो कक्ष की दूसरी साइड में चला जाता हूं। ये तो दो ही स्थान हैं, स्थान को बदलते जाओ। आगम की भाषा कहती है–असंखेज्जा ठाणा–हमारे स्थान असंख्य हैं। आगे से आगे बढ़ो, अंधकार मिटता जाएगा और प्रकाश बढ़ता चला जाएगा।

जरूरत है तीन बातों की

जीवन में तीन बातों की आवश्यकता रहती है–प्रकाश, शुद्धि और सुरक्षा।

प्रकाश

हम प्रकाश की खोज करें। ज्ञान सबसे बड़ा प्रकाश है। हर जीवन में पहली आवश्यकता है प्रकाश की। आदमी को प्रकाश चाहिए, वातावरण शुद्ध चाहिए और सुरक्षा का आश्वासन चाहिए। अध्यात्म के क्षेत्र में भी तीन बातों पर बल दिया गया है। जैसे बाहर प्रकाश की जरूरत है, पर्यावरण शुद्ध रहे, दूषित न बने और सुरक्षा की व्यवस्था रहे, वैसे ही भीतर तीन बातों की जरूरत है–प्रकाश, शुद्धि और सुरक्षा।

तुम ज्ञान करो, प्रकाश को जानो, सचाई को जानो, तत्त्व को जानो, दुनिया को जानो, विश्व को जानो, पदार्थ की प्रकृति को जानो, अपने आपको जानो–मैं कौन हूं? भीतर प्रकाश है और उस प्रकाश को पैदा करने वाला है ज्ञान। ऐसा ज्ञान है, जिसका पावर हाउस इतना मजबूत है कि बार-बार बिजली गायब होने की स्थिति नहीं आती।

शुद्धि

जीवन में दूसरी आवश्यकता है शुद्धि की। शुद्धि करने का साधन है तप। जहां भी दोष लगता है, दिन भर में आदमी गलती करता है, बोलते समय भी दोष लग जाता है, चिंतन में भी दोष लग जाता है, चलने में भी दोष लग जाता

है, हर प्रवृत्ति में दोष लगता है। इससे मैल जम जाता है। उस मैल को साफ करने के लिए तपस्या जरूरी है। तप के द्वारा ऐसा स्नान कर ले कि सारा मैल हट जाए। तपस्या शोधक है, उससे दिन भर की शुद्धि हो जाती है। हर आदमी को प्रतिदिन तपस्या करनी चाहिए, जिससे चौबीस घंटों में जो भी मैल जमा हुआ है, दूसरे दिन तप से सफाई हो जाती है।

तपस्या के बारह प्रकार बतलाए गए हैं और बारह के भेद करें तो सैकड़ों प्रकार हो जाते हैं। केवल न खाना ही तप नहीं है और भी बहुत भेद हो सकते हैं। तपस्या से शुद्धि हो जाती है। साध्वी सोहनकुमारीजी लाडनूं की थी। उन्होंने कहा–अब शरीर काम कम दे रहा है, अनशन करना चाहती हूं। हमने कहा– अभी अनशन नहीं, संलेखना शुरू कर दो। संलेखना अनशन की पूर्व भूमिका है। उन्होंने तपस्या शुरू कर दी, पर अकस्मात् ऐसी स्थिति बनी कि शुद्धि का वेग बढ़ गया। एक ही दिन में सारी बातें समाप्त हो गईं। चौविहार अनशन कर समाधि मरण का वरण कर लिया। जब शोधन हो जाता है तो ऐसी स्थिति घटित हो जाती है।

समाधि मरण की तैयारी सबको करनी चाहिए। मृत्यु तो सबको आने वाली है, सबको मरना है, पर योजना के साथ मृत्यु का वरण करे, वह आदमी बड़ा होता है, शोधक होता है। मरने की भी योजना बनाना है। बहुत लोग कारखाने की योजना बनाते हैं। इवेन्ट के जमाने में न जाने कितनी योजनाएं, कितने प्रोजेक्ट चलते हैं, पर मरने का प्रोजेक्ट कोई बनाए, मरने की योजना बनाए, यह बिल्कुल नई बात है। वह नई बात भगवान महावीर के द्वारा प्राप्त हुई है। उन्होंने कहा था कि मरने की योजना बनाओ। कब बनाओ? मरने से बारह वर्ष पहले बनाओ। संलेखना का समय बारह वर्ष का है। सम्यक् योजना बना लो कि मुझे कैसे जीवन का समापन करना है? कैसे शरीर का विसर्जन करना है? उसके पहले मुझे क्या-क्या करना है? जब शुद्धि होती है, तब तपस्या या संलेखना होती है अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि जब तपस्या या संलेखना होती है तो शुद्धि का प्रकर्ष बढ़ जाता है।

सुरक्षा

जीवन में तीसरी आवश्यकता है सुरक्षा की। भीतर की सुरक्षा कैसे हो? संयम है सुरक्षा करने वाला। जितना संयम, उतनी सुरक्षा। संयम सबसे बड़ी

सुरक्षा है। कोई खतरा ही पैदा नहीं होता। चीन के सम्राट का प्रधानमंत्री था चुवांगसे। सम्राट का मत भिन्न रहता था और प्रधानमंत्री का चिंतन भिन्न रहता था। एक दिन प्रधानमंत्री ने सोचा कि मतभेद में रहना अच्छा नहीं है। सम्राट का चिंतन मैं नहीं मान सकता और मेरे चिंतन को सम्राट महत्त्व नहीं देते। इस स्थिति में मुझे इस पद को त्याग देना चाहिए।

पद छोड़ कर जंगल में चला गया। संन्यासी बन गया। जंगल में अकेले पेड़ के नीचे मस्ती के साथ अपना जीवन शुरू किया। एक दिन सम्राट उधर से आया। किसी ने उसे कह दिया–प्रभो! जो आपके प्रधानमंत्री थे चुवांगसे, वे सामने जंगल में पेड़ के नीचे बैठे हैं। अच्छा हो आप उनसे मिलकर जाएं। सम्राट ने कहा–चलो। उधर जाकर देखा–ऐसे पैर पसारे मस्ती में बैठा है और गा रहा है। सम्राट आ गए तो लोगों ने कहा–चुवांगसे! कभी तुम सम्राट के वजीर रहे हो, प्रधानमंत्री रहे हो। सम्राट आ गए, उनका सम्मान तो करो। कैसे बैठे हो पैर पसारे? उसने नहीं सुना, अपनी लीनता में रहा। सम्राट बैठ गया और कहा–चुवांगसे! थोड़ा होश तो होना चाहिए कि तुम्हारा स्वामी आ गया और तुम ऐसे बैठे हो?

चुवांगसे ने कहा–कौन स्वामी? किसका स्वामी? सम्राट ने कहा–पहले तुम घुटने टेक करके बैठते थे और अब पैर पसारे बैठे हो। चुवांगसे ने कहा–पहले मुझे भय था। सुरक्षा नहीं थी, डर था कि सम्राट नाराज हो जाएंगे तो पता नहीं क्या होगा? सबकुछ छीन लेगा और मार देगा। अब वह भय मिट गया। मेरे मन में कोई भय नहीं है। मेरे पास में कुछ है नहीं। सम्राट मेरा क्या करेगा? मेरे लिए दुनिया में कोई सम्राट नहीं है। जैसे राहगीर आते हैं, वैसे ही तुम भी एक राहगीर हो। घुटने ऐसे नहीं मुड़ते, घुटने भय के कारण, लोभ के कारण मुड़ते थे। अब न लोभ रहा, न भय रहा। अब मुझे कोई डर नहीं है। सम्राट ने उसके आभामंडल को देखा–ये सब व्यवहार की बातें तो छुप गईं।

सम्राट बोला–मुझे जीवन में आज तक इतना आनंद नहीं आया, जितना इसको देखने से आ रहा है। यहां सुरक्षा है, भय नहीं है। सुरक्षा कब चाहिए? सुरक्षा तब चाहिए जब भय हो। जब भय ही नहीं रहा तो फिर किस बात की सुरक्षा?

जिस व्यक्ति का काम शांत, क्रोध शांत, लोभ शांत, भय शांत है, वह सबसे अधिक सुरक्षित है। इससे बड़ी सुरक्षा दुनिया में कोई नहीं है। लोग मानते

हैं कि पांच-दस कमाण्डो साथ चलते हैं, सुरक्षा कर रहे हैं। सबसे पहले बेचारे वे ही मारे जाते हैं, फिर मालिक मारा जाता है। बाहर में कोई सुरक्षा नहीं है। हमारी सुरक्षा हमारे भीतर है। सबसे बड़ी सुरक्षा है संयम। जहां संयम होता है, वहां अभय की चेतना स्वतः जागृत हो जाती है।

अध्यात्म के तीन अवदान हैं–प्रकाश, शुद्धि यानी दोष को मिटाना, दूषण को मिटाना और सुरक्षा। इन्हें केवल बाहर में मत खोजो। भीतर खोजने का प्रयत्न करो। ज्ञान हमारा प्रकाश है, तपस्या हमारी शुद्धि है और संयम हमारी सुरक्षा है। जब भीतर की रात को और भीतर के दिन को आदमी देख लेगा तो एक नई दुनिया बनेगी। हमारी कठिनाई यह है कि हमारी दृष्टि स्थूल बन गई। आंख की प्रकृति है कि वह बाहर को ही देखती है। केवल बाहर ही बाहर मत देखो। जिस दिन इस आंख को मूंदकर और उसकी रश्मियों को भीतर ले जाने की बागडोर हमारे हाथ में आ जाएगी तो सारी दुनिया बदल जाएगी, इसलिए हम इन तीन तत्त्वों को, जो परम तत्त्व हैं, उन्हें अपने भीतर खोजने का प्रयत्न करें।

13. कठिन है अपनी पहचान

हमारी दुनिया में नानात्व है। एक नहीं है। यदि एक हो तो पहचान का प्रश्न उपस्थित नहीं होता। जहां अनेक हैं, वहां पहचान की बात आती है कि पहचान करो। तर्कशास्त्र का एक शब्द है, पहचान करो कि कौन है? नानात्व है, वहां पहचान आवश्यक होती है। पहचान का काम सरल नहीं है, बहुत कठिन है। पहचानने में स्मृति चाहिए, मैंने आपको कहीं देखा है। अच्छी स्मृति हो और अच्छा प्रत्यक्षीकरण हो, आंख भी साफ हो तो आदमी दूसरे को पहचान सकता है। यदि स्मृति अच्छी नहीं और प्रत्यक्षीकरण नहीं तो पहचान की बात नहीं आती। पहचान के लिए दोनों जरूरी हैं–स्मृति और प्रत्यक्ष।

तर्कशास्त्र में एक फार्मूला प्रस्तुत किया गया–स एवायम्। किसी को देखा–स एव अयम्–यह वही है। अयम् यह हमारे प्रत्यक्ष है और स एव हमारे परोक्ष है। स्मृति है, 'यह वही है'। दूसरे को पहचानना सरल है, क्योंकि हमारी इन्द्रियां बाहर की ओर जाती हैं। कान बाहर की बात सुनता है, आंख बाहर को देखती है, नाक भी बाहर को सूंघता है, जीभ बाहर का रस चखती है और त्वचा का स्पर्श भी बाहर का होता है। सारी इन्द्रियों की गति बाहर की ओर है, दूसरी दिशा में है। अपनी ओर नहीं है। कान अपने आपको नहीं सुन पाता, आंख अपने आपको नहीं देख पाती, नाक अपनी कोई गंध नहीं ले पाता, जिह्वा भी अपना रस नहीं चख पाती और त्वचा भी अपने आपको छू नहीं पाती। दूसरे को पता लगता है कि यह ठंडा है या गर्म। कोई चीज आई, हाथ बताएगा कि ठंडा है या गर्म? अपने आप पता नहीं लगता।

पहचान का साधन

योग के आचार्यों ने एक विधि बतलाई अपनी पहचान की। महर्षि पतंजलि ने एक सुंदर सूत्र लिखा–विषयवती प्रवृत्तिः–यह अपनी पहचान का

साधन है। जो आंख बाहर की ओर जाती है, उस आंख को बंद कर लो। उसकी ऊर्जा को भीतर ले जाओ, एक पहचान का रास्ता बनेगा। तुम अपने आपको पहचान सकोगे कि मैं कौन हूं? कान बाहर की बात को सुनता है, कान को बंद कर लो। अपने भीतर की ध्वनि सुनने का प्रयत्न करो। हमारे बहुत सारे योगी कान को बंद कर लेते हैं, फिर भीतर की आवाज सुनाई देने लगती। भीतर की आवाज इतनी मधुर होती है कि सामान्य आदमी उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। अपने आपको सूंघने का प्रयत्न करो यानी नासिका को श्वास के साथ ऐसा जोड़ो कि भीतर की गंध का भी अनुभव होने लगे। जीभ से आप बाहर का स्वाद लेते हैं। बाहर से कुछ भी नहीं खाएं और एक कल्पना के द्वारा, संकल्प के द्वारा, धारणा के द्वारा ऐसा अनुभव करें तो आपको भीतर का स्वाद भी आने लग जाएगा और त्वचा का भी अलौकिक स्पर्श होगा।

प्रतिसंलीनता

अपनी पहचान का उपाय प्राप्त होता है योग में, ध्यान मार्ग में। इन्द्रियों का विषय प्रचार बंद करो। इसे पतंजलि की भाषा में प्रत्याहार और जैन साधना की भाषा में प्रतिसंलीनता कहते हैं। यह प्रतिसंलीनता अपनी पहचान का रास्ता है, इन्द्रियों का संयम कर लो।

दो अवस्थाएं होती हैं–एक आवेश की अवस्था और एक अनावेश की अवस्था। आदमी आवेश की अवस्था में रहता है, कभी क्रोध का आवेश, कभी अहंकार का आवेश, कभी माया का आवेश और कभी लोभ का आवेश और कभी भय का आवेश। आवेश की अवस्था में आदमी अपने आपको पहचान नहीं सकता। उस समय तो पहचान दूसरे की होती है, स्वयं की नहीं होती। जहां अनावेश है, कोई आवेश नहीं, शांत अवस्था है, वहां अपनी पहचान हो सकती है। कोई बाहर की समस्या भी नहीं, कोई परिस्थिति भी नहीं, वहां आदमी अपने आपको पहचान सकता है। जहां बाहर की जटिलता है, परिस्थिति है, वहां अपनी पहचान भी आदमी भूल जाता है। दूसरी बातें सामने आ जाती हैं।

पहचान कैसे होगी?

अपनी पहचान के लिए आदमी को स्वस्थ वातावरण की जरूरत रहती है। स्वस्थ वातावरण और स्वस्थ परिस्थिति में आदमी को अवसर मिलता है अपने आपको पहचानने का। जिन आदमियों को खाने को पूरी रोटी नहीं

मिलती, उनका सारा समय रोटी जुटाने में लग जाता है। जैसे गायें या पशु सुबह निकलते हैं और शाम तक केवल आहार चर्या में लगे रहते हैं। मुंह भी बड़ा और पेट भी बड़ा। उन्हें खाने को ज्यादा चाहिए। दिनभर चरते जाओ, तब जाकर थोड़ी पूर्ति या आधी पूर्ति होती होगी। ऐसे ही जो गरीब लोग हैं, जिनको खाने को नहीं मिलता, अभाव का जीवन जीते हैं, सुबह-शाम की चिंता रहती है, वे अपनी पहचान क्या करेंगे? कैसे करेंगे? उन्हें समय ही नहीं मिलता अपनी पहचान का। उन्हें तो सिर्फ रोटी की पहचान का समय मिलता है। साहित्य में काव्य की भाषा में किसी को पूछें–स्त्री का मुख कैसा? वह कहेगा चंद्रमा जैसा। एक रोटी के अभाव से ग्रस्त आदमी से पूछें–स्त्री का मुख कैसा? वह कहेगा–रोटी जैसा। वह रोटी की उपमा ही लगाएगा। उसको तो चारों तरफ रोटी दिखाई देती है। जिस व्यक्ति को रोटी की सुविधा नहीं होती, अपनी पहचान कैसे हो सकती है?

पहचान की दो शर्तें

अपनी पहचान के लिए दो शर्तों की जरूरत है–भीतर की चेतना का जागरण और बाहर की परिस्थिति की अनुकूलता। विषम परिस्थिति में, जटिल परिस्थिति में आदमी अपनी पहचान नहीं कर पाता। उसको अवकाश भी नहीं मिलता। मन में एक भावना जागे कि मुझे अपने आपको जानना है, फिर अनुकूल वातावरण मिले। वातावरण के बिना स्व की पहचान नहीं हो सकती। जिस व्यक्ति की चेतना जाग जाती है, उसे एक प्रेरणा मिलती है। एक आदमी बहुत बातें करने वाला था। वह एक सज्जन व्यक्ति के पास गया। वह सज्जन ही नहीं अच्छा साधक भी था। उसके सामने जाकर दूसरों की चर्चा करना शुरू कर दिया। आदमी दूसरे की बात में ज्यादा रस लेता है। कुछ लोग तो दिन भर दूसरों की बात करते रहते हैं। उस व्यक्ति ने कहा–अरे भैया! ऐसा क्यों करते हो? दूसरों की चर्चा रहने दो। अपने को पहचानो। अपनी चर्चा करो।

प्रयत्न करें पहचान का

अपने आपको पहचानने का प्रयत्न करो कि मैं कौन हूं और मैं कैसा हूं? अध्यात्म के जितने महापुरुष हुए हैं सबने यही बताया। भगवान महावीर का आचारशास्त्र यहीं से शुरू होता है। कोऽहम्–मैं कौन हूं? मैं कहां से आया हूं? यहीं से आध्यात्मिक यात्रा शुरू होती है। अपने बारे में जरा सोचो। तुम

स्वयं को पहचानो। दूसरों की चर्चा को छोड़ो। अपना समाधान खोजो। स्वयं की उलझन है, तो समाधान कहां से मिलेगा? किसी व्यक्ति के मन में उलझन है और वह जगह-जगह घूमता है। उलझन को सुलझाने वाला कोई भी नहीं मिलेगा। अगर उलझन को सुलझाना चाहते हो, तो अपने भीतर से समाधान खोजो, समाधान मिल जाएगा।

कालूगणी के सामने कोई भी समस्या आती, व्यवहार की नहीं शास्त्रीय समस्या भी आती, बात समझ में नहीं आती तो उस उलझन को कैसे मिटाए? स्वयं आचार्य थे और सब शिष्य थे। अपनी उलझन को, अपनी समस्या को लेकर सो जाते, चिंतन करके सो जाते। सुबह कालूगणी कहते–उलझन मिट गई, समाधान मिल गया। अब कोई कहते मघवागणी आकर समाधान देते हैं। कोई कुछ कहते। मैं तो यह कहना ज्यादा पसंद करूंगा कि अपनी उलझन है, समाधान भी अपना है। व्यक्ति में बहुत क्षमता है और वह उलझन को अगर ठीक सुलझाना चाहे और उसी बात को लेकर इस संकल्प के साथ सोए कि मेरी उलझन को मुझे सुलझाना है। संभव है रात को सपने में या सुबह आपको लगेगा कि मेरी उलझन समाप्त हो गई, मुझे समाधान मिल गया। हम अपने आपको समझने का प्रयत्न करें।

हमारे सामने दो शब्द हैं–एक स्व और एक पर। मैं और दूसरा–दो शब्द हैं। हमारा ध्यान जितना दूसरे पर जाता है, उतना स्वयं पर नहीं जाता, अपने आप पर नहीं जाता। इसका कारण है, हमारे भीतर निष्ठा का अभाव। अणुव्रत ने संदेश दिया–'प्रमाणिकता की निष्ठा पैदा करो, ईमानदारी के प्रति निष्ठा पैदा करो।' सचाई के प्रति निष्ठा नहीं है। हमें सब जगह यही लगता है। बुरा काम किसने किया? अमुक व्यक्ति ने कर दिया।

हमारे पास समस्या को लेकर बहुत लोग आते हैं। वे कहते हैं–उसने मेरा काम बिगाड़ दिया, उसने मेरी दुकान को बंद कर दिया आदि। हम कहते हैं–पहले यह देखो, बीमारी किसी प्रेत आत्मा ने पैदा की है या तुम्हारे शरीर की ही बीमारी है? बीमारी को केवल दूसरों पर आरोपित मत करो कि दूसरों ने कर दिया। अपनी बात पर विचार करो कि मेरे भीतर क्या-क्या हो रहा है और क्या घटित हो रहा है? इस पर भी जरा ध्यान दो। अगर इस पर ध्यान जाएगा तो समाधान जल्दी मिलेगा।

हम दूसरों पर ध्यान देंगे तो अटके रहेंगे, भटकते रहेंगे। हम अपने पर ध्यान दें और खोजें। खोजना बड़ा कठिन काम है। कहा जाता है कि यूनान के दार्शनिक के सामने प्रश्न आया था कि सबसे कठिन काम क्या है? उसका उत्तर था–अपने आपको पहचानना। अपनी पहचान करना सबसे कठिन काम है।

अपनी पहचान का बाधक तत्त्व

जिस व्यक्ति में अध्यात्म की चेतना नहीं जागती, जिस व्यक्ति में नैतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा पैदा नहीं होती, वह अपने आपको कभी नहीं पहचान सकता। इतने आवरण हैं, इतने ढक्कन हैं, इतने पर्दे हैं कि हम वहां तक जा ही नहीं सकते। आवेश का पर्दा बड़ा जटिल होता है। आवेश दो प्रकार का होता है– एक उन्माद का आवेश और एक यक्षावेश। यक्ष का आवेश–जैसे किसी व्यक्ति में कोई भूत आ जाता है, प्रेत आता है या कोई देवता आता है, उस समय उसका सारा व्यवहार बदल जाता है। उन्माद का और पागलपन का आवेश भी होता है।

आदमी आवेश में ज्यादा रहता है। अगर हम अनावेश की साधना करें तो अपनी पहचान सरल भी बन सकती है। चौबीस घंटे के समय में आप जब जागें तब से लेकर फिर सोएं तब तक का एक लेखा-जोखा रखें।

एक दुकानदार दुकान का लेखा-जोखा करता है। कितनी आय हुई और कितना व्यय हुआ? एक घर का मालिक भी घर के आय-व्यय का लेखा-जोखा रखता है कि इस महीने में कितना खर्च हुआ? हम भी चिंतन करें कि क्या हम अपने जीवन का कोई लेखा-जोखा करते हैं? पदार्थ का सब जगह लेखा-जोखा होता है, पर चेतना का कोई लेखा-जोखा नहीं करते। क्या कभी हम जीवन का लेखा-जोखा करते हैं? कितनी आय हुई है और कितना व्यय हुआ है?

आय और व्यय का सिद्धांत हर जगह लागू होता है। अगर हमने ज्ञानाराधना की है, कुछ नया सीखा है तो एक आय हुई है और प्रमाद किया है, आलस्य किया है, कुछ सीखा नहीं तो मानना चाहिए कि कुछ खर्च कर दिया, व्यय हो गया। हम अपने चरित्र का नया विकास करते हैं तो मानना चाहिए कि आय हो रही है और चरित्र को विकृत करते हैं तो मानना चाहिए कि व्यय हो रहा है।

हम अपने जीवन का लेखा-जोखा करें। दुकान पर बैठनेवाला लेखा-जोखा करता है और सब लोग उसके भरोसे रहते हैं, किंतु यह एक ऐसा कार्य

है, जो किसी दूसरे को नहीं स्वयं को करना है। हर व्यक्ति को करना है। यह हमारी व्यक्तिगत बात है। दूसरे का लेखा-जोखा काम नहीं आता। पिता जीवन का लेखा-जोखा करे तो वह पुत्र के काम नहीं आता। पुत्र करे तो पिता के काम नहीं आता। पिता को भी अपना लेखा-जोखा करना है और पुत्र को भी करना है। दोनों को करना है, क्योंकि यह व्यक्तिगत है। पिता ने भोजन किया तो क्या पुत्र का पेट भर जाएगा और पुत्र ने किया तो क्या पिता का पेट भर जाएगा? भूख जैसे व्यक्तिगत होती है वैसे ही जीवन का संबंध भी व्यक्तिगत होता है।

हम अपना लेखा-जोखा करें। मुझे एक दिन में गुस्सा कितनी बार आता है? अपनी डायरी में नोट करें। एक वर्ष बाद डायरी को पूरा देख लें। लेखा-जोखा कर लें। पहले दिन कितनी बार किया और दूसरे दिन कितनी बार किया? पूरे वर्ष भर में मैंने कितनी बार गुस्सा किया? उत्तराध्ययन सूत्र का एक संकेत मिल रहा है–अभिक्खणं कोही भवई। यह मनुष्य की प्रकृति है कि वह बार-बार क्रोधी बनता है। बार-बार का अर्थ एक तो यह होता है कि महीने में दो-चार बार, दस बार क्रोधी बनता है और दूसरा यह होता है कि दिन में कई बार क्रोधी बनता है। दिन में कितनी बार आवेश आता है। यह आवेश बाहर से हमें दिखाई देता है।

हमारे भीतर भी आवेश है। भीतर कौन-सा इमोशन काम कर रहा है? कौन-सा आवेश काम कर रहा है? उसको हम जानें। आवेश बचपन से ही शुरू हो जाता है और कभी-कभी तो गर्भस्थ बच्चे में भी आवेश शुरू हो जाता है। आवेश की अवस्था में हम अपने आपको पहचान नहीं सकते।

आवरण, विक्षेप और मल

पानी में मुंह दिखाई देता है, किंतु जब समुद्र में तूफान आता है, जब उत्ताल तरंगे उछलती हैं, उस समय आप मुंह देखना चाहें, कभी भी दिखाई नहीं देगा। वेदांत में तीन बातें बतलाई गई हैं–विक्षेप, आवरण और मलिनता। उदाहरण दिया गया, जैसे–कांच है। आप कांच में अपना मुंह देख सकते हैं, पर कांच को हिलाते जाओ, मुंह दिखाई नहीं देगा। कांच अंधा हो गया, मल आ गया तो कांच में मुंह दिखाई नहीं देगा और कांच पर पर्दा डाल दिया तो भी मुंह दिखाई नहीं देगा। विक्षेप, आवरण और मल–इन तीनों अवस्थाओं में कांच में मुंह नहीं देख सकते।

हर मनुष्य के व्यक्तित्व में ये तीनों बातें होती हैं–आवरण भी होता है, मल भी होता है और विक्षेप भी होता है। अगर अपनी पहचान करना चाहें तो हमें आवरण को भी हटाना होगा। चंचलता को भी समाप्त करना होगा। मल को भी साफ करना होगा। आवेश स्वयं एक मल है।

कषाय को उपशांत करो

अपनी पहचान के लिए मन की चंचलता को भी कम करना होगा। हम स्थिर रहकर ही अपने आपको देख सकते हैं। अपनी पहचान कौन कर सकता है? द्वेष की तरंगों से जिसका मन चंचल नहीं होता, वह व्यक्ति अपने आपको पहचान सकता है, अपनी आत्मा को देख सकता है, दूसरा कोई नहीं देख सकता। हम यदि अपनी पहचान करना चाहें तो राग और द्वेष को उपशांत करने का प्रयत्न करें, कषाय को उपशांत करने का प्रयत्न करें, आवरण को हटाने का प्रयत्न करें और मन की चंचलता को कम करने का प्रयत्न करें तो एक क्षण ऐसा आ सकता है कि हम बड़े सात्विक उल्लास के साथ कह सकते हैं कि अब मुझे अपनी पहचान हो गई। मैं कौन हूं–इसका मुझे पता लग गया। मैं क्या हूं? इसका मुझे पता लग गया। अब मैं स्वयं अपनी पहचान कर रहा हूं। मुझे और किसी की जरूरत नहीं है।

14. रास्ता अपने भीतर जाने का

जगत का नियम है गति और विज्ञान का भी नियम है गति। गति के आधार पर बहुत सारा निर्णय होता है। गतिशीलता यानी चलना और चलने के साथ जुड़ा हुआ है मार्ग। मार्ग हो और गति हो, तब चलना महत्त्वपूर्ण होता है। पहले एक रास्ता चुनें। कौन-सी सड़कें कहां जाती हैं? इसका ज्ञान होना चाहिए और फिर गति, चाहे पैरों की हो या कार की हो या ट्रेन की हो, गति होनी जरूरी है। रास्ता और गति दोनों हो तो जहां जाना है, वहां आदमी पहुंच जाता है। जहां जाना है न तो उसका पता है, न रास्ते का पता है और न पैरों में गति है तो व्यक्ति लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकता। जानता हुआ भी नहीं पहुंच पाता, इसलिए रास्ते को जानने वाले का बहुत बड़ा महत्त्व होता है। शायद सामान्य लोगों को इतना अनुभव नहीं होता। सड़क पर वाहनों से जो चलते हैं, उनको भी इतना अनुभव नहीं होता। आज से चालीस-पचास वर्ष पहले जब हम विहार करते थे, उस समय रास्ता जानने वाले का महत्त्व समझ में आता था। यदि वह साथ में नहीं होता तो कहीं भी जंगल में भटक जाते।

मार्गज्ञ का मूल्य

विक्रम संवत् 2013 की बात है। पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी राजलदेसर विराज रहे थे, सरदारशहर चतुर्मास करना था। मैं कुछ युवकों की तत्त्वज्ञान की कक्षा लेता था। गुरुदेव को चुरू होकर सरदारशहर जाना था। गुलाबचन्द चंडालिया, रायचन्द कुंडलिया आदि बीस-तीस युवकों ने गुरुदेव से प्रार्थना की–मुनि नथमल जी को आप राजलदेसर रख दें। हमारी कक्षा थोड़े दिन चलती रहेगी। आपको चुरू जाना है और ये सीधे रास्ते से चुरू आ जाएंगे।

गुरुदेव ने मुझे कुछ दिनों के लिए राजलदेसर रख दिया और कहा–तुम सीधे आ जाओ, हम थोड़ा घुमाव लेकर जाते हैं। गुरुदेव पधार गए। हमने

विहार किया, युवकों की टोली साथ में थी, लेकिन रास्ता जानने वाला कोई नहीं था। कोई पुराना आदमी नहीं था। हमारे साथ जो युवक थे, वे रास्ता नहीं जानते थे। आषाढ़ का महीना, गर्मी का मौसम। रेतीले टीलों का रास्ता। सड़क थी नहीं। एक गांव आया और हम सब रास्ता भटक गए। कोई किधर गया और कोई किधर गया। धोरों में चक्कर काटते रहे। कोई रास्ता बताने वाला नहीं था। उस समय पता चला कि मार्ग को जानने वाले का कितना मूल्य है? आज किसी से पूछा जाए–भाई! रास्ता जानने वाले का कितना महत्त्व है? शायद उसके लिए कोई मूल्य नहीं है। सड़कों पर लिखा हुआ रहता है–इधर जाओ, उधर जाओ। प्रायः स्थानों पर बोर्ड लगा हुआ मिल जाता है। उस दिन हम सब मार्ग से भटक गए, धूप गहरी चढ़ गई टीले ही टीले थे, एक पर चढ़ो और एक से उतरो।

उस दिन हम लगभग ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे गोलसर पहुंचे। धूप बहुत अधिक तेज हो गई। हमारे साथ वाले युवक कुछ पीछे रह गए। उधर से सरदारशहर के लोग आ गए। आकर पूछने लगे कि संत कहां हैं? क्या साथ में कोई है? हमने बताया–अभी तो टीलों की परिक्रमा कर रहे हैं। आखिर बारह बजे के बाद सब इधर-उधर घूम-घूम कर इकट्ठे हुए। उस स्थिति में हमसे पूछा जाता कि रास्ता जानने वाले का मूल्य कितना है? उस समय हम उसके मूल्य को बता सकते थे। अब क्या बताएं? मूल्य का पता ही नहीं चलता। रास्ता जानने वाले के मूल्य को हमें समझना होगा।

दुर्लभ है मार्ग का मिलना

संसार भी एक चक्कर है। कोई व्यक्ति यह पूछे कि मोक्ष का मार्ग जानने वाले का मूल्य कितना है? हर आदमी नहीं समझेगा, पर कोई जब संसार के दुःखों से पीड़ित हो रहा है, संसार के ताप से तप्त हो रहा है और उस समय पूछा जाए कि मोक्ष का मार्ग जानने वाले का मूल्य क्या है? वह कहेगा–दुनिया में उसी का मूल्य है। बहुत लोग आते हैं और कहते हैं–हमारे बच्चे हैं, उनकी धर्म करने में रुचि नहीं है।

हमने कहा–अभी रुचि नहीं होगी। समय आने पर होगी। जब थोड़ी कठिनाइयां आएंगी, तब सोचना पड़ेगा कि रास्ता कोई दूसरा भी होना चाहिए। एक बार सेना के एक कर्नल आए थे। उनकी ड्यूटी असम में थी, बड़े अफसर

थे। वहां समणी प्रतिभाप्रज्ञा गई थी। उसने प्रेक्षाध्यान का प्रयोग किया और जवानों को भी कराया। कई दिनों तक वह प्रयोग चला। उनके मन में जिज्ञासा पैदा हो गई कि इस प्रयोग को प्रारंभ किसने किया है? यह बहुत अच्छा प्रयोग है। जब से हमने प्रेक्षाध्यान का प्रयोग शुरू किया, हमने शराब छोड़ दी, मांस खाना छोड़ दिया। अच्छा काम चल रहा है। समणी प्रतिभाप्रज्ञा ने बताया– दिल्ली जाओ तो वहां अध्यात्म साधना केन्द्र में गुरुजी का दर्शन करना और वहां सारी जानकारी कर सकते हो। कुछ दिनों बाद वे दर्शन करने आए। जब मार्ग मिलता है, तब आदमी को लगता है कि कितना अच्छा है। सबसे बड़ी कठिन बात है मार्ग का मिलना। सचमुच वह अत्यधिक दुर्लभ है।

मार्ग के प्रकार

मार्ग चार प्रकार के होते हैं। एक रास्ता प्रारंभ में सरल होता है और अंत तक सरल रहता है। सीधा चले जाओ। जहां से चले, वहां भी सीधा और जहां पहुंचना है, वहां तक भी सीधा मार्ग है। बीच में कहीं भी टेढ़ा नहीं होता, घुमाव नहीं होता, मोड़ नहीं होता।

एक मार्ग ऋजु है और वक्र भी है। प्रारंभ में मार्ग बहुत सीधा था, आगे जाकर टेढ़ा-मेढ़ा हो गया। एक आदमी चक्कर में पड़ जाता है। घुमाव आते हैं, वहां समस्या होती है। चलते-चलते अनेक बार हमारे सामने भी यह समस्या आती है। जहां रास्ते दो आ गए, तीन आ गए, सोचना पड़ता है कि अब किधर जाना है? टेढ़ा रास्ता आ गया, वहां भी समस्या होती है। अध्यात्म साधना केन्द्र में आना है।

कह दिया–महरौली चले जाओ। एक भाई महाराष्ट्र से आया था। पूछा नहीं, इतना ही बताया गया कि महरौली चले जाओ। अब महरौली में घंटों तक चक्कर लगाते रहे। सीधा रास्ता नहीं पूछा। महरौली का रास्ता टेढ़ा हो गया। घूमते रहे, फिर शाम को तीन बजे पहुंचे। पांच-सात हजार रुपये खर्च कर दिए। रास्ता ऋजु होना चाहिए। वक्र हो तो समस्या पैदा होती है।

एक रास्ता होता है, जो वक्र है, पर आगे जाकर एकदम सीधा हो जाता है। एक रास्ता वह होता है जो प्रारंभ में भी वक्र होता है और आगे भी वक्र ही रहता है। अब क्या करें? मार्ग बहुत हैं। अब चुनाव कैसे करें कि मुझे किस रास्ते से जाना है?

कहीं भी जाना है तो आदमी को चुनाव करना होता है कि सीधा कौन-सा पड़ेगा? आजकल सीधे का मतलब कितना किलोमीटर नहीं है। सीधे से तात्पर्य है कि भीड़ कितनी कम है? कोई स्ट्रेट रोड मिल जाए तो आदमी सीधा चला जाए।

मार्ग अनेक हैं, आदमी कहां जाए? जो प्रारंभ में भी सीधा और अंत तक सीधा हो, ऐसा कौन-सा रास्ता है? प्रारंभ में तो अच्छा है, आगे जाकर पगडंडिया आ गईं। गांवों का रास्ता प्रारंभ में तो ठीक होता है और आगे जाकर पगडंडियां आ जाती हैं। यह पता लगाना बड़ा मुश्किल होता है कि रास्ता कहां जा रहा है?

आचार्य भिक्षु ने कहा–ऐसा रास्ता, जो मंजिल तक नहीं पहुंचाए, अच्छा नहीं होता, इसलिए मार्ग का चुनाव करना बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

शांत सुधारस में आचार्य विनयविजयजी ने कहा है–

नानामतरुचिगहने भुवने निश्चिनु शुद्धपथं नायम्।

नाना मत हैं, नाना रास्ते हैं। अब तुम्हें चुनाव करना है कि किस रास्ते से जाना है? अहम प्रश्न है कि कहां जाना है? किस रास्ते से जाना है? रास्ता बताने वाले का भी चुनाव करना है कि पथदर्शक कौन होगा? ये तीन प्रश्न हमारी सफलता के लिए बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। बहुत बार बच्चे आते हैं। मैं पूछता हूं–कहां से आए हो? बहुत बच्चे कहते हैं, अपने घर से आए हैं। यह बहुत अच्छा उत्तर है। हमें जाना कहां है? अपना घर है, वहां जाना है। एक प्रश्न का उत्तर हो गया, हमें अपने घर में जाना है। जो अपने घर को छोड़कर आते हैं, उन्हें वापस जाना पड़ता है।

कारगिल से पाक सेना की वापसी शुरू हो गई। वापसी क्यों हुई? अपना घर नहीं था। जबरदस्ती घुस आए थे तो वापस जाना पड़ा। अगर अपना घर होता तो वापस जाने की जरूरत नहीं होती। अपने घर में जाना, जहां से कोई निकाल न सके। अपने घर में जाने पर घुसपैठ नहीं होती। जब आदमी भटकाव में चला जाता है तब घुसपैठ करता है। दूसरे पर अधिकार जमाना चाहता है। दूसरे पर अधिकार जमाने की भावना और दूसरे के स्वत्व को हड़पने की भावना मानव की दुर्बलता है और वही संकट पैदा करती है, समस्या पैदा करती है।

अपना घर क्या है?

जो अपने घर में जाता है, उसके सामने कोई संकट पैदा नहीं करता। कोई रास्ता नहीं रोकता। अपना घर क्या है? एक शब्द है मोक्ष। मैं मोक्ष की बात छोड़ दूं। अपना घर है–अपनी आत्मा। बस वहां जाना है, अपनी आत्मा में जाना है। शांत सुधारस में ठीक कहा गया है–विनय! निभालय निजभवनम्।

अपने घर को देखो। जो अपना घर है, उसे तो याद ही नहीं करता और जो अपना नहीं है, उसे अपना घर मान रहा है। यह ईंटों का, पत्थर का, सीमेंट का, चुने का बना हुआ है, उसको व्यक्ति अपना घर मान रहा है और जो अपना असली घर है, उसको पहचान ही नहीं रहा है। अपने घर को पहचानो, उसको देखो। अपना घर वह है, जो सुरक्षा देता है, वह घर है, अपनी आत्मा। हम प्रतिदिन संकल्प करें कि मुझे अपने घर में रहना है।

हजारों दुःखों को समाहित करने का, दुःखों से छुटकारा पाने का रास्ता है अपना घर। अपने घर में आ जाओ। एक दिन मेरे पास एक पति-पत्नी आए। मैंने पूछा–साधना कैसी रही? बोले–बहुत आनंद आया, उसे शब्दों से कह नहीं सकता। आनंद कहां से आया? अपने घर में गया तब तो आनंद आया। अन्यथा आनंद भी नहीं आता। कभी-कभी लड़ने में भी रस आता है, पर बाद में पश्चात्ताप होता है कि देखो मैंने भूल कर दी। लड़ाई नहीं करता तो अच्छा था। बुरी जबान नहीं बोलता तो अच्छा था। गाली नहीं देता तो अच्छा था। खाते समय अच्छा लगता है, परिणाम में बुरा हो जाता है। काम करते समय अच्छा लगता है, बाद में बुरा हो जाता है, किंतु अपने घर में चले जाओ, आनंद ही आनंद है। न पश्चात्ताप की जरूरत है और न बाद में कोई कष्ट पाने की जरूरत।

मार्ग घर में जाने का

सबसे पहला प्रश्न है–हमें कहां जाना है? अपने घर में जाना है यानी अपनी आत्मा में जाना है। अपने घर में जाने का मार्ग कौन-सा है? उसका मार्ग है इन्द्रियों पर विजय पा लेना। जो व्यक्ति अपनी आंख पर, अपने कान पर, अपने नाक पर, अपनी जीभ पर और अपनी त्वचा पर विजय पा लेता है, उनके वशीभूत नहीं होता, उनको अपने अधीन कर लेता है, वह अपने घर में जाने का सीधा रास्ता प्राप्त कर लेता है।

अपने घर में जाना है तो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करो, इन्द्रियों को जीतो। आज इन्द्रियों की लोलुपता बढ़ रही है। इन्द्रियों पर विजय कैसे होगी? आंख की लोलुपता बढ़ी है, कान की भी लोलुपता बहुत बढ़ी है। सब इन्द्रियों की लोलुपता बढ़ी है। आज का युग इन्द्रिय लोलुपता को बढ़ावा देने वाला युग हो गया। अब अपने घर में कैसे पहुंचे? रास्ता ही ठीक नहीं है।

आत्मा तक पहुंचने का रास्ता है धर्म। कौन-सा धर्म? इन्द्रिय विजय और संयम का सिद्धांत देने वाला धर्म और संयम सिखाने वाला धर्म। इन्द्रिय का संयम करो। आंख का संयम, कान का संयम, जीभ का संयम करो।

यह संयम का पाठ पढ़ाने वाला धर्म ही हो सकता है। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि जब कुछ विदेशी विद्वानों के लेखों में यह बात पढ़ी कि जब तक संयम नहीं आएगा, पाश्चात्य संस्कृति दुःख देने वाली रह जाएगी। उन लोगों के स्वर में संयम का नाम आ रहा है। आखिर सचाई यही है। इसे कोई झुठला नहीं सकता। अपने घर में जाने का रास्ता है संयम। अपना घर अपनी आत्मा है, यह पहले प्रश्न का उत्तर है। वहां जाने का रास्ता है संयम। यह दूसरे प्रश्न का उत्तर है।

आपदां कथितः पन्था, इन्द्रियाणामसंयमः।
तज्जयः सम्पदां मार्गो, येनेष्टं तेन गम्यताम्॥

आपत्ति का हेतु है इन्द्रियों का असंयम और संपत्ति का हेतु है इन्द्रियों का संयम। दोनों रास्ते बता दिए, अब जिससे चाहो उससे जाना शुरू कर दो। व्यक्ति स्वयं निर्णय करे कि किस रास्ते से मुझे जाना है?

संयम एक बहुत बड़ा शब्द है। संयम ही दुःख से छुटकारा पाने का, समस्याओं से छुटकारा पाने का, तनाव से छुटकारा पाने का और मानसिक शांति पाने का एकमात्र रास्ता है। जैसे-जैसे ममत्व का विसर्जन होगा, संयम सधता चला जाएगा। जब तक ममत्व का विसर्जन नहीं होगा, संयम नहीं होगा।

कौन बताने वाला है मार्ग?

तीसरा प्रश्न है मार्ग बताने वाला कौन है? मार्ग बताने वाला होगा संयमी, जिसने संयम की साधना की है, जिसने संयम का अनुभव किया है और जिसने संयम का रस चखा है, जिसका संयम सध गया है, वही व्यक्ति पथदर्शक होगा।

आचार्य तुलसी जैसे शक्तिसंपन्न आचार्य पथदर्शक बन सकते हैं, इसलिए बन सकते हैं कि उनमें संयम सधा हुआ है।

तीनों प्रश्नों पर पुनः ध्यान दें–

आपका अपना घर कौन-सा है?

अपनी आत्मा।

अपने घर में जाने का रास्ता कौन-सा है? कौन-सी सड़क है?

एक ही सड़क है, सीधी सपाट, किधर से ही चले जाओ, वहां पहुंच जाओगे और वह सड़क है संयम। अपने घर में जाने का रास्ता है संयम।

संयम के रास्ते को बताने वाला कौन है?

वह सिद्ध पुरुष, जिसका संयम सिद्ध हो गया है।

अपने घर का ज्ञान हो, अपने उस घर पर पहुंचने वाले रास्ते का ज्ञान हो और उस रास्ते को बताने वाले मार्गदर्शक का भी पता लग जाए। इन तीनों प्रश्नों पर बार-बार हम चिंतन करें। इन तीनों प्रश्नों की खोज करें और तीनों का समाधान प्राप्त करें।

हमारा विश्वास है कि इस खोज में लगने वाला व्यक्ति अनेक कठिनाइयों, समस्याओं, विघ्न-बाधाओं से छुटकारा पाकर अब्याबाध सुख की स्थिति में जा सकता है।

15. ध्यान : साक्षात्कार की प्रक्रिया

प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर जाना ध्यान है। ध्यान में भी प्रवृत्ति है, पर उसका ध्येय है निवृत्ति की ओर जाना, निष्क्रियता की ओर जाना, क्रिया को कम कर देना। एक द्वंद्व-सा लग रहा है। एक ओर जीवन यात्रा के लिए जरूरी है प्रवृत्ति और सक्रियता का विकास और दूसरी ओर ध्यान का उद्देश्य है निवृत्ति की ओर प्रस्थान।

योग के आचार्यों ने इस द्वंद्व को समाहित करने का प्रयत्न किया है। उनका कहना है कि यह द्वंद्व नहीं है, हमारी विकास की यात्रा है। हम प्रवृत्ति को ही विकास का साधन मानते हैं। यह बात कुछ सीमा तक ठीक है, पूर्ण सत्य नहीं है। प्रवृत्ति सापेक्ष सत्य है और निवृत्ति असीम सत्य है। उसकी कोई सीमा नहीं है।

एकाग्रता का महत्त्व

हर आदमी अपने काम में सफल होना चाहता है। सफलता का महत्त्वपूर्ण कारक तत्त्व है एकाग्रता। एक विषय पर एकाग्र होने से सफलता मिलती है। एक शिकारी भी एकाग्र होता है, तभी सफल होता है। अर्जुन की एकाग्रता थी, तभी वह राधावेध को साध पाया। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहां एकाग्रता के कारण काम सिद्ध हो गया।

स्थूल जगत और प्रवृत्ति के जगत में एकाग्रता का बहुत बड़ा महत्त्व है। एकाग्रता कैसी होनी चाहिए? इसका विवेक करना जरूरी है। एकाग्रता को विभज्यवादी दृष्टिकोण से देखना होगा। एकाग्रता अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की होती है। एकाग्रता का निर्धारण ध्येय पर निर्भर है। यदि ध्येय अच्छा है तो एकाग्रता अच्छी है, ध्यान भी अच्छा है। यदि ध्येय गलत है तो एकाग्रता भी प्रशस्त नहीं होती।

एकाग्रता अप्रशस्त भी होती है। एक चोर बार-बार दुकान के आगे घूम रहा था। कभी कुछ देख रहा था, कभी कुछ। कभी एक चीज मंगवाता, कभी दूसरी। इस प्रकार आधा घंटा बीत गया। दुकानदार परेशान होकर बोला–तुम क्या कर रहे हो? तुम क्या खरीदना चाहते हो? चोर बोला–मैं कुछ नहीं चाहता, केवल मौका चाहता हूं। वह एकाग्र था कि कब मौका मिले और कब चीजों की सफाया कर दूं। एकाग्रता तो है, पर ध्येय अच्छा नहीं है।

ध्येय की स्पष्टता

ध्यान करने वाले का स्पष्ट चिंतन होना चाहिए कि मैं ध्यान क्यों कर रहा हूं? मैं क्या पाना चाहता हूं? मेरा ध्येय क्या है? फिर उस पर एकाग्र हो जाना, सविचार ध्यान है। स्थूल जगत का ध्यान विचार का ध्यान है। स्थूल जगत में विचार को बहुत महत्त्व दिया गया है। चिंतनशील और विचारक व्यक्ति को समाज बहुत महत्त्व देता है, पर हमें हर बात की सीमा को समझना चाहिए। विचार का मूल्य वहीं तक है, जहां तक हम स्थूल जगत की यात्रा कर रहे हैं। जब सूक्ष्म जगत की यात्रा शुरू होगी, वहां विचार का महत्त्व सर्वथा समाप्त हो जाएगा। वहां विचार की कोई जरूरत नहीं है।

विचार एक तरंग है, तरंग उठती रहती है। दो तरह के समुद्र होते हैं–शांत समुद्र और तूफानी समुद्र। शांत समुद्र सबके लिए अच्छा है। तूफानी समुद्र से नौकाओं, जहाजों तथा समुद्री तट पर रहने वाले लोगों को खतरा रहता है। वैसे ही विचार भी एक तूफान है, पर स्थूल जगत में इसका बहुत बड़ा मूल्य है। एक ध्येय या विचार को लेकर चिंतन करना विचार ध्यान है तथा एकाग्रता उसका फल है।

क्षमता का विकास

जैसे-जैसे आदमी में एकाग्रता का विकास होता है, वैसे-वैसे क्षमता का विकास होता है। काम करने की शक्ति बढ़ जाती है। एक बार का प्रसंग है। जैन विश्व भारती, तुलसी अध्यात्म नीडम् में प्रेक्षाध्यान का शिविर था। शिविर समापन के दिन मैंने हर व्यक्ति को कम से कम पौन घंटा ध्यान का संकल्प लेने के लिए कहा, जिससे ध्यान का अच्छा अभ्यास हो जाए।

एक व्यक्ति मेरे पास आकर बोला–मेरे लिए तो पौन घंटे का समय बहुत मुश्किल है, क्योंकि मैं बहुत व्यस्त हूं। आजकल काम हो या न हो, पर यह

कहने में अच्छा लगता है कि मैं बहुत व्यस्त हूं। मैंने कहा–शिविर में तुमने ध्यान करना सीख लिया है और तुम्हें सफलता भी मिली है। अगर आगे ध्यान नहीं करोगे तो सारा ध्यान व्यर्थ चला जाएगा। उसने चिंतन कर कहा–ठीक है, आप कह रहे हैं, इसलिए कर लूंगा। एक वर्ष बाद प्रेक्षाध्यान के शिविर में पुनः वह व्यक्ति आया। एक दिन वह मेरे पास आकर बोला–मुझे तीन घंटे का ध्यान का प्रयोग बता दीजिए। मैंने कहा–तुम तो पौन घंटे के लिए भी मना कर रहे थे कि मैं बहुत व्यस्त हूं, मुझे समय नहीं मिलता और अब तीन घंटे ध्यान करना चाहते हो। वह बोला–मैंने पौन घंटा ध्यान का अभ्यास किया, उससे मेरी एकाग्रता बढ़ गई, मेरी क्षमता बढ़ गई। जो काम मैं आठ घंटे में करता था, अब वह काम चार घंटे में कर लेता हूं, चार घंटे मैं खाली रहता हूं। मैं चार घंटे में क्या करूं, आप निर्देश दें।

सविचार ध्यान

एकाग्रता के बिना किसी भी काम में जितना समय लगना चाहिए, उसका डबल, ट्रिपल या उससे भी ज्यादा समय लग जाता है। वही काम एकाग्रता के साथ करें तो थोड़े समय में अधिक काम हो जाता है, इसलिए ध्यान और एकाग्रता बहुत बड़ी शक्ति है। स्थूल जगत में इसका बहुत महत्त्व है। जो ध्यान एक विचार या ध्येय के साथ किया जाता है, वह सालंबन ध्यान है, सविचार ध्यान है। यह ध्यान का एक प्रकार है।

निर्विचार ध्यान

ध्यान का दूसरा प्रकार है निर्विचार ध्यान। इस ध्यान से सूक्ष्म जगत की यात्रा की जाती है। जहां न कोई विचार, न कोई कल्पना, न कोई विकल्प, न कोई आलंबन। निरालंब ध्यान में कोई साधन नहीं होता है। इसमें केवल चेतना की अनुभूति रहती है। इस अवस्था में आंतरिक क्षमता का जागरण होता है, सूक्ष्म का जागरण होता है। हम स्थूल जगत में रहते हैं। वहां के नियमों को जानते हैं, सूक्ष्म नियमों को नहीं जानते। जिस दिन सूक्ष्म नियमों को जानना शुरू करते हैं, हमारा सारा कायाकल्प हो जाता है। जो रहस्य हम स्थूल जगत में, स्थूल जगत के नियमों के द्वारा तथा सविचार ध्यान के द्वारा नहीं जान सकते, निर्विचार ध्यान के द्वारा वे रहस्य सामने आ जाते हैं।

बहुत सारे ध्यान साधकों ने बहुत सारी सूक्ष्म शक्तियों का प्रतिपादन किया है। उसका आधार क्या है? उनके सामने न कोई यंत्र था, न प्रयोगशाला थी, फिर कैसे सत्य को उजागर किया? वे निर्विचार ध्यान के द्वारा सूक्ष्म लोक में चले गए। वहां उन्होंने सूक्ष्म नियमों को जान लिया। वनस्पति जीव है। इस सूक्ष्म सत्य को उन लोगों ने कैसे जाना? जिसकी वैज्ञानिक आज भी खोज कर रहे हैं।

अनेक वैज्ञानिकों ने पेड़-पौधों पर रिसर्च किए। कुछ दिनों पहले समाचार पत्र में लिखा था कि एक वैज्ञानिक ने खोज की है कि पौधे भी आपस में बातचीत करते हैं। निकम्मा कोई नहीं रहता। वैज्ञानिकों ने सूक्ष्म उपकरणों के द्वारा ऐसे सूक्ष्म यंत्रों का विकास किया है, जिनके द्वारा वे सूक्ष्म नियमों को पकड़ लेते हैं, किंतु उस समय न सूक्ष्म उपकरण थे, न कोई साधन। उन लोगों ने सूक्ष्म ध्यान के द्वारा सूक्ष्म लोक की यात्रा की और सत्य का प्रतिपादन किया।

ध्यान एक शक्ति

ध्यान साधना का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। ध्यान में ध्येय शुद्ध होना चाहिए, फिर उसकी धारणा, फिर ध्यान तथा ध्यान के बाद समाधि की अवस्था में चले जाएं, जहां सत्य का साक्षात्कार होता है। सत्य के जिज्ञासु व्यक्ति को ध्यान अवश्य करना चाहिए। जिसमें जिज्ञासा है कि सत्य क्या है या अमुक चीज क्या है? पूछना अच्छा है, किंतु पूछने से भी ज्यादा ध्यान करना अच्छा है।

एक कपड़ा है, उस पर भी पांच मिनट एकाग्र होकर, अनिमेष होकर देखो। एक-एक धागा जैसे बोलने लग जाएगा। उसकी सक्रियता का पता लगने लग जाएगा। ध्यान एक बहुत बड़ी शक्ति है। जो जिज्ञासु है, जो सफल होना चाहता है और जिसके मन में आत्मा को जानने की इच्छा है, जो सूक्ष्म सत्यों को जानना चाहता है उस व्यक्ति को अवश्य ध्यान का विकास करना चाहिए।

सत्य को जानो

जब तक व्यक्ति ध्यान नहीं करता, तब तक वह सत्य को केवल मानता है। जब व्यक्ति साधना की दिशा में आगे बढ़ता है, तब उसे लगता है कि मैं मानता ही जा रहा हूं, जानता नहीं हूं। उस समय उसके सामने ध्यान का विकल्प आता है और ध्यान से सत्य का साक्षात्कार होता है।

भगवान महावीर ने कहा–'मैंने खोजा। तुम स्वयं सत्य खोजो।' आखिर कब तक मानते रहोगे ? प्रारंभ में मानना ठीक है, आखिर स्वयं को सत्य खोजने का प्रयत्न करना होगा। जो आदमी स्वयं सत्य नहीं खोजता है, केवल मानने में विश्वास करता है, उसे दूसरे लोग धोखा भी दे सकते हैं।

एक बार एक यात्री गांव में गया, जहां बहुत ठग रहते थे। गांव के दो-चार ठगों ने देखा कि यात्री के पास बहुत सामान है। वे सामान लूटने के लक्ष्य से उसके पास आकर बोले–तुम्हारे पास जो सामान है, वह रख दो। तुम मर गए हो और तुम्हारा अंतिम संस्कार करना है।

यात्री बोला–मैं कैसे मर सकता हूं? मैं स्वयं बोल रहा हूं।

ठग बोले–तुम कुछ भी नहीं जानते रहो, हम सच कह रहे हैं। मान लो कि तुम मर गए हो।

यात्री बोला–तुम्हारे गांव के पंच को बुलाओ। पंच भी ठग था, उसने भी यही कहा कि यह आदमी मर गया है, इसकी दाह-क्रिया करनी है।

यात्री ने कहा–सरपंच को बुलाओ। सरपंच ने दो-तीन व्यक्तियों से वोट लिए। सब बोले–यह आदमी मर गया है। सरपंच ने भी यही निर्णय किया कि यह आदमी मर गया है। बेचारा जिंदा था। उसकी अर्थी बनाकर उसे जला दिया।

मानने की बात में बहुत खतरा हो सकता है। अतः हम जानने का प्रयत्न करें। सचाई को जानने का सबसे बड़ा साधन है ध्यान। स्वाध्याय भी एक प्रकार से मानने का साधन है, साक्षात् जानने का नहीं। अतः कहा गया–पहले स्वाध्याय करो, फिर ध्यान करो। पहले सचाई को पकड़ लो, फिर प्रयोगों के द्वारा उसका साक्षात्कार कर लो।

हर व्यक्ति की चेतना जागृत हो और वह यह संकल्प करे कि मुझे कम से कम प्रतिदिन आधा घंटा ध्यान का अभ्यास करना है। अगर यह संकल्प हो जाए तो व्यक्ति स्वयं अनुभव करेगा कि जीवन में बहुत आनंद आ रहा है, मेरा ऊर्ध्वारोहण हो रहा है। मेरे जीवन में परिवर्तन आ रहा है, मैं सत्य का अनुभव कर रहा हूं, सत्य को जान रहा हूं।

16. ध्यान है जीने की कला

आदमी जीना चाहता है। जीएं तो आनंद से जीएं। रोते-रोते, बिलखते-बिलखते जीना जीना नहीं है। धर्म का सूत्र है कि जीएं तो संयम के साथ जीएं। वह जीवन अच्छा नहीं होता, जिसमें संयम नहीं होता। उसी का दूसरा सूत्र बनता है–जीएं तो आनंद के साथ जीएं। जीवन में आनंद रहे, समस्या भी आए तो आनंदपूर्वक सुलझाएं। न समस्या को देखकर घुटने टिकें, न मनोबल गिरे। न समस्या हावी हो और न दुःखी बनाए।

यह जगत समस्याओं का जगत है। प्रकृति की समस्याएं भी आती हैं, सर्दी की समस्या, वर्षा की समस्या, गर्मी की समस्या। सर्दी में कपड़े कम हैं तो समस्या है और गर्मी में पसीने की समस्या। समस्या कैसे मिटेगी? इस दुनिया में जिसने जन्म लिया है, वह यह सोचता है कि समस्या न आए, पर यह कभी संभव नहीं है। जहां जीवन है, वहां समस्या है। आदमी का काम है कि पुरुषार्थ के द्वारा समस्या को सुलझाने का प्रयास करे। बस यही एक मंत्र है सुखी जीवन जीने का।

समस्या हावी न हो

समस्या आती है, आदमी दुःखी बन जाता है। यह अज्ञान है। समस्या अलग है, दुःख अलग है। बहुत लोग समस्या को बड़ी नहीं मानते, प्रसन्न रहते हैं। कुछ आदमी ऐसे हैं कि छोटी-सी समस्या आती है तो भी उलझ जाते हैं। खाना-पीना हराम हो जाता है, नींद हराम हो जाती है। दो आदमियों के सामने एक प्रकार की समस्या है, पर प्रतिक्रिया अलग-अलग होती है। धर्म कहता है, दुःखी मत बनो। यही सुखी होने का सबसे बड़ा मंत्र है, जीवन को अच्छा बनाने का मंत्र है।

समस्या और दुःख एक नहीं है। यह बात तब समझ में आती है, जब हम थोड़ी साधना कर लेते हैं, परिपक्व हो जाते हैं। जब तक हमारी साधना

परिपक्व नहीं होती, बात समझ में नहीं आती। थोड़ा कुछ होते ही आदमी एकदम परेशान हो जाता है। उसे पता ही नहीं चलता कि क्या करना चाहिए, क्योंकि मन दुर्बल है, मन कमजोर है। सबसे पहले मन को बलवान बनाने की जरूरत है। मन को बलवान कैसे बनाएं? मन की शक्ति कैसे बढ़े? मन मजबूत कैसे रहें? इसका अभ्यास करना जरूरी है।

आहार है भीतर

लोग शरीर को बलवान बनाते हैं। क्या मन को बलवान बनाने की कोई दवा मिलती है? क्या कोई दुकान है? शरीर को बलवान बनाने के लिए बहुत दुकाने हैं। आटा, घी, चीनी, मसाले सब चीजें मिल जाएंगी। किसी दुकानदार से पूछो कि मन को बलवान बनाने की कोई दवा दो, भोजन दो, तो क्या मिलेगा? दिल्ली, कोलकाता, मुम्बई, यहां तक कि विदेश में चले जाओ, मॉस्को, वाशिंगटन, न्यूयार्क, लंदन कहीं चले जाओ, कहीं जाकर पूछो, बड़े-बड़े जनरल स्टोर हैं, जहां सब कुछ मिलता है। वहां पूछने पर उत्तर मिलेगा 'नथिंग', कुछ भी नहीं है। वह दवा कहां है, जिससे हमारा मन शक्तिशाली बन सके? हम हर घटना को शांति से झेल सकें।

साहस और पौरुष के साथ आने वाली समस्या का सामना कर सकें, मुकाबला कर सकें। वह दवा, वह पोषक आहार हमारे भीतर है। हमारा शरीर अच्छे-अच्छे रसायनों का निर्माण करता है, प्रोटीन का निर्माण करता है। सैकड़ों चीजें बना रहा है। हमें यह पता नहीं है कि किस भावना से कौन-सी चीज बनती है? अगर यह चाबी हाथ में आ जाए कि अमुक प्रकार की भावना करने से, अमुक प्रकार का रसायन भीतर बनेगा, वह दवा बन जाएगी या पोषक आहार बन जाएगा। यह ज्ञान हो जाए तो आदमी आनंद का जीवन जी सकता है, शक्ति का जीवन जी सकता है। ध्यान का प्रयोग इसीलिए है कि वह चाबी हाथ में आ जाए, यह ज्ञान हो जाए कि किस प्रयोग से हम आनंद का जीवन जी सकते हैं, मनोबल को बढ़ा सकते हैं और अपनी भावना को आगे बढ़ा सकते हैं।

चाबी हाथ में आ जाए

प्रेक्षाध्यान शिविर में हिन्दुस्तान के उद्योग सुरक्षा विभाग के पुलिस के बड़े-बड़े अफसरों ने भाग लिया। वे लोग ध्यान क्यों करते हैं? इसीलिए कि

उनका मनोबल बना रहे। हम दिल्ली में थे, वहां भारत सरकार की सेना के सुरक्षा एकेडमी के कुछ अधिकारी आए। आकर बोले–हमारे सैनिक 15000-16000 फीट की ऊंचाई पर रहते हैं। वे अकेले रहते हैं। अकेले रहने से उनमें निराशा, हीनता और आत्महत्या की भावना बहुत पनपती है। ऐसा कोई प्रेक्षाध्यान का प्रयोग बताएं, जिससे इन निषेधात्मक भावनाओं से बचा जा सके। हमारे प्रेक्षा प्रशिक्षक धर्मानन्दजी वहां गए। उन्होंने प्रयोग कराए, वे प्रयोग आज भी वहां चल रहे हैं।

अकेला रहना बहुत बड़ी कला है, साधना है और बहुत बड़ी समस्या भी है। आदमी अकेला रहना पसंद नहीं करता, ऊब जाता है, बात करें तो मन लग जाता है। इसीलिए बात का कभी अंत नहीं होता। दुनिया में अनंत क्या है? बात अनंत है। जहां दो इकट्ठे हों, बातें शुरू हो जाती हैं। इससे मन की चंचलता बढ़ती है? यदि मन की चंचलता को कम करने की कला हमारे हाथ में आ जाए और अपनी भावना के द्वारा भीतर की शक्तियों को जागृत कर लें तो समस्या का समाधान हो सकता है।

एक भाई आया और उसका छोटा लड़का भी साथ में आया। आकर बोला–मेरे पिताजी गुस्सा करके यहां आ गए हैं। इनको आप समझाओ। हर आदमी में गुस्सा भी है, अहंकार भी है, लोभ भी है। वे समस्याएं पैदा करते हैं। कठिनाई भी होती है। दुःख देने वाले भी हमारे भीतर बैठे हैं और सुख देने वाले भी हमारे भीतर बैठे हैं। हम उन दोनों को पकड़ सकें, समझ सकें, चाबी हाथ में आ जाए, गुर मिल जाए तो समस्या का समाधान हो जाता है। अज्ञानता के कारण कुछ नहीं होता।

प्रेक्षाध्यान क्यों?

प्रेक्षाध्यान इसीलिए किया जाता है कि आदमी अपने भीतर को समझ सके, जान सके और उसके द्वारा अपने आपको बदल सके। बदलना बहुत जरूरी है। हमारा बदलने में विश्वास है। हमारे पर्याय नए-नए उत्पन्न होते रहते हैं। हम उनको पकड़ें और कुछ नया करें। नया सीखें तो बहुत बड़ा काम हो सकता है। आज मानसिक समस्या ज्यादा है। सब उससे परेशान भी होते हैं। कभी क्रोध कम करने का शिविर लगे। क्रोध को कम कैसे किया जाए? पूरा शिविर हो जिसमें

क्रोध को कम करने की विधि बताई जाए। कभी अहंकार को कम करने का शिविर लगे। कभी लड़ाई-झगड़ों को कम करने का शिविर लगे। परस्पर शांति, मानसिक शांति का शिविर लगे। अलग-अलग प्रकार के शिविर लगते रहें।

कभी-कभी दिल्ली, अध्यात्म साधना केन्द्र में चिकित्सा के शिविर लगते हैं। वहां हृदय रोग के शिविर भी लगते रहते हैं। प्रयोगों से अनेक लोगों का स्वास्थ्य ठीक हो गया। बाईपास सर्जरी की जरूरत थी, ध्यान का प्रयोग किया, सर्जरी की अपेक्षा नहीं रही। वहां एक बड़ा प्रयोग चल रहा है। ये सारे कार्य अपने भीतर से होते हैं यानी इनमें बाहर की दवा का उपयोग नहीं होता।

भावक्रिया का प्रयोग भीतर की जागृति का प्रयोग है। जो काम करें, मन उसी कार्य में लगा रहे। हम काम करते हैं, मन कहीं भटक जाता है, चला जाता है। चल रहे हैं तो चलने में भी ध्यान रहे। माला जपो तो माला में ध्यान रहे कि मैं माला फेर रहा हूं। पूरी माला हो जाती है और फिर सोचता है कि मैंने माला गिनी या नहीं गिनी? मैंने भजन किया या नहीं किया? जप किया या नहीं किया? ऐसा क्यों? क्योंकि मन भटकता रहता है। अच्छे जीवन की एक बहुत बड़ी कला है भावक्रिया। अभ्यास के बिना यह संभव नहीं है। हमें मन की एकाग्रता की साधना, चंचलता को कम करने की साधना, श्वास लेने की कला का अभ्यास करना है। बहुत बड़ी कला है श्वास लेना। जो व्यक्ति सम्यक् प्रकार से श्वास लेना जान जाता है, काफी समस्याओं का पार पा जाता है, सही ढंग से श्वास लेना लोग जानते नहीं हैं, इसलिए बहुत सारी परेशानियां उठाते हैं।

ये सारी कलाएं या सारी विद्याएं प्रेक्षाध्यान के शिविरकाल में सिखाई जाती हैं। केवल पाठ नहीं पढ़ाया जाता। इनका अभ्यास कराया जाता है और प्रयोग सिखाया जाता है। मन पर नियंत्रण कर, आने वाले काल्पनिक दुःखों से मुक्ति पाई जा सकती है। हमारे बहुत सारे दुःख काल्पनिक होते हैं। अगर ध्यान दें तो यथार्थ के दुःख तो कम होते हैं।

आदमी कल्पना कर लेता है, दुःखी बन जाता है। झगड़े भी कल्पना के कारण ज्यादा होते हैं। बहुत बार लोग कल्पना के सहारे दुःख का ताना-बाना बुन लेते हैं। इन सब चीजों से बचने के लिए हमें यथार्थ की भूमिका पर जाना होगा तथा ध्यान के अभ्यास द्वारा जीवन जीने की कला को सीखना होगा।

17. ध्यान की भूमिकाएं

ध्यान की चार भूमिकाएं हैं–

1. पहली भूमिका है–प्रणिधान

2. दूसरी भूमिका है–समाधान

3. तीसरी भूमिका है–समाधि

4. चौथी भूमिका है–काष्ठा, पराकाष्ठा, अंतिम शिखर तक पहुंच जाना।

भावनात्मक युद्ध

भगवान महावीर राजगृह में पधारे। महाराज श्रेणिक अपने लवाजमे के साथ वंदना करने के लिए गए। उनमें एक व्यक्ति का नाम था दुर्मुख। वह बोलने में बड़ा कड़वा था। उसने देखा–एक पेड़ के नीचे एक मुनि ध्यानस्थ खड़ा है। ध्यानस्थ मुनि को देख दुर्मुख से रहा नहीं गया। वह बोला–देखो! कितना ढोंग कर रहा है। यह राजा अपने राज्य को छोड़, यहां आकर साधुता का ढोंग कर रहा है। पीछे से मंत्री ने मंत्रणापूर्वक इसके पुत्र को राजा बना दिया। इसका पुत्र अभी बहुत छोटा है। शत्रुओं ने उस पर आक्रमण कर दिया। वह राज्य की सुरक्षा के लिए मोर्चे पर लड़ाई लड़ रहा है और यह यहां आंख बंद कर पाखंड कर रहा है।

मुनि ने जब ये शब्द सुने तो उसका मन विचलित हो गया। कभी-कभी कोई निमित्त मिल जाता है और मन विचलित हो जाता है। वह मुनि भी विचलित हो गया। ध्यानस्थ मुद्रा में ही उसने खड़े-खड़े वैचारिक, भावनात्मक युद्ध शुरू कर दिया। शत्रुओं को परास्त कर दूंगा और सबको नष्ट कर दूंगा। युद्ध करने के भावों से वह सीमा तक पहुंच गया। कहा जाता है कि सातवें नरक में जाया जा सके, इतने कर्म दलिकों का संचय एक बार में ही कर लिया। ऐसी

भावना आ गई। श्रेणिक ने मुनि को नमस्कार किया, स्तुति की। फिर भगवान महावीर के समवसरण में गया, जाकर बोला–भंते! मैंने मार्ग में साधु को देखा, वह आपका शिष्य है। इतनी स्थिर ध्यान की मुद्रा में खड़ा है। मुझे लगता है कि यदि इस मुद्रा में उसका देहावसान हो तो वे सीधे मोक्ष में चले जाएंगे।

भगवान ने कहा–मोक्ष की बात तो बहुत दूर है। यदि वह अभी इस भावधारा में मरेगा तो नरक में जाएगा।

श्रेणिक ने आश्चर्य से पूछा–भंते! यह कैसे? नरक में कैसे जाएगा?

भगवान ने कहा–उसका प्रणिधान राग-द्वेष से मुक्त नहीं, राग-द्वेष से युक्त है। वह इस एकाग्रता में मरेगा तो सातवीं नरक में जाएगा।

प्रणिधान

प्रणिधान ध्यान की प्रथम भूमिका है। इसमें अनासक्ति का होना आवश्यक है, तभी लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। इस भूमिका में चित्त की निर्मलता का विकास हो जाता है। इस स्थिति में पहुंचने के बाद पदार्थ के प्रति आसक्ति नहीं रहती। पदार्थ से भिन्नता का अनुभव होना भेदविज्ञान है और भेदविज्ञान की भूमिका प्रणिधान की भूमिका है। यह ध्यान की पहली भूमिका है। ध्यान करनेवाला व्यक्ति ध्यान तो करता है, परंतु पदार्थ के प्रति, शरीर के प्रति उतनी ही गहरी आसक्ति है तो ध्यान सधेगा नहीं। ध्यान परिणाम नहीं लाएगा। ध्यान का परिणाम तभी मिल सकता है, जब अनासक्ति की साधना सिद्ध हो जाए और आसक्ति छूट जाए। इतना सम्यक् दर्शन हो जाए कि मैं पदार्थ नहीं हूं। पदार्थ मेरा नहीं है। यह चेतना बन जाए तब प्रणिधान की भूमिका प्राप्त होती है।

समाधान

समाधान ध्यान की दूसरी भूमिका है। भरत चक्रवर्ती का विशाल साम्राज्य, इतना बड़ा वैभव। स्नान करने के लिए स्नानघर में गए। स्नान किया, तैयार हुए, शरीर पर वस्त्र, आभूषण धारण किए, अचानक एक अंगूठी हाथ से गिर गई। अंगुली खाली हो गई। देखा, अंगुली ऐसे कैसे लग रही है? चिंतन किया–यह तो पर-पुद्गल से होने वाली शोभा है। पुद्गलों से होने वाली शोभा मेरी शोभा कहां है?

शरीर अलंकार से अलंकृत होता है तो शोभा बढ़ जाती है। अलंकार रहित शरीर की शोभा घट जाती है, क्योंकि यह पुद्गलकृत शोभा है। परीक्षण किया एक-एक आभरण को उतारने लगे। शरीर आभूषण रहित हो गया। विरूप-सा लगने लगा, फिर आभूषणों को धारण किया। अच्छा लगने लगा। अंगूठी धारण की, अंगुली अच्छी लगने लगी। अंगुली से अंगूठी बाहर निकाली, पदार्थ के प्रति, परपुद्गल के प्रति मोह हट गया।

एकत्व भावना पैदा हो गई। बस एक अकेली आत्मा ही है और तो सब बाहरी भाव हैं। एक विशेष प्रकार के वैराग्य की भूमिका बनी, विरक्ति की भूमिका बनी। चिन्तन करते-करते समाधान हो गया। शीश महल में अनुप्रेक्षा करते हुए भीतर में चले गए। सारा सौंदर्य, वैभव, शोभा बाहर से हटकर भीतर में केन्द्रित हो गई। यह समाधान अनित्य भावना का विकास होने पर प्राप्त होता है।

समाधि

ध्यान की तीसरी भूमिका है समाधि। इसमें साधक राग-द्वेष की भावना से ऊपर उठ जाता है। महाभारत काल में दमदंत नामक राजऋषि हुए। वे बड़े शक्तिशाली थे। एक बार उन्होंने कौरवों एवं पांडवों को भी पराजित कर दिया। मुनि बनने के बाद वे हस्तिनापुर, जो वर्तमान में दिल्ली के पास है, आए और बाहर उद्यान में ध्यानस्थ खड़े हो गए। हस्तिनापुर में कौरवों एवं पांडवों का राज्य था। कौरवों ने उनको देखा और मन में द्वेष की भावना जाग उठी। ध्यानस्थ मुनि पर पत्थर फेंकने शुरू कर दिए। मुनि को पत्थरों से ढ़क दिया, फिर भी मुनि का ध्यान भंग नहीं हुआ। ध्यान में खड़े रहे, समाधि में अडोल रहे।

संयोग से एक दिन पांडव आए। पांडवों ने देखा और सारे पत्थर हटाए। कौरवों ने पत्थरों से आहत किया। कोई विचलन नहीं हुआ। पांडवों ने वे पत्थर हटा दिए तो भी कोई प्रीति का भाव मन में पैदा नहीं हुआ। यह अप्रीति और प्रीति–राग और द्वेष की स्थिति से बिल्कुल ऊपर उठ जाना ही समाधि की भूमिका है। पता ही नहीं लगता, कौन क्या कर रहा है? कहीं भी ध्यान नहीं जाता। किसी भी अवस्था में समाधि भंग नहीं होती। यह ध्यान की तीसरी भूमिका है।

काष्ठा

यह परम ध्यान की भूमिका है। पुष्यदंत मुनि ने महाप्राण ध्यान की साधना का प्रयोग किया। 'महाप्राण ध्यान' साधना की एक उत्कृष्ट अवस्था है। उस अवस्था में जाने के बाद न खाना, न पीना, न प्यास, न भूख, शरीर की सारी क्रियाएं बंद हो जाती हैं। श्वास इतना सूक्ष्म हो जाता है कि मृत और जीवित व्यक्ति में अंतर करना मुश्किल हो जाता है। एकदम मृतवत् अवस्था बन जाती है। यह परम समाधि की अवस्था है। पुष्यदंत मुनि ने एक बार अपने शिष्य से कहा–मैं अभी महाप्राण ध्यान की साधना करना चाहता हूं। साधना काल तक तुम मेरे उत्तर साधक रहोगे। इस कमरे के भीतर कोई नहीं आ सकेगा और तुम्हें निरन्तर चौबीस घंटे ही ध्यान रखना होगा। आचार्य पुष्यदंत ने महाप्राण ध्यान का प्रयोग शुरू कर दिया। लेट गए। कोई देखे तो ऐसा लगे कि एक मृत शरीर पड़ा है। कोई क्रिया नहीं हो रही है। उठना, बैठना, खाना, पीना, शौच करना कुछ भी नहीं। शरीर की सारी क्रियाएं समाप्त और उस अवस्था में लेटे रहे। 5, 7, 10 दिन बीत गए। उनके अन्य शिष्यों के मन में एक प्रकार का ऊहापोह खड़ा हो गया। उन्होंने सोचा–लगता है कि आचार्यश्री का शरीर अब निष्क्रिय हो गया। उनका शायद प्राणांत हो गया और यह उत्तर साधक किसी को भी अंदर जाने नहीं देता। बहुत प्रयत्न किया कि हमें भीतर जाने दो। उसने कहा–अभी कोई भीतर नहीं जा सकता। शिष्यों ने आग्रहपूर्वक कहा–हम भीतर जाएंगे, हमें कोई नहीं रोक सकता। उत्तर साधक शिष्य बोला–यह गुरु का आदेश है, भीतर कोई नहीं जा सकता। बड़ा द्वंद्व मच गया। किसी दूसरे को पता नहीं था। उत्तर साधक सारी स्थिति को जानता था। वास्तविकता का ज्ञान न होने से भारी द्वंद्व मचा रहा। आखिर सब शिष्य मिलकर राजा के पास गए।

राजा आचार्य पुष्यदंत का भक्त था, श्रावक था। राजा ने कहा–लगता है आचार्यजी की इस शिष्य ने अंतिम क्रिया कर दी है। उन्हें मार दिया है। वे भीतर निश्चेष्ट पड़े हैं। अन्य सभी शिष्य राजा के विचार से सहमत हो गए और कहा–राजन्! इसलिए यह हमें अंदर जाने नहीं देता है। राजा स्वयं आया और बोला–यह कैसे हो सकता है? हम भीतर जाएंगे। तब वह उत्तर साधक शिष्य बोला–तुम लोग दो मिनट ठहरो। वह भीतर गया, जाकर आचार्य का अंगूठा

दबाया। भीतर से बाहर आने का स्विच ऑन किया। अंगूठा दबाते ही एकदम आचार्य उठ गए। बोले–तुमने असमय में यह काम क्यों किया? समय लंबा था। महीना, दो महीने, चार महीने मुझे इस अवस्था में रहना था। तुमने मुझे क्यों जगाया?

बोला–'गुरुदेव! मैं क्या करूं? एक समस्या आ गई। देखिए, बाहर राजा खड़ा है। हमारे सारे साधार्मिक साधु खड़े हैं और सबके मन में विग्रह की भावना पैदा हो गई कि मैंने आचार्य को मार दिया और अब भीतर किसी को जाने नहीं देता', तब परम ज्ञानी आचार्य उठे और बाहर आए। यह परम समाधि की अवस्था है, जिसका नाम है काष्ठा।

ध्यान की चार भूमिकाएं

ध्यान की ये चार भूमिकाएं हैं। प्रथम प्रणिधान की भूमिका में चित्त का निर्मलीकरण होता है। आसक्ति का धागा टूटता है। चित्त आत्मोन्मुखी बनता है। चित्त का प्रसाद व प्रसन्नता जागृत होती है। चित्त का प्रसाद ही अध्यात्म का मूल है। यह प्रसन्नता, प्रसाद किसी वस्तु से मिलने वाला नहीं है, अपितु आत्मा के भीतर से उत्पन्न होनेवाली प्रसन्नता है। पदार्थ निरपेक्ष प्रसन्नता है। अध्यात्म प्रसाद की भूमिका में जानेवाला इस दुनिया में सबसे अधिक सुख का अनुभव करनेवाला होता है। इस प्रणिधान की भूमिका को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति भेदविज्ञान का अनुभव करने लगता है।

दूसरी समाधान की भूमिका अनित्यता की भूमिका है। जहां शरीर का ममत्व छूट जाता है। शारीरिक सौंदर्य का भाव समाप्त हो जाता है। एक भाव जागृत होता है कि जो कुछ हो रहा है, वह सारा पदार्थकृत है। पुद्गल को तृप्त कर रहा है। जड़ को तृप्त कर रहा है। उसकी आत्मा के प्रति अनुरक्ति पैदा हो जाती है।

तीसरी समाधि की भूमिका में चेतना इस स्थिति में आ जाती है कि राग-द्वेष उपशांत और क्षीण जैसे हो जाते हैं। चेतना राग-द्वेष, प्रिय-अप्रिय संवेदन से सर्वथा ऊपर उठ जाती है। चेतना का ऐसा निर्माण होता है कि कोई प्रिय या अप्रिय तरंग उठती ही नहीं है। निर्विकल्प अवस्था आ जाती है। किसी भी परिस्थिति को सहन करने की असीम शक्ति का जागरण हो जाता है।

चौथी काष्ठा की भूमिका परम समाधि की, देह-मुक्ति की भूमिका है। शरीर का कोई संबंध नहीं रहता। यह आत्मा की विशुद्ध भूमिका में चले जाने की अवस्था है। इस भूमिका में शरीर की कोई प्रवृत्ति नहीं रहती। हम जो कायोत्सर्ग करते हैं, उसमें हमारी प्रवृत्तियां रहती हैं। कभी खांसी भी आ सकती है, कभी छींक भी आ सकती है, कभी उबासी भी आ सकती है। शरीर के भीतर वात, पित्त, कफ व रक्त का संचरण भी होता रहता है, किंतु काष्ठा ध्यान की भूमिका में सारी क्रियाएं बंद हो जाती हैं। यहां तक कि श्वास की क्रिया भी बंद हो जाती है। अतः इसे परम समाधि की भूमिका कहा गया है।

ध्यान साधना करनेवाला साधक ध्यान करने बैठे और ममत्व का, आसक्ति का धागा नहीं खोले तो ध्यान करते चले जाओ, कहीं भी नहीं पहुंच पाओगे। हमें आसक्ति का, पदार्थ के प्रति होनेवाली मूर्च्छा का, ममत्व का जो एक धागा बंधा हुआ है, पहले उसको खोलना होगा। उसके खुल जाने पर हम उस पार जा सकते हैं। अन्यथा उस पार जाने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। साधना की गहराई में जाने के लिए इन चार भूमिकाओं को समझें और देखें कि उत्तरोत्तर हमारा विकास कैसे हो सकता है? इस पर विचार करें तो सचमुच एक ऐसी अलौकिक अनुभूति की जा सकती है।

एक अलौकिक अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं, जिसकी सामान्य आदमी कभी कल्पना भी नहीं कर सकता। यह अध्यात्म का साम्राज्य इतना बड़ा साम्राज्य है कि अभ्यास न करनेवाला सोच नहीं सकता, सपना भी देख नहीं सकता, कल्पना भी नहीं कर सकता, इसलिए हम भूमिका के भेद को समझकर, जागरूक होकर चलें। अवश्य ही हमें दूसरा किनारा, तट मिल जाएगा। हम जहां पहुंचना चाहते हैं, जाना चाहते हैं, वहां पहुंच जाएंगे।

18. ध्यान : स्वयं के साथ रहने का सूत्र

जैन आचार्यों ने ध्यान के तीन प्रकार बतलाए हैं–1. कायिक ध्यान, 2. वाचिक ध्यान, 3. मानसिक ध्यान।

कायिक ध्यान

शरीर की स्थिरता का नाम है–कायिक ध्यान। बाहुबली ने खड़े-खड़े कायोत्सर्ग किया, ध्यान किया। कितने समय तक किया? बारह महीने तक बाहुबली ध्यान की मुद्रा में खड़े रहे। बारह महीनों में सब ऋतुएं आती हैं–सर्दी भी आई, गर्मी भी आई, वर्षा भी आई। वर्षा ऋतु आई है और वे ध्यान में खड़े हैं। आप कहेंगे क्या साधु को वर्षा में रहना कल्पता है? वह एक विशेष प्रसंग था। पानी गिरा तो भी खड़े ही रहे। इतना ही नहीं उनके शरीर को हरियाली ने ढक दिया। बेल, लता, बल्लियों से वे परिवेष्टित हो गए। बेलों को सहारा चाहिए। बेल भींत पर चढ़ जाती है, पेड़ पर चढ़ जाती है। उनको अच्छा सहारा मिल गया। पेड़ मिल गया। बाहुबली खड़े थे, बेलें ऊपर चढ़ गई और इतनी चढ़ी कि बाहुबली का पूरा शरीर बेलों से आच्छादित हो गया। पता ही नहीं चलता कि कोई आदमी खड़ा भी है या नहीं? पक्षियों ने घोंसले भी बना लिए। उनको भी अच्छा स्थान मिल गया।

ब्राह्मी और सुंदरी दोनों बाहुबली की बहनें थी। वे भगवान ऋषभ के पास पहुंची और निवेदन किया–प्रभो! हमारे भ्राता मुनि बन गए। हम उनका दर्शन करना चाहती हैं। वे कहां हैं? क्या वे आपके पास हैं? भगवान ने कहा–यहां नहीं है? भगवान ने सारी घटना सुनाई। लंबी घटना है। भगवान ने कहा–तुम्हारा भाई साधु तो बन गया, पर अहंकार रह गया। वह यहां नहीं आया। जंगल में ही ध्यान की मुद्रा में लंबे समय से खड़ा है।

दोनों बहनें भाई की खोज करने के लिए जंगल में गई। भगवान ने पता बता दिया होगा। वर्षा खूब हुई थी। जंगल हरियाली से भरा हुआ था। चारों तरफ बल्लियां ही बल्लियां दिखाई दे रही थीं। रास्ता मिलना भी मुश्किल था, फिर भी जैसे तैसे गईं। आगे जाकर देखा तो भाई का पता नहीं लग रहा है। वे दोनों भाई की खोज करती हुई आगे चल रही थीं। दूर से एक खंभा दिखाई दिया। उन्होंने सोचा, यह खंभा जैसा क्या दिखाई दे रहा है? उनके मन में एक संशय उत्पन्न हो गया। दर्शनशास्त्र में संशय का एक उदाहरण आता है कि स्थाणु वा पुरुषो वा। यह खंभा है या आदमी है। अगर नहीं हिलता है तो खंभा है और हिलता डुलता है तो मान लेना चाहिए कि आदमी है। चलो निकट चलें। निकट आईं और थोड़ा भीतर गहराई से देखा। ध्यान देते-देते ज्ञात हो गया कि हमारा भाई यही है। उन्होंने कहा–वीरा मोरा गज थकी उतरो, गज चढ़ियां केवल नाही। भ्रात! अब हाथी से उतरो, हाथी पर चढ़नेवालों को केवलज्ञान नहीं होता। ये शब्द बाहुबली के कान में पड़े। सोचा–कौन वीरा? कौन हाथी? यह है कायिक ध्यान। महावीर ने सोलह-सोलह दिन तक ध्यान किया, प्रतिमा की साधना की और बाहुबली ने बारह महीने तक कायोत्सर्ग किया। कायिक ध्यान की स्थिति कितनी है?

पूर्वों के अनुसार कायोत्सर्ग की उत्कृष्ट स्थिति है साठ हजार वर्ष। साठ हजार वर्ष खंभे की तरह खड़ा रहा जा सकता है। जो व्यक्ति ध्यान करना चाहे, उसे इस रहस्य को जान लेना चाहिए। जब तक कायिक ध्यान सिद्ध नहीं होता, तब तक मानसिक ध्यान सिद्ध होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। सबसे पहले शरीर को साधो, शरीर की स्थिरता सिद्ध करो, कायोत्सर्ग करो, कायगुप्ति करो। फिर आगे की बात होगी।

जो व्यक्ति कायिक ध्यान में चला जाता है, उसके लिए नियम भी अलग बन जाते हैं। बाहुबलि के प्रसंग पर चिंतन करें, क्योंकि साधु को तो वनस्पति का, कच्चे पानी का संघट्टा करना, वर्षा में बाहर रहना नहीं कल्पता। बाहुबली पर ये नियम लागू नहीं होते। नियम किसके लिए हैं? जो चंचलता कर रहा है, जो गतिशील है, जो प्रवृत्ति कर रहा है, उसके लिए नियम होते हैं। जहां निवृत्ति हो गई, वहां कुछ भी नहीं होता। ऐसा लगता है, मानो खंभा खड़ा है।

वाचिक ध्यान

दूसरा ध्यान है वाचिक ध्यान यानी वाणी का ध्यान या मौन। वास्तव में मौन क्या होता है? सच्चा मौन निर्विकल्प अवस्था में होता है। आज मनोवैज्ञानिकों ने काफी परीक्षण किए। एक आदमी बैठा है, सो रहा है और उसका स्वरयंत्र चालू है तो वह वास्तव में मौन नहीं है। जब स्वरयंत्र निष्क्रिय बन जाए, उसकी गति और स्पंदन सब शांत हो जाए तब वास्तव में मौन होता है। इसे ही हम वाचिक ध्यान कहते हैं।

मानसिक ध्यान

जब वाचिक ध्यान सध जाता है, तब मानसिक ध्यान का क्रम आता है। मन की चंचलता कम होने पर ही वृत्तियों का परिष्कार होता है। कायिक स्थिरता, वाचिक स्थिरता और मन की एकाग्रता तीनों जब सधते हैं, तब हमारे दृष्टिकोण का परिवर्तन होता है। वृत्ति का परिष्कार होता है और प्रवृत्ति पर नियंत्रण होता है। उस समय भीतर से परिचय होता है। भगवान महावीर पदयात्रा कर रहे थे। उसी दौरान रेखाओं को जाननेवाला एक ज्योतिषी आया। उसने पैर की रेखाओं को देखा और सोचा यह तो चक्रवर्ती का पैर है। चक्रवर्ती ऐसे अकेला और नंगे पैर चल नहीं सकता। या तो मेरा शास्त्र झूठा है या ये पैर गलत हैं। पैर की खोज करते-करते वहां पहुंचा, जहां भगवान महावीर ध्यान में खड़े थे। वहां जाकर बोला–स्वामिन्! ये पैर आपके हैं।

महावीर ने उत्तर दिया–हां, मेरे हैं। वह बोला–यह कैसे हो सकता है? इस पैर वाला तो चक्रवर्ती होना चाहिए, सम्राट होना चाहिए। आप तो अकेले नंगे पैर घूम रहे हैं, आपके पास कुछ भी नहीं है। न कोई सेना है, न कोई व्यक्ति आपके साथ है। आप हैं कौन?

महावीर ने उत्तर दिया–मैं सम्राट हूं, मैं चक्रवर्ती हूं। ज्योतिषी बोला–महाराज! आप चक्रवर्ती कैसे हो सकते हैं? महावीर ने कहा–चक्रवर्ती क्यों नहीं? उसने पूछा–चक्रवर्ती के पास सेना होती है। महावीर ने कहा–मैं ऐसा चक्रवर्ती हूं, जिसका कोई शत्रु नहीं है। सेना तो शत्रु हो तब चाहिए। मेरा कोई शत्रु नहीं है, फिर सेना की क्या जरूरत है? ज्योतिषी बोला–आपके पास

नौकर-चाकर कुछ भी नहीं हैं। महावीर ने कहा– नौकर-चाकर तो आलसी को चाहिए। मैं आलसी नहीं हूं, पुरुषार्थवादी हूं, मुझे नौकर-चाकर की जरूरत नहीं है। फिर पूछा–आपके पास धन नहीं है। उत्तर मिला–धन तो गरीब आदमी को चाहिए, मैं गरीब नहीं हूं, मुझे धन की जरूरत नहीं है।

आखिर आप हैं कौन? महावीर ने उत्तर दिया–मैं सम्राट हूं, चक्रवर्ती हूं। पूछा–आपका शासन कहां है? आपका कौन-सा राज्य है? महावीर बोले– मेरा शरीर ही मेरा राज्य है और मैं अपने आप पर शासन करता हूं। वास्तव में सम्राट वही होता है, जो अपने आप पर शासन करता है। हस्तरेखाविद् का समाधान हो गया।

जब भीतर का परिचय मिलता है और भीतर का साम्राज्य प्रकट होता है, तब हमारा ध्यान फलित होता है, इसलिए हम ध्यान का मूल्यांकन करें, यह जरूरी है। अगर भीतर की शक्ति से आपको परिचित होना है, अपना परिचय पाना है, अपने साथ रहना है और अपने साथ जीना है तो उसके लिए ध्यान सर्वोत्कृष्ट साधना का सूत्र है, इसलिए ध्यान के अर्थ को समझने का प्रयत्न करें, ध्यान के फल को समझने का प्रयत्न करें।

जो व्यक्ति ध्यान की गहराई में नहीं जाता, एकाग्रता की साधना नहीं करता, वह धर्म की बाहरी परिधि में चक्कर लगाता रहता है, उसका भीतर से परिचय नहीं होता है।

19. ध्यान : इन्द्रिय प्रतिसंलीनता का द्वार

ध्यान एक विपरीत दिशा है। जीवन चलाने के लिए जरूरी है चंचलता और ध्यान में कहा जाता है कि एकाग्र बनो, चंचलता कम करो। जीवन को चलाने के लिए जरूरी है इन्द्रियों का व्यापार, व्यवसाय और प्रवृत्ति। ध्यान में चंचलता का निरोध किया जाता है, इसीलिए कहा जाता है कि इन्द्रियों की प्रवृत्ति को बंद करो। आंखों को कोमलता से बंद करो। श्वास मंद करो। कान के व्यापार को भी बंद रखो। कान का व्यापार है–शब्द, उस पर भी ध्यान मत दो। इन्द्रियों के विषयों का प्रत्याहार करो। प्रतिसंलीनता करो और इन्द्रियों के व्यापार को रोक दो। यह एक भिन्न दिशा, विपरीत दिशा है।

आदमी का विकास विपरीत दिशा में ही होता है। एक दिशा में होने से विकास नहीं हो सकता। हमारी अंगुलियां हैं चार और अंगूठा है एक। ये विकास के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। यदि अंगुलियां नहीं होती तो विकास नहीं होता। विकास का एक चक्र है, एक साधन है, उनमें मुख्य है चार अंगुलियां और एक अंगूठा। इस प्रकार दोनों हाथों की अंगुलियां और अंगूठा मिलकर कुल दस हो जाते हैं। उपनिषद् का एक सुंदर सूक्त है–जिसके पास दस अंगुलियां हैं, उसे और क्या चाहिए? जीवन का सारा काम इनसे होता है, पर इसमें भी एक बात है कि अंगूठे व अंगुलियों की दिशा एक नहीं है। दोनों की विपरीत दिशा है।

विपरीत दिशा है तभी विकास होता है। यदि अंगूठा भी सीधा होता, अंगुलियों की दिशा में होता तो विकास नहीं हो सकता। हम लिख नहीं सकते। कुछ भी नहीं कर पाते। अंगूठे की विपरीत दिशा है, इसलिए लिख पाते हैं और लेखन के द्वारा विकास कर सकते हैं। यह अनेकांत का सिद्धांत है कि अगर चेतना का विकास करना है, ज्ञान का विकास करना है तो विपरीत दिशा में चलना होगा। जीवन की यात्रा चलाने के लिए जरूरी है कि आंखें खुली रहें

और आंतरिक विकास के लिए, चेतना के विकास के लिए जरूरी है कि आंखें बंद रहें।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में एक मिला-जुला आत्मचिंतन हुआ था। उसका एक वाक्य है–'वह आंख के बिना देखता है और कान के बिना भी सुनता है।' हम इसको ध्यान के संदर्भ में इस प्रकार समझें कि आंख बंद है, फिर भी देख रहा है। इसका कारण है ध्यान से भीतर का चक्षु उद्घाटित हो जाता है, तीसरा नेत्र खुल जाता है।

जो तीसरे नेत्र के द्वारा देख सकता है, वह इन चर्म-चक्षुओं के द्वारा क्या देखेगा? चर्म चक्षु की शक्ति बहुत सीमित है। यदि हम आंख के द्वारा देखेंगे तो सौ मीटर, दो सौ मीटर, चार सौ मीटर देख लेंगे, किंतु जिसका भीतर का चक्षु उद्घाटित हो जाता है, वह तो दो हजार किलोमीटर के बाद का दृश्य भी देख सकता है।

उपनिषद् के इस वाक्य का अर्थात् आंख के बिना देखने का यही तात्पर्य है कि जिसकी भीतर की आंख खुल जाती है, उसे चर्म-चक्षुओं से देखने की अपेक्षा ही नहीं रहती। साधारण आदमी कान से सुनता है, किंतु ध्यान करने वाला कान के बिना भी सुन सकता है। उसे सुनने के लिए कान की जरूरत नहीं है। वह इतनी दूर से बात सुन लेता है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। जब भीतर की चेतना स्पंदित हो जाती है, तब कान की शक्ति भी तीसरे नेत्र की शक्ति की तरह असीम हो जाती है।

ध्यान का प्रवेशद्वार है प्रतिसंलीनता

पातंजल योगदर्शन में अष्टांग योग का उल्लेख मिलता है। उनमें एक है प्रत्याहार। जैन आगमों में एक आगम है–औपपातिक। इसमें प्रतिसंलीनता शब्द का विमर्श प्राप्त होता है। प्रत्याहार और प्रतिसंलीनता–इन दोनों शब्दों का तात्पर्य एक ही है। इन्द्रियों का प्रत्याहार करो, प्रतिसंलीनता करो। पूरे दिन इन्द्रियों से काम मत लो, यह चिंतन व्यावहारिक नहीं हो सकता।

इन्द्रियों से काम तो लेना होगा, उसके बिना काम नहीं चलेगा। प्रतिसंलीनता का अर्थ है चौबीस घंटे आंख से काम मत लो, आंख को बंद करना भी सीखो। चौबीस घंटे कान का उपयोग मत करो, कान को बंद करना

भी सीखो, सुनो मत। चौबीस घंटे में दो, चार घंटे सुनना काफी है, कान का प्रत्याहार कर दो। जो भी शब्द आए, उन्हें ग्रहण मत करो।

अनुश्रुति है कि जयाचार्य जब ध्यान करते थे, तब वे कान को बंद कर लेते थे अर्थात् दोनों कानों में कर्णमुद्रिका डालकर दो-दो, तीन-तीन घंटे तक ध्यान में बैठ जाते थे, प्रत्याहार का प्रयोग करते थे। यह परंपरा आज भी चालू है। बहुत सारे साधु ऐसे हैं, जो कान में रुई डालकर कान बंद कर लेते हैं और ध्यान में चले जाते हैं। कभी-कभी कोई कान में अंगुली डालकर भी कान को बंद कर लेते हैं।

कान को बंद करने के प्रयोजन भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। कोई ध्यान की गहराई में जाने के लिए कान बंद करता है तो कोई अहं की पुष्टि के लिए, अपने आपको अलग दिखाने के लिए भी कान बंद कर लेता है।

अकरण की साधना

पंद्रह-सोलह वर्ष का लड़का था। उसने अपने एक कान में अंगुली डाल ली। उसके साथी बोले–अरे! यह क्या कर रहे हो? एक कान में अंगुली क्यों डाली? उसने कहा–मैं तुम लोगों से कुछ अच्छा होना चाहता हूं। कुछ अलग दिखना चाहता हूं, इसलिए मैंने ऐसा किया है। मैं तुम लोगों जैसा नहीं हूं। तुम तो इस कान से सुनते हो और उस कान से निकाल देते हो। मैंने अपना एक कान बंद कर लिया। मैं एक कान से सुनूंगा और उसी से निकालूंगा। मैं तुम लोगों से हटकर करना चाहता हूं। एक कान को बंद करना 'अकरण' की साधना नहीं है। अकरण का अर्थ है शब्द सुनता है, किंतु उस पर ध्यान नहीं देता। इस प्रकार अकरण की तीन भूमिकाएं होती हैं–

पहली भूमिका

जब ध्यान प्रारंभ करता है तब शब्द सुनता है, ध्यान उस पर चला जाता है। मूल बात छूट जाती है। जैसे–कोई व्यक्ति श्वास का प्रयोग कर रहा है उसका श्वास देखना छूट जाता है और ध्यान शब्द पर अटक जाता है।

दूसरी भूमिका

इस भूमिका का अभ्यास करने वाले साधक की एकाग्रता सध जाती है। इस भूमिका में शब्द का सुनना भी बंद हो जाता है। यह अकरण की साधना

है। हम इस भूमिका तक पहुंचें। जहां कान का उपयोग ही समाप्त हो जाए। इस भूमिका को जो प्राप्त कर लेता है, वह कुछ नया होता है और इतना सुखद होता है कि कुछ कहा नहीं जा सकता।

तीसरी भूमिका

इस भूमिका में साधना करने वाला साधक पांचों इन्द्रियों के विषयों से संबंध विच्छेद कर देता है। भीतर आनंद की अनुभूति करता है। एक व्यक्ति ध्यान साधना करने आया। उसने इन्द्रियों का प्रत्याहार कर लिया। गहरी एकाग्रता हो गई। प्रयोगकाल में एक दिन वह अंतर्यात्रा का प्रयोग कर रहा था। प्रयोग संपन्न होने के कुछ समय बाद वह मेरे पास आया और बोला–आज मैंने एक नया अनुभव किया है। मैं एक सांसारिक प्राणी हूं, गृहस्थ हूं और सब प्रकार का सुख भोग चुका हूं, भोग रहा हूं, किंतु अंतर्यात्रा का प्रयोग करते समय मुझे जिस सुख का अनुभव हुआ, वह कभी भी नहीं हुआ। ध्यान के समय उसने आंखों को बंद कर दिया था, प्रत्याहार कर लिया था। इन्द्रियों के पांचों विषयों से संपर्क हटा लिया। एक प्रकार से वह अतीन्द्रिय बन गया। उस स्थिति में जो भीतर का अनुभव होता है, वह अलौकिक और विचित्र होता है। ध्यान का अभ्यास करने वाला व्यक्ति, जिसने एक बार शिविर किया और उस भूमिका तक पहुंच गया, यह बड़े भाग्य की बात है, पर सामान्यतः यह बड़ा कठिन काम है।

ध्यान के प्रति श्रद्धा, निष्ठा का होना भी कोई कम बात नहीं है। यह लक्ष्य बनाना कि मैं भी उस भूमिका तक पहुंच सकता हूं। अभ्यास करूंगा, साधना चलेगी तो एक न एक दिन वहां तक पहुंच जाऊंगा। यह विश्वास पैदा हो जाए तो वहां पहुंचा जा सकता है। मैंने शिविरार्थियों को यह प्रसंग बताते हुए कहा–आप जो प्रयोग कर रहे हैं, जो अनुभव सुना रहे हैं, इस अनुभव में न कोई धर्म आपके साथ में है, न कोई परिवार है, न कोई व्यापार है, कुछ भी नहीं है। यह एकांतवास का अनुभव है।

जब एकांत से अनेकांत में जाएंगे, फिर सबके साथ रहेंगे, व्यापार भी करेंगे, बाजार में भी रहेंगे, परिवार में भी रहेंगे। अपने मित्रों के साथ रहेंगे, सबके साथ रहेंगे, उस स्थिति में यदि ध्यान का प्रभाव रहा तो आपका अनुभव एक स्थायी अनुभव हो जाएगा। एक ऐसी स्थिति का निर्माण करें कि हम वहां

तक पहुंच जाएं। हमें भीतर की चेतना को प्रकट करना है, भीतर के ज्ञान को प्रकट करना है।

भीतर का ज्ञान

भीतर के ज्ञान के प्रति सहज आकर्षण होता है। भीतर के ज्ञान का एक शब्द भी सैकड़ों, हजारों लोगों को अपनी ओर खींच लेता है और बाहर के ज्ञान के हजारों शब्द भी एक आदमी को अपनी ओर खींचने में सफल नहीं होते। हमारे प्राचीन संतों का जो भी अनुभव है, संतों ने जो कुछ कहा, उन शब्दों पर आज भी लोग मुग्ध हैं।

कबीर, सूरदास, तुलसी, मीरा, आचार्य भिक्षु, आचार्य तुलसी आदि ऐसे अनेक संत हुए हैं, जिन्होंने जो कुछ भी कहा, चाहे थोड़ा कहा, अधिक कहा, उस पर लोग मुग्ध हो जाते हैं, क्योंकि उनका ज्ञान बाहर का ज्ञान नहीं था और उनके शब्द बाहर के ज्ञान का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे थे। वे भीतर के ज्ञान का स्पर्श कर रहे थे और भीतर से जो कुछ भी निकल रहा था, उसमें वजन ज्यादा था और आज भी है। हमारा एक लक्ष्य बने, हम ज्ञान को सीमित न मानें, हमारे ज्ञान की सीमा नहीं है, ज्ञान असीम है और वहां तक पहुंचते-पहुंचते पता नहीं कितने जन्म लेने पड़ जाते हैं। इसीलिए प्रारंभ को अंत न मानें, पर्यवसान न मानें, आगे बढ़ने का प्रयत्न करें।

ध्यान : अपूर्व अनुभव

ध्यान साधना करने के लिए, आत्मसाक्षात्कार करने के लिए आवश्यक है इन्द्रिय प्रतिसंलीनता। इन्द्रिय प्रतिसंलीनता करने वाला साधक ही यह चिंतन कर सकता है कि हमें केवल इन्द्रिय चेतना के स्तर पर ही नहीं जीना है, इन्द्रियातीत चेतना के स्तर का भी अनुभव करना है। हमारी दुनिया के दो रूप हैं–

1. इन्द्रियों की दुनिया
2. इन्द्रियातीत चेतना की दुनिया

केवल इन्द्रियों की दुनिया में रहने से अनेक समस्याएं पैदा हो जाएंगी। संकट और दुःख सारी इन्द्रियों की दुनिया में होते हैं। व्यक्ति जब अतीन्द्रिय चेतना में चला जाता है, तब उसे खोजना पड़ता है, पूछना पड़ता है कि दुःख

किसको कहते हैं? तनाव किसको कहते हैं? एक नया ज्ञान पैदा हो जाता है। इसीलिए प्रेक्षाध्यान की साधना करने वाले इस बात को समझें और भीतर की दुनिया, जो चेतना की दुनिया है, वहां तक पहुंचने की साधना करें।

जब वहां तक हमारी गति हो जाती है तो हमें एक नया अनुभव होता है। एक ऐसा अनुभव होता है, जो पहले कभी नहीं हुआ। हम वैसा अनुभव करने का प्रयत्न करें। यदि ऐसा होता है तो हमारा जीवन आनंदमय, सार्थक और सफल हो जाता है।

20. मनोगुप्ति और ध्यान

मन की दो अवस्थाएं होती हैं–गत्यात्मक और स्थित्यात्मक। गत्यात्मक अवस्था को मन और स्थित्यात्मक अवस्था को ध्यान कहा जाता है। ध्यान करते समय मन संकल्पों से भर जाता है। एक-एक कर पुरानी स्मृतियां उभरने लग जाती हैं। सहज प्रश्न होता है, इसका क्या कारण है? जब मन की प्रवृत्ति होती है तब उतनी चंचलता नहीं होती, जितनी उसको स्थिर करने का प्रयत्न करने पर होती है। हम गहराई में जाएं तो पाएंगे कि चेतना चंचल नहीं होती। मन चेतना का एक अंश है, वह भला कैसे चंचल हो सकता है? वह वृत्तियों के चाप से चंचल होता है।

वृत्तियों का जितना चाप होता है, उतना ही वह चंचल होता है और वृत्तियां जितनी शांत या क्षीण होती हैं, उतना ही वह स्थिर होता है यानी ध्यान होता है। तालाब का जल स्थिर पड़ा है। उसमें एक ढेला फेंका और वह चंचल हो गया।

यह चंचलता स्वाभाविक नहीं, किंतु बाह्य के संपर्क से उत्पन्न है। ठीक इसी प्रकार मन की चंचलता भी स्वाभाविक नहीं, किंतु वृत्तियों के संपर्क से उत्पन्न होती है। मन की चंचलता एक परिणाम है। वह हेतु नहीं है। उसका हेतु है वृत्तियों का जागरण।

वृत्तियां दो प्रकार की होती हैं–सत् और असत्। असत् से सत् की ओर जाना पहला चरण है और दूसरा चरण है असत् को क्षीण करना। असत् में मन चंचल रहता है, सत् में शांत रहता है। असत् को क्षीण करने पर वह अत्यधिक शांत हो जाता है। इस सारी प्रक्रिया को मनोगुप्ति कहा जाता है। गुप्त मन की तीन अवस्थाएं हैं–

विमुक्तं कल्पनाजालं, समत्वेषु प्रतिष्ठितम्।
आत्मारामं मनश्चेति, मनोगुप्तिस्त्रिधोदिता॥

1. कल्पना विमुक्त, 2. समत्व-प्रतिष्ठित, 3. आत्माराम।

1. कल्पनाविमुक्त

गुप्त मन की पहली अवस्था है कल्पनामुक्त होना। मन को एक साथ खाली नहीं किया जा सकता। उसे असत् कल्पनाओं से मुक्त करने के लिए सत् कल्पनाओं का आलंबन लिया जाता है। इन कल्पनाओं का विशद वर्णन प्राचीन साहित्य में मिलता है।

कल्पना करें कि हृदय कमल के चार पत्र हैं। बीच में एक कर्णिका है। चार पत्रों और कर्णिका पर क्रमशः अ, सि, आ, उ, सा लिखा हुआ है। प्रत्येक अक्षर ज्योतिर्मय है और वह प्रदक्षिणा करता हुआ घूम रहा है। यह कल्पना पुष्ट होगी तो दूसरी कल्पनाएं अपने-आप विलीन हो जाएंगी।

नाक के दो छिद्र, दो आंख, दो कान और एक मुख-ये सात रंध्र हैं। इन पर क्रमशः ण, मो, अ, रि, हं, ता, णं-इस मंत्र-जप के साथ ध्यान किया जाए। वर्ण और स्थान का ध्यान साथ-साथ हो। इससे मन शेष कल्पनाओं से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार सैकड़ों उपाय साधना की लंबी परंपरा में प्राप्त होते रहे हैं।

2. समत्व-प्रतिष्ठित

गुप्त मन की दूसरी अवस्था है समत्व प्रतिष्ठित होना। वृत्तियां दबी रहती हैं। वे निमित्त का योग पाकर उत्तेजित होती हैं और उभर आती हैं। उनकी उत्तेजना का बहुत बड़ा निमित्त है विषमता। जब-जब मन में विषमता के भाव आते हैं, तब-तब वह चंचल, अधीर और विक्षिप्त हो जाता है। अमुक व्यक्ति ने मेरा सम्मान किया है और अमुक ने अपमान। सम्मान और अपमान की स्मृति होते ही मन चंचल हो उठता है, किंतु जिसका मन सम्मान और अपमान दोनों को ग्रहण नहीं करता तथा दोनों को आत्मा से बाह्य मानता है, उसका मन समता में प्रतिष्ठित रहता है। उसे सम्मान और अपमान की स्मृति ही नहीं होती, तब वह उसके कारण चंचल, अधीर या अशांत कैसे हो सकता है? इस प्रकार राग-द्वेषजनित जितनी विषमताएं हैं, उनका ग्रहण नहीं करनेवाला मन समता में प्रतिष्ठित होता है।

3. आत्माराम

गुप्त मन की तीसरी अवस्था है आत्मा में रमण करना। इसमें चेतना के अतिरिक्त कोई बाह्य आलंबन नहीं होता। मन आत्मा में विलीन हो जाता है। यह कषाय (बाहरी रंगों) से मुक्त होकर शुद्धोपयोग (शुद्ध चेतना) में परिणत हो जाता है। इस स्थिति को इन शब्दों में भी समझाया जा सकता है कि यहां शुद्ध चेतना से भिन्न मन का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता।

ध्यान और शून्यता

ध्यान करने वाले को तदात्मक होने का अभ्यास करना चाहिए अर्थात् जिसका ध्यान करे, उसके साथ एकात्मकता स्थापित करनी चाहिए। क्रिया के साथ भी तदात्मकता हो तो वह भी ध्यान हो जाता है। जो बोले, उसमें मन का योग साथ रहे तो वह बोलना भी ध्यान है। जो करे, उसमें मन का योग साथ रहे तो वह करना भी ध्यान है। तन्मयता से जो किया जाता है, वह सद्यः फलदायी होता है। ध्यान करने वाला ध्येय की संप्राप्ति के लिए अपने शरीर व मन को शून्य बना लेता है। ऐसा करने पर ध्येय और ध्याता में एकात्मकता हो जाती है। इसी को योगशास्त्र के आचार्यों ने एकीकरण, समरसीभाव, समापत्ति या समाधि कहा है। ध्यान की सफलता के लिए चार कारणों पर ध्यान देना चाहिए–

1. गुरूपदेश–ऐसे गुरु से मार्गदर्शन लेना चाहिए, जो अनुभवी हो।

2. श्रद्धा–अपनी क्रिया के प्रति आत्मा में दृढ़ विश्वास होना चाहिए। प्रक्रिया ठीक होगी तो अवश्य परिणाम लाएगी, ऐसी निष्ठा होनी चाहिए।

3. सतत अभ्यास–आज किया, कल नहीं, ऐसी अनियमितता नहीं होनी चाहिए। अभ्यास सतत करना चाहिए।

4. एकाग्रता–मन की एकाग्रता का दृढ़ अभ्यास होना चाहिए।

आज ध्यानी मुनियों और ध्यान दोनों की परंपरा लुप्त-सी है। आगमों में ध्यान की प्रणाली विकीर्ण-सी है। परवर्ती साहित्य में ध्यान के तत्त्वानुशासन, योगबिंदु, योगदृष्टिसमुच्चय, योगशास्त्र–जैसे छोटे ग्रंथ हैं, पर ध्यान की समग्र प्रणाली का प्रतिपादक कोई ग्रंथ नहीं है। जो सूक्ष्म तथ्य होते हैं, वे अभ्यास-क्रम के बिना विस्मृत हो जाते हैं। आज विस्मृति की दशा है, यह स्वीकार करते हुए हमें कोई संकोच नहीं होता।

ध्यान है आंतरिक तपस्या

भगवान महावीर की सारी तपस्या ध्यान-प्रतिमा से परिपूर्ण थी। तपस्या क्या है? कोरा अनशन ही तपस्या नहीं है। वह बाह्य तपस्या है, तपस्या का एक अंग है। ध्यान आंतरिक तपस्या है। अनशन के लिए ध्यान नहीं है, ध्यान के लिए अनशन है। बाह्य तप अनुपादेय नहीं है, किंतु वही उपादेय हो रहा है।

मुनि दूसरे प्रहर में ध्यान करे–बीयं झाणं झियायए यह अभिग्रहधारी मुनि के लिए ही माना जाने लगा है। ध्यान, संवर, योग जैसे शब्द अपरिचित से होते जा रहे हैं। आज का जन-मानस जितना बाह्याचारपरक है, उतना अध्यात्मयोगपरक नहीं है। जैन धर्म का मूल सूत्र है कषाय-विजय। साधनों का आलंबन कषाय-विजय के लिए है, पर साधनों के लिए कषाय का उद्दीपन अधिक होता है। समूचे जैन समाज के लिए ये प्रश्न चिंतनीय हैं। वर्तमान का भौतिक साम्राज्य अध्यात्म का सिंहासन छीनने की धुन में है, इसलिए अधिक चिंतनीय यह है कि–

1. साधनों के लिए साध्य की हानि न हो।
2. बाह्याचार की रक्षा के लिए कषाय का उद्दीपन न हो।
3. ध्यानी मुनियों और ध्यान की परंपरा विकसित हो।

चेतना के दो रूप हैं चल और स्थिर। चल-चेतना को चित्त और स्थिर-चेतना को ध्यान कहा जाता है। स्थिरता के दो रूप बनते हैं–एकाग्रता और निरोध। एक वस्तु में चित्त को संलग्न करने का नाम एकाग्रता और उसे सर्वथा चिंतन-शून्य करने का नाम निरोध है। चित्त की एकाग्रता और चित्त का निरोध–ये दोनों ध्यान कहलाते हैं।

ध्यान की विधि

ध्यान करने से पहले शरीर को स्थिर करें। वह बिल्कुल न हिले-डुले, फिर दो-तीन मिनट उसे सूचना दें कि वह शिथिल हो रहा है, फिर यह सूचना दें कि श्वास शिथिल हो रहा है। शरीर और श्वास दोनों शिथिल हो जाएं तब यह सूचना दें कि मन शिथिल हो रहा है। जब मन शिथिल हो रहा हो, उस समय या तो चिंतन सर्वथा बंद कर दें, वैसा न कर सके तो अर्हत, सिद्ध आदि जो भी इष्ट हो, उसे प्रत्यक्ष देखने का प्रयत्न करें। जप में शब्दों की पुनरावृत्ति की

जाती है, किंतु ध्यान में उनकी पुनरावृत्ति नहीं की जाती, उनके अर्थ को प्रत्यक्ष करने का अभ्यास किया जाता है।

'शिवदत्त राजा का मंत्री था। उसे बहुत सम्मान प्राप्त था। एक दिन राजा को उस पर संदेह हो गया। उसे मंत्री पद से हटा दिया। सारी संपत्ति छीन ली। अब वह धन और सम्मान दोनों से दरिद्र हो गया। अपने कुटुंब को लेकर वह वहां से चल पड़ा। मार्ग में एक मुनि मिले। वे ध्यान-मुद्रा में खड़े थे। मंत्री ने उन्हें वंदना की। मुनि ने ध्यान पूर्ण किया। मंत्री ने पूछा–गुरुदेव! संचित कर्म क्षीण हों, वैसा उपाय बतलाइए। मुनि ने कहा–दृढ़ निश्चय के बिना वैसा उपाय हाथ नहीं लगता। मंत्री बोला–गुरुदेव! कर्म का विपाक देख चुका हूं। क्या अब भी दृढ़ निश्चय नहीं होगा? मुनि ने उसकी प्रबल इच्छा देखी और कहा–ध्यान से सब दुःख दूर हो जाते हैं। भगवन्! यह कैसे किया जाए? मंत्री ने पूछा। मुनि ने कहा–ध्यान करने वाला पूर्व या उत्तर की ओर मुंह कर बैठे। आंखें या तो मुंदी हुई हों या अधखुली अथवा खुली हों तो मानसिक कल्पना से उन्हें नासाग्र पर केन्द्रित किया जाए। धीरे-धीरे एकाग्रता सघन होगी। प्रशस्त आलंबन संचित कर्म का विलय करने में निमित बनेगा।

ध्यान में आसन

ध्यान काल में आसन कष्टदायक नहीं, किंतु ध्यान करने वाले की सुविधानुसार होना चाहिए। ध्यान के लिए सामान्यतः पद्मासन, पर्यंकासन, सुखासन आदि आसन सुझाए गए हैं, किंतु ये ही आसन होने चाहिए, ऐसा आग्रह नहीं है। आचार्य शुभचन्द्र ने लिखा है–जिस आसन में बैठने पर मन निश्चल हो, वही आसन करणीय है।

येन केन सुखासीनाः विदध्युर्निश्चलं मनः।
तत्तदेव विधेयं स्यात् मुनिभिर्बन्धुरासनम्॥
(ज्ञानार्णव)

ध्यान का फल

ध्यान के फल की स्पष्टता हेतु एक उदाहरण प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा–पुराने जमाने की बात है। मगध देश में देवरापुर नाम का नगर था। वहां दो मित्र थे। एक का नाम राम था। वह बनिए का बेटा था। दूसरे का नाम था

नागदत्त। वह ब्राह्मण का बेटा था। उन दोनों में बहुत प्रेम था। वे सुख से रह रहे थे। एक दिन वहां राज्य-विद्रोह हो गया। चारों ओर लूट मच गई। तब वे दोनों वहां से दौड़े और दक्षिणापथ की ओर चले गए। एक बार वे दोनों काठ लाने के लिए जंगल गए। वहां महाबल नाम के साधु कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े थे। ध्यानलीन होने के कारण वे पर्वत की भांति अडोल थे।

उन्होंने साधु को देखा। वह साधु-दर्शन का जीवन में पहला ही अवसर था। वे उन्हें अपलक देखते रहे। थोड़ी देर बाद एक बड़ा-सा सांप बिल में से निकला और सीधे साधु के पास जा पहुंचा। उन्हें डसकर वापस बिल में घुस गया। साधु अब भी वैसे ही खड़े थे। ध्यान से जरा भी विचलित नहीं हुए। उनके शरीर में विष भी नहीं फैला। राम और नागदत्त को बहुत आश्चर्य हुआ। साधु ने कायोत्सर्ग पूर्ण किया। वे साधु के पास गए, वंदना की और बोले–भगवन्! सांप ने आपको काटा, लेकिन आप पर उसका असर नहीं हुआ? आप इस प्रकार कायोत्सर्ग में रहते हैं, क्या आप को सर्दी-गर्मी से कष्ट नहीं होता? साधु ने कहा–महानुभावो! जो ध्यान-कोष्ठ में स्थित होता है, वह बाहरी स्थिति से प्रभावित नहीं होता। सर्दी-गर्मी आदि से बाधित नहीं होता। यह मेरा अनुभव है। इस ध्यान-कोष्ठ में शीत लहर का कोई असर नहीं होता और न तेज हवा से उद्वेलित अग्नि भी अपना प्रभाव दिखा पाती है। भयंकर कोलाहल वहां बाधा नहीं डाल सकता और सांप आदि विषैले जंतु वहां पीड़ा उत्पन्न नहीं कर सकते। इन शारीरिक कष्टों की क्या बात करते हो? वहां तो मानसिक कष्ट भी नहीं पहुंच पाते हैं। ईर्ष्या, विषाद, शोक आदि जितने मानसिक कष्ट हैं, वे सब ध्यानलीन व्यक्ति के सामने समाप्त हो जाते हैं।

21. कायोत्सर्ग

शरीर चंचल है और मन भी चंचल है। चंचलता को छोड़ दें तो जिया भी नहीं जा सकता। वह बहुत बढ़ जाए, तब भी जीने में कठिनाई है। जीवन की सफलता इसी में है कि चंचलता के साथ स्थिरता का संतुलन हो। कायोत्सर्ग और ध्यान दोनों स्थिरता के रूप हैं। काया की स्थिरता कायोत्सर्ग है और मन की स्थिरता ध्यान। जो व्यक्ति इन्द्रिय और मन की दीवारों को भेद कर आत्मा के सान्निध्य में रहना चाहता है, वह स्थान, मौन और ध्यान के द्वारा अपनी प्रवृत्तियों का विसर्जन करता है।

स्थान : काया की प्रवृत्ति का विसर्जन, कायोत्सर्ग या कायगुप्ति।

मौन : वाणी की प्रवृत्ति का विसर्जन, वचनगुप्ति।

ध्यान : मन की प्रवृत्ति का विसर्जन, मनोगुप्ति।

कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग का शाब्दिक अर्थ है शरीर का त्याग। शरीर के त्याग का अर्थ है शरीर की चंचलता का विसर्जन, शारीरिक ममत्व का विसर्जन यानी 'शरीर मेरा है' इस भावना का विसर्जन। प्रवृत्ति और ममत्व–ये दोनों शरीर और मन में तनाव उत्पन्न करते हैं। वह अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक व्याधियां उत्पन्न करता है। शरीर-शास्त्र की दृष्टि से शरीर की प्रवृत्ति और निवृत्ति के परिणाम इस प्रकार हैं–प्रवृत्ति (श्रम) के परिणाम–

1. स्नायुओं में स्नायु शर्करा कम होती है।
2. लेक्टिक एसिड स्नायुओं में जमा होता है।
3. लेक्टिक एसिड की वृद्धि होने पर उष्णता बढ़ती है।
4. स्नायुतंत्र में थकान आती है।

5. रक्त में प्राणवायु की मात्रा कम होती है।

निवृत्ति (आराम) के परिणाम–

1. एसिड का पुनः स्नायु शर्करा में परिवर्तन होता है।
2. लेक्टिक एसिड का जमाव कम होता है।
3. लेक्टिक एसिड की कमी से उष्णता में कमी होती है।
4. स्नायुतंत्र में ताजगी आती है।
5. रक्त में प्राणवायु की मात्रा बढ़ती है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी कायोत्सर्ग कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

स्नायविक तनाव और कायोत्सर्ग

मन, मस्तिष्क और शरीर में गहरा संबंध है। उनकी सामंजस्यविहीन गति से जो अवस्था उत्पन्न होती है, वही स्नायविक तनाव है। शरीर और मन की सक्रियता का संतुलन रहना, प्रवृत्ति की बहुलता या संकुलता, मानसिक आवेग–ये उसके मुख्य कारण हैं। हम जब-जब द्रव्यक्रिया करते हैं अर्थात् शरीर को किसी दूसरे काम में लगाते हैं और मन कहीं दूसरी ओर भटकता है तब स्नायविक तनाव बढ़ता है। हम भावक्रिया करना सीख जाएं, शरीर और मन को एक ही काम में संलग्न करने का अभ्यास कर लें तो स्नायविक तनाव बढ़ने का अवसर ही न मिले।

जो लोग इस स्नायविक तनाव के शिकार होते हैं, वे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य से वंचित रहते हैं। वे लोग अधिक भाग्यशाली हैं, जो इस तनाव से मुक्त रहते हैं।

स्नायविक तनाव और भय

तनाव उत्पन्न करने में भय का भी बड़ा हाथ है। अध्यात्मवादियों ने उसके सात प्रकार बतलाएं हैं–

1. इहलोक भय–मनुष्य को अपनी ही जाति अर्थात् मनुष्य से होनेवला भय।
2. परलोक भय–मनुष्य को विजातीय अर्थात् पशु आदि से होने वाला भय।
3. आदान भय–धन-विनाश का भय।

4. अकस्मात भय–काल्पनिक भय।

5. आजीविका भय–आजीविका कैसे चलेगी, इस प्रकार का भय।

6. मरण भय–मृत्यु का भय।

7. अश्लाघा भय–अपयश का भय।

ये भय मनुष्य के जीवन में व्याप्त रहते हैं। इनके द्वारा वह स्नायविक तनाव से बुरी तरह आक्रांत होकर अशांतिमय जीवन जीता है। जिसने अभय की आराधना की है, उसे कोई कष्ट नहीं होता। भयभीत व्यक्ति पल-पल में कष्ट पाता है। जिसने अभय की आराधना की है, वह जीवन में एक बार मरता है। भयभीत मनुष्य एक दिन में कई बार मरता है। भय और हिंसा में गहरा लगाव है। जहां भय है, वहां निश्चित रूप से हिंसा है। मन को अभय किए बिना अहिंसा हो ही नहीं सकती।

अनियंत्रित भय से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। मनोविज्ञान का सिद्धांत है कि रोग का भय जागृत होने पर मनुष्य स्नायु-विकार से ग्रस्त हो जाता है। वह दूसरों पर अत्याचार करने और उन्हें अपंग बनाने में रस लेता है।

येल विश्वविद्यालय ने भय से संबंधित कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। उन्हें पढ़कर हम समझ सकते हैं कि भय हमारे शरीर और मन को कितना प्रभावित करता है। भय से ये शारीरिक परिवर्तन देखे जाते हैं–दिल का धड़कना, नाड़ी का तेज चलना, मुंह या गला सूखना, कांपना, हथेलियों में पसीना आना और पेट का अंदर धंसना। मन पर भी गहरी प्रतिक्रियाएं होती हैं, जैसे-विस्मृति, मूर्च्छा और पीड़ा की तीव्र अनुभूति होना।

स्थानांग सूत्र में असामयिक मृत्यु के सात कारण बतलाए गए हैं। उनमें भयात्मक अध्यवसाय उसका एक निमित्त है।

रोग के भय से पीड़ा बढ़ जाती है। निर्भय रोगी की अपेक्षा भयाक्रांत रोगी को पीड़ा की अनुभूति कई गुना अधिक होती है। मानसिक चिकित्सकों ने रोग-पीड़ित व्यक्तियों पर शिथिलीकरण के प्रयोग किए। उनसे उनकी पीड़ा में बहुत अंतर आया। भय से स्नायविक तनाव बढ़ता है, उससे पीड़ा तीव्र हो जाती है और कायोत्सर्ग से वह कम होता है तब पीड़ा भी कम हो जाती है।

क्रोध, अभिमान, माया, लोभ, राग, द्वेष, घृणा, शोक आदि मानसिक आवेगों से भी स्नायविक तनाव बढ़ता है। कायोत्सर्ग से उन आवेगों का शमन होता है और फलतः स्नायविक तनाव अपने-आप दूर हो जाता है।

कायोत्सर्ग : तीन मुद्राएं

कायोत्सर्ग कैसे किया जाए? कायोत्सर्ग खड़ी, बैठी और सोई तीनों मुद्राओं में किया जा सकता है। खड़ी मुद्रा में कायोत्सर्ग करने की विधि यह है कि कायोत्सर्ग करनेवाला दोनों हाथों को घुटनों की ओर लटका दे, उन्हें ढीला छोड़ दे। पैरों को सम-रेखा में रखे और दोनों पंजों में चार अंगुल का अंतर रखे। शेष सारे अंगों को स्थिर रखे और शिथिल करे। किसी भी अंग में तनाव न रखे।

बैठी मुद्रा में कायोत्सर्ग करनेवाला पद्मासन या सुखासन में बैठे। हाथों को या तो घुटनों पर टिकाए या बांई हथेली पर दांई हथेली रख कर अंक में रखे। सब अंगों को स्थिर और शिथिल बना ले। सुप्त मुद्रा में कायोत्सर्ग करनेवाला पहले सीधा लेट जाए। पैर से लेकर सिर तक के अवयवों को पहले ताने, फिर क्रमशः उन्हें शिथिल करे। हाथों तथा पैरों को परस्पर सटाकर न रखे। श्वास-उच्छ्वास सम ले, किंतु लंबा ले। मन को श्वास-उच्छ्वास में लगा एकाग्र या विचार शून्य हो जाए।

मन को शांत व स्थिर करने के लिए शरीर को शिथिल करना बहुत आवश्यक है। प्रयत्न से चंचलता बढ़ती है। स्थिरता अप्रयत्न से आती है। शरीर उतना शिथिल होना चाहिए, जितना किया जा सके। वह प्रतिदिन आधा घंटा शिथिल हो सके तो मन अपने-आप शांत होने लगता है। शिथिलीकरण के समय मन पूरा खाली रहे, कोई चिंतन न हो, जप भी न हो। यह न हो सके तो 'ॐ अर्हम्' जैसे किसी शब्द का ऐसा प्रवाह हो कि बीच में कोई दूसरा विकल्प न आए। श्वास की गिनती करने से यह स्थिति सहज ही बन जाती है।

कायोत्सर्ग का कालमान

कायोत्सर्ग की प्रक्रिया कष्टप्रद नहीं है। उससे शारीरिक विश्रांति और मानसिक शांति प्राप्त होती है, इसलिए वह चाहे जितने लंबे समय तक किया जा सकता है। कम से कम पंद्रह-बीस मिनट तो करना ही चाहिए। कायोत्सर्ग में मन को श्वास में लगाया जाता है, इसलिए उसका कालमान श्वास की गिनती

से भी किया जा सकता है, जैसे सौ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग, दो सौ, तीन सौ, पांच सौ, हजार श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग आदि-आदि।

प्राचीन साहित्य में वर्णन आता है -'कायोत्सर्ग का कालमान कितना है?' उत्तर दिया गया–'जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट साठ हजार वर्ष।' एक व्यक्ति साठ हजार वर्ष तक कायोत्सर्ग कर सकता है। ऐसी स्थिति में शरीर की सारी प्रक्रियाएं बदल जाती हैं। सारे रसायन बदल जाते हैं। अंतःस्रावी ग्रंथियों के स्राव भी बदल जाते हैं, क्योंकि शरीर की सारी चंचलता कायोत्सर्ग की स्थिति में समाप्त हो जाती है। शरीर पूरी तरह से विदेहावस्था में चला जाता है।

कायोत्सर्ग का फल

कायोत्सर्ग का मुख्य फल है आत्मा का सान्निध्य प्राप्त करना। उसका गौण फल है मानसिक संतुलन, बौद्धिक विकास और शारीरिक स्वच्छता। मानसिक स्वच्छता, स्नायविक तनाव व कफ से उत्पन्न रोगों के लिए यह अमूल्य रसायन है।

आचार्य भद्रबाहु ने कायोत्सर्ग के पांच फल बताए हैं–

1. दैहिक जड़ता की शुद्धि-श्लेष्म आदि के द्वारा देह में जड़ता आती है। कायोत्सर्ग से श्लेष्म आदि दोष मिट जाते हैं। अतः उनसे उत्पन्न होने वाली जड़ता भी नष्ट हो जाती है।

2. बौद्धिक जड़ता की शुद्धि-कायोत्सर्ग से चित्त एकाग्र होता है। उससे बौद्धिक जड़ता नष्ट होती है।

3. सुख-दुःख-तितिक्षा-सुख-दुःख सहने की शक्ति प्राप्त होती है।

4. शुद्ध भावना का अभ्यास होता है।

5. ध्यान की योग्यता प्राप्त होती है।

शरीर से पैदा होने वाली बहुत सारी समस्याओं का समाधान है कायोत्सर्ग। मैंने देखा कि जिन लोगों ने कायोत्सर्ग का अभ्यास किया, उन लोगों ने आराम से जीवन जीया। कुछ लोगों को नींद कम आती है। वृद्धावस्था में या युवावस्था में जब आदमी अनेक समस्याओं से घिर जाता है तो भी नींद कम आती है। जो ज्यादा सोचते और चिंतन करते हैं, उन्हें भी निद्रा कम आती है। नींद न आने की बीमारी जिन्हें हैं, वे ही इसके कष्ट को समझ सकते हैं। करवटें बदलते हुए

रात बीत जाती है। उठते समय ऐसा लगता है मानो शरीर टूट रहा है। काम में मन नहीं लगता।

कायोत्सर्ग के द्वारा कितने ही अनिद्रा के रोगियों का उपचार किया गया है। गहरी नींद कई तरह की शारीरिक और मानसिक व्याधियों से छुटकारा दिला देती है। सीधे लेटकर मन को पैर के अंगूठे पर ले जाओ। उसे वहां पर केन्द्रित करो। आंखों से नहीं, मन से शरीर को देखना शुरू करो और देखते-देखते सिर तक आ जाओ, फिर सिर से देखना शुरू करो और पैर के अंगूठे तक जाओ। यह क्रम कई बार दोहराओ। अभ्यास के बाद कायोत्सर्ग सध जाएगा। कायोत्सर्ग में शर्त एक ही है कि शरीर हिले-डुले नहीं, निश्चेष्ट रहे। पूरी तरह से ढीला रहे। कुछ लोगों की यह आदत होती है कि थोड़ी देर भी शांति से बैठ नहीं सकते।

एक आदमी ने भूत की साधना की। भूत प्रकट हुआ। बोला–मुझे कोई काम बताओ, मैं चुपचाप बैठ नहीं सकता। काम दोगे तो ठीक है, अन्यथा मैं तुम्हें खा जाऊंगा। उस आदमी ने कहा–खेत की खुदाई, जुताई करनी है। भूत ने फावड़ा उठाया और दो बीघे खेत की आधे घंटे में खुदाई, जुताई कर दी। वापस आकर बोला–अब क्या करूं?

आदमी ने कहा–दूर से पानी लाना पड़ता है, दरवाजे पर कुआं खोद कर पानी निकाल दो। घंटे भर में कुएं की खुदाई कर डाली। आधे घंटे में पेड़ काट कर लकड़ियों का ढेर लगा दिया। जो भी काम मालिक बताता, कुछ ही देर में करके आ जाता और कहता मुझे काम दो। समस्या पैदा हो गई आदमी के लिए। काम नहीं देता है तो जान को जोखिम।

आखिर उसने एक उपाय सोचा। एक बड़ा-सा बांस मंगवाया और घर के सामने उसे गड़वा दिया। फिर भूत से कहा–अब तुम इस बांस पर चढ़ो और उतरो, अगला काम न मिले तब तक यही दिन भर तुम्हारा काम है' भूत ने आज्ञा का पालन किया, लेकिन यह तो कभी खत्म न होने वाला काम था। आखिर भूत ने हार मान ली और आदमी के पैर पकड़ लिए। बोला–मुझे मुक्त करो। मैं थक गया।

हर चीज की सीमा है। भूत और शैतान के लिए भी यह संभव नहीं है कि निरंतर प्रवृत्ति करता रहे। क्षण भर का ही सही, विश्राम तो उसे भी चाहिए। मन

को यह काम दीजिए, कायोत्सर्ग की स्थिति में पैर के अंगूठे तक जाओ और वहां से सिर की ओर वापस लौटो। आप देखेंगे कि मन जो बहुत चंचल है, वह भी थक कर नींद के आगोश में चला जाएगा।

एक बार शिविर में किसी भाई ने मुझसे पूछा कि कायोत्सर्ग संवर है या निर्जरा? मैंने कहा–दोनों हैं। शरीर की प्रवृत्ति को रोकना संवर है और मन की प्रवृत्ति शुभ है, इसलिए निर्जरा भी है। शोधन और निरोध दोनों हैं। साधना में दोनों जरूरी है। आंधी और तूफान के समय द्वार को बंद रखना जरूरी है, किंतु जो रेत और धूल आ चुकी, उसे निकालना भी जरूरी है।

कायोत्सर्ग में कष्ट क्यों नहीं?

व्यक्ति कायोत्सर्ग की ऊंची भूमिका में चला जाए तो बड़ी विचित्र स्थिति बनती है। जिनभद्रगणी ने एक ग्रंथ लिखा–कायोत्सर्ग शतक। कायोत्सर्ग के बारे में सौ से अधिक प्राकृत गाथाएं हैं। वहां कहा गया है कि कायोत्सर्ग की अवस्था में बाहर का प्रभाव कम हो जाता है। आज हमें आश्चर्य होता है कि भगवान महावीर ने अपने साधनाकाल में इतने मारणांतिक कष्ट कैसे सहन किए? दुनिया के बड़े और महान संतों और मनीषियों ने अपने साधनाकाल में आए कष्टों को कैसे सहन किया? लेकिन जब हमने कायोत्सर्ग के बारे में विचार किया तो पाया उन्होंने कष्ट सहा, यह तो हमारा अपना चिंतन है। उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ, यह है वास्तविकता। कायोत्सर्ग की गहराई में जाने के बाद शरीर को न तो किसी कष्ट का आभास होता है, न कायोत्सर्ग करने वाला कष्ट से बचने का कोई उपाय सोचता है।

कायोत्सर्ग की स्थिति में उतनी देर के लिए शरीर एक एंटीबॉडी का निर्माण कर लेता है। उस समय कोई चंडकौशिक शरीर के भीतर अपना सारा विष भी उड़ेल दे, तो वह निष्प्रभावी हो जाता है। महावीर के साथ ऐसा ही हुआ था। मच्छरों ने काटा, कानों में कीलें ठोंकी गईं, लेकिन महावीर तो एंटीबाडी विकसित कर चुके थे। उन पर सबकुछ व्यर्थ हो गया। कायोत्सर्ग भी उनका विलक्षण था। सोलह-सोलह दिन तक निश्चल अवस्था में खड़े रहकर उन्होंने कायोत्सर्ग किया था। ऐसे व्यक्ति को भला कौन-सी बाधा डिगा सकती है? प्रतिमाओं की साधना के क्रम में चार-चार दिन चारों दिशाओं की ओर मुंह

करके कायोत्सर्ग किया। यह विलक्षण तपश्चर्या है। बाहुबली तो बारह महीने तक कायोत्सर्ग की ही स्थिति में खड़े रह गए।

शक्ति सूक्ष्म शरीर की

अगर हम शारीरिक दृष्टि से विचार करें तो पाएंगे कि हमारे शरीर में एक और सूक्ष्म शरीर है। जो शरीर हमें दिखाई दे रहा है, यह स्थूल शरीर है, इस स्थूल शरीर के भीतर अदृश्य रूप में एक सूक्ष्म शरीर भी है। जब कायोत्सर्ग की गहराई में जाते हैं तो वह सूक्ष्म शरीर बाहर निकल जाता है। इस पर पश्चिम के वैज्ञानिकों ने काफी काम किया है और अब भी शोध हो रही है। कभी-कभी ऐसा होता है कि डॉक्टर ऑपरेशन कक्ष में ऑपरेशन कर रहा है। रोगी के मुंह में मास्क लगा है। पेट फाड़ा जा चुका है।

थोड़ी-सी डॉक्टर से त्रुटि हुई और धीरे से आवाज आई–डॉक्टर! यह भूल हो रही है। डॉक्टर अपने पास देखते हैं। दूसरा कोई नहीं, फिर कहां से आई यह आवाज? डॉक्टर तत्काल अपनी भूल सुधार लेता है। इस आवाज ने एक प्रश्न पैदा कर दिया। वह कौन था? जिसने नाजुक समय में भूल की ओर ध्यान दिलाया? निष्कर्ष यह आया कि रोगी का जो सूक्ष्म शरीर था, वह शरीर से बाहर खड़ा देख रहा था, जैसे ही भूल हुई, उसने डॉक्टर को बता दिया।

जब तक गहरी प्रवृत्ति है हमारा सूक्ष्म शरीर कार्यकारी नहीं बनता। हमारी बहुत सारी शक्तियां शरीर की अतिशय चंचलता की स्थिति में काम नहीं करतीं। जैसे ही शिथिलीकरण होता है, शरीर की वे सूक्ष्म शक्तियां अपना काम करने लगती हैं।

जैन मुनि के लिए दिन में अनेक बार कायोत्सर्ग करने का विधान है। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया–अभिक्खणं काउस्सग्गकारी। मुनि अभीक्ष्ण (बार-बार) कायोत्सर्ग करता है।

22. श्वास : एक विश्लेषण

प्राणी का एक लक्षण है श्वास। कोई जिंदा है या मर गया, उसकी कसौटी है श्वास। श्वास के द्वारा जीवित और मृत का ज्ञान होता है। श्वास चलता है तो जीवित है। श्वास बंद हो गया तो मृत्यु हो गई। कभी-कभी पता नहीं चलता तो अंतिम समय में लोग एक रूई का फोहा लेकर पता लगाते हैं। श्वास हर प्राणी में होता है। छोटे से छोटा प्राणी भी श्वास लेता है, पेड़-पौधे भी श्वास लेते हैं, देवता श्वास लेते हैं, नारकीय जीव भी श्वास लेते हैं और मनुष्य भी श्वास लेते हैं। श्वास जीवन का सामान्य लक्षण है।

श्वास और स्वास्थ्य

मनुष्य ने श्वास लेने की विधियों का विकास किया है। किसी पशु, किसी नारकीय जीव और देवता ने उनका विकास नहीं किया। सामान्यतः यह कहा जाता है कि जितना श्वास लिखा हुआ है, उतना आदमी को जीना है, पर यह बात पूरी ठीक नहीं है। कौन व्यक्ति दीर्घायु होता है? कौन व्यक्ति अल्पायु होता है? जो बहुत छोटा श्वास लेता है, उसकी आयु कम हो जाती है और जो लंबा श्वास लेता है उसकी आयु पूरी होती है, वह बीच में नहीं टूटती। लंबा श्वास लेने वाला दीर्घायु होता है। आयुष्य के साथ श्वास का बहुत गहरा संबंध है। मनुष्य ने लंबा श्वास लेना सीखा है और उसकी साधना की है। वह श्वास को लंबा लेता है।

सामान्यतः एक मिनट में पंद्रह श्वास आते हैं। एक मिनट में दो श्वास या एक श्वास लेने का अभ्यास हो और उससे आगे अभ्यास बढ़ाया जाए तो दो मिनट में भी एक श्वास आ सकता है। हमारे जीवन और स्वास्थ्य के साथ श्वास का गहरा संबंध है।

श्वास और आयु

समवायांग सूत्र और प्रज्ञापना सूत्र में प्रश्न उपस्थित किया गया है कि देवता कितने दिनों से श्वास लेते हैं? दोनों सूत्रों में एक माप बताया गया है। जितनी लंबी आयु है, उतने लंबे समय से श्वास लेते हैं यानी देवता पंद्रह दिन से एक बार श्वास लेते हैं। हम कल्पना नहीं कर सकते। आदमी के लिए पंद्रह दिन से एक बार श्वास लेना संभव नहीं है, किंतु देवता लेते हैं और उनकी आयु भी सागरोपम तक होती है। सांप की आयु लंबी होती है, वह कम श्वास लेता है। श्वास का संयम कर लेता है। कुत्ता बहुत छोटी आयुवाला होता है, क्योंकि वह बहुत जल्दी-जल्दी श्वास लेता है। अलग-अलग प्राणियों का अलग-अलग वर्णन किया गया है। आगम साहित्य में भी श्वास का बहुत महत्त्व बतलाया गया है।

श्वास और कायोत्सर्ग

साधना की दृष्टि से दो बड़े महत्त्वपूर्ण पहलू हैं। पहला पहलू है कायोत्सर्ग और दूसरा पहलू है अपने कषाय पर नियंत्रण। कोई दोष लग गया, प्रायश्चित्त करना है। प्राचीनकाल में प्रायश्चित्त की विधि कायोत्सर्ग करने की थी। कायोत्सर्ग करो, आठ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग यानी आठ लंबे श्वास लो और आठ श्वास छोड़ो। पचीस श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करो, एक लोगस्स के पाठ में पचीस श्वासोच्छवास होते हैं। ऐसे अठाइस पद हैं, पर पचीस श्वासोच्छ्वास तक कायोत्सर्ग किया जाता है। चंदेसु निम्मलयरा– यहां तक कायोत्सर्ग किया जाता है।

जब हम दैवसिक प्रतिक्रमण करते हैं तो उसमें सौ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग होता है, चार लोगस्स का ध्यान करते हैं। इसका मतलब है सौ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग। पाक्षिक प्रतिक्रमण में बारह लोगस्स का ध्यान करते हैं, तीन सौ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग और चातुर्मासिक पाक्षिक में बीस लोगस्स का और संवत्सरी में चालीस लोगस्स का ध्यान किया जाता है, किंतु सारा ध्यान श्वास के साथ किया जाता है। लोगस्स उज्जोयगरे एक श्वास में एक पद, फिर दूसरा श्वास लिया और दूसरा पद। विक्रम संवत् 2035 में पूज्य गुरुदेव का चातुर्मास गंगाशहर था। उस वर्ष संवत्सरी के दिन मैंने स्वयं प्रयोग किया। समय लंबा लगा, किंतु ध्यान इतना अच्छा जमा और आनंद का जो अनुभव हुआ, वह अनिर्वचनीय था। ऐसे ही लोगस्स का पाठ करना

एक सामान्य बात है, किंतु श्वास के साथ पाठ करने से बिल्कुल स्थिति बदल जाती है। हजार श्वास के साथ पाठ होगा। पांच सौ के साथ पाठ होगा, एक हजार बार लंबा श्वास लेने से सारा सिस्टम बदल जाएगा। सारे शरीर की स्थिति बदल जाएगी और साथ-साथ मन की स्थिति भी बदल जाएगी।

श्वास और मन

बहुत लोग आते हैं और अपनी समस्या रखते हैं कि मन टिकता नहीं है, भटकता रहता है। बात ठीक है मन तो भटकेगा, मन का स्वभाव ही चंचल है। चंचल स्वभाव के कारण वह इधर-उधर भटकेगा। जो बातें याद नहीं करनी चाहिए उन बातों को याद करेगा, कल्पना करेगा और चिंतन करेगा। यह अस्वाभाविक भी नहीं है। मन का तो यही काम है, पर मन पर अंकुश लगाना हमारा काम है। हम मन की चंचलता को कम कर सकते हैं। अगर माला को श्वास के साथ जोड़ दें तो मन की गति अपने आप कम हो जाएगी। योग में कहा जाता है–इन्द्रियाणां मनो नाथ! मनोनाथस्तु मारुतः।

इन्द्रियों का स्वामी है मन और मन का स्वामी है श्वास। अगर श्वास के साथ आपने मन को जोड़ दिया तो स्वामी के साथ मन को जोड़ दिया, सेवक स्वामी के साथ चलता है। वह आगे नहीं जा सकता। स्वामी के सामने उत्थान भी नहीं कर सकता। इन्द्रियों पर नियंत्रण करना है तो मन को वश में करना होगा। मन पर नियंत्रण करने का पहला प्रयोग है–उसे श्वास के साथ जोड़ दो।

बहुत सारे लोग नमस्कार महामंत्र का जाप करते हैं, कोई गायत्री का जप करता है, कोई और किसी का जप करता है, पर उनका मन एकाग्र नहीं होता, अनावश्यक बातें याद आती रहती हैं। आप मंत्र को श्वास के साथ जोड़ दें। एक श्वास लिया 'णमो अरहंताणं' के साथ, मन उसके साथ बंधा रहेगा। पांच पदों का पांच श्वास के साथ प्रयोग करो, मन उसके साथ जम जाएगा। मन की चंचलता को कम करने का, मन के भटकाव को कम करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन और प्रयोग है लंबा श्वास।

प्राणायाम

दूसरा प्रयोग है श्वास का संयम, प्राणायाम। यह भी एक श्वास का प्रयोग है। प्राणायाम का मतलब है प्राण का आयाम करना, संयम करना। कुछ

लोग अर्थ करते हैं प्राण का विस्तार करना। यह सही अर्थ नहीं है। प्राण का आयाम करना यानी श्वास को रोक देना। मन की चंचलता ज्यादा है तो पांच-दस सेकंड श्वास को रोक दें। एकदम एकाग्रता हो जाएगी, विकल्प आना कम हो जाएगा, विचार आना कम हो जाएगा। जिन लोगों का मन बहुत चंचल है, बहुत विचार आते हैं, विकल्प आते रहते हैं, कहीं मन रुकता नहीं है, वे श्वास संयम का, कुंभक का प्रयोग करें। मन एकदम शांत हो जाएगा। माला फेरने का, ध्यान करने का एक अच्छा प्रयोग है लंबा श्वास अथवा श्वास का संयम।

साधना का दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलू है कषाय को शांत करना, कषाय–क्रोध, मान, माया और लोभ–इनको उपशांत करना। हमें आवेगों को शांत करना है, इमोशन्स पर कंट्रोल करना है, भावों पर कंट्रोल करना है तो उसका उपाय है श्वास। क्रोध ज्यादा आता है, लंबे श्वास का प्रयोग करो, क्रोध कम हो जाएगा। एकदम तेज क्रोध आया, पारा चढ़ गया, आधा मिनिट के लिए नाक को बंद कर दो, श्वास का संयम करो, क्रोध का पारा उतर जाएगा। यह दीर्घश्वास या श्वास का संयम, क्रोध को शांत करने का बहुत अच्छा उपाय है। केवल क्रोध ही नहीं, आवेग और आवेश के समय हमारे श्वास की संख्या बढ़ जाती है। सामान्यतया हमारे श्वास की संख्या पंद्रह रहती है। गुस्सा आया, श्वास की संख्या बीस हो जाएगी। थोड़ा और तेज है तो पचीस-तीस हो जाएगी और ज्यादा तेज है तो चालीस हो जाएगी और बढ़ते-बढ़ते आवेश के अनुसार श्वास की संख्या साठ तक चली जाएगी। एक मिनट में श्वास की संख्या साठ होने पर जीवनी शक्ति का ह्रास होता है, हमारी शक्तियों का ह्रास होता है।

जितने आवेग हैं–क्रोध का आवेग, अहंकार, लोभ, भय, कामवासना का आवेग, सब में श्वास की संख्या बहुत बढ़ जाती है। इससे रोग-प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है, तनाव बढ़ता है। तनाव बढ़ने से शरीर की सारी क्रियाएं और रक्तसंचार, हृदय की गति आदि सब तंत्र प्रभावित होते हैं। इससे बीमारी को एक निमंत्रण मिल जाता है। आवेग का अधिक होना और श्वास की संख्या का बढ़ना रोग को आमंत्रण देना है।

श्वास संयम : एक शक्ति

यदि कषाय पर विजय पाना है तो श्वास की संख्या को कम करने का अभ्यास करना होगा, लंबे श्वास का अभ्यास करना होगा। जो लंबा श्वास

लेने लग जाएगा, उसको ज्यादा क्रोध नहीं आएगा, उत्तेजना नहीं आएगी, अहंकार भी नहीं सताएगा, लोभ भी नहीं सताएगा, भय और कामवासना भी कम हो जाएगी। कषाय को शांत करने का बहुत बड़ा साधन है श्वास का संयम, इसीलिए साधना के क्षेत्र में श्वास का बहुत बड़ा महत्त्व रहा है। बड़े-बड़े साधु, संन्यासी और तपस्वी समाधि लेते थे। समाधि का मतलब है श्वास को रोककर बैठ जाना। श्वास को रोक लिया, एक दिन, दो दिन, दस दिन, बीस दिन अथवा महीना भर तक श्वास नहीं लिया। साधना करने के बाद ही इस स्थिति तक पहुंच सकते हैं। उनको ऑक्सीजन की भी ज्यादा जरूरत नहीं रहती।

श्वास रोकने पर शरीर की ताकत भी बढ़ जाती है। बहुत सारे लोग प्रयोग करते हैं, वे लेट जाते हैं और वाहन को ऊपर से निकाल देते हैं, ट्रक को छाती पर से निकाल देते हैं। सामान्यतया ट्रक का भारी भरकम चक्का छाती पर से निकले तो हड्डियों का चूरा-चूरा हो जाता है, पर उस व्यक्ति के कुछ भी नहीं होगा।

जिसने साधना से अपने श्वास को रोक लिया। अब उसके ऊपर से कुछ भी जाए, उसको हानि नहीं होती। मैंने स्वयं देखा, गुरुदेव सरदारशहर में विराज रहे थे। प्राणायाम के विशेषज्ञ आए। हमने बातचीत की। उन्होंने कहा–मैं आपको एक प्रयोग दिखाना चाहता हूं।

मैंने कहा–दिखाओ। उसने श्वास संयम का प्रयोग किया और अपने दोनों हाथों को एक-दूसरे से मिलाकर ऊपर उठा लिया। उसने कहा–सामने इतने शक्तिशाली युवक बैठे हैं। ये चाहें तो मेरे हाथों पर लटक जाएं या उन्हें नीचा कर दें। एक युवक उठा। बहुत प्रयत्न किया, कुछ नहीं हुआ, तीन-चार युवक आए, किंतु वह साधक टस से मस भी नहीं हुआ। एक भी युवक उसके हाथों को नीचे नहीं कर सका। यह ताकत श्वास संयम से प्राप्त होती है। जब श्वास रोक लिया जाता है तो शरीर में अतिरिक्त ऊर्जा वहां पैदा हो जाती है।

श्वास रोकने की भी कला है और श्वास लेने की भी कला है। श्वास दीर्घायु का कारण बनता है। लंबा श्वास और श्वास का संयम स्वास्थ्य का हेतु बनता है। बहुत सारी बीमारियां छोटे श्वास लेने के कारण होती हैं। लंबा श्वास लें, बहुत सारी बीमारियां अपने आप ठीक होने लग जाती हैं। स्वास्थ्य का हेतु है श्वास। मन की चंचलता को कम करने का हेतु है लंबा श्वास। एकाग्रता की

साधना का बहुत बड़ा साधन है लंबा श्वास अथवा श्वास का संयम। लंबा श्वास कषाय को मंद करने का सर्वोत्तम उपाय है।

बहुत लोग श्वास लेना नहीं जानते। बहुत छोटा श्वास लेते हैं। प्रेक्षाध्यान में कायोत्सर्ग का प्रयोग कराया जाता है। सीधे लेट गए, शिथिलीकरण कर लिया, इतना ही नहीं, उसमें श्वास का भी ध्यान देना है कि श्वास कितना आ रहा है? कैसा आ रहा है? उसको इतना लंबा कर दें कि लेटे-लेटे एक मिनट में एक श्वास आने लग जाए तो कायोत्सर्ग बहुत अच्छा हो जाएगा और कायोत्सर्ग का पूरा लाभ भी मिलेगा।

कायोत्सर्ग के बारे में कहा गया–सव्व दुःखविमोक्खणट्ठं काउस्सग्गं– कायोत्सर्ग सब दुखों से छुटकारा दिलाने वाला है, पर कब, जब उसके साथ ममत्व का विसर्जन और दीर्घश्वास का प्रयोग हो या श्वास का संयम अथवा कुंभक करने का अभ्यास हो। शक्ति के अनुसार श्वास को रोकने का अभ्यास करें। बहुत चंचलता है, बेचैनी है, उदासी आ रही है तो दस सेकंड के लिए, बीस सेकंड के लिए जितना सुविधा से रोक सकें श्वास को रोक कर देखें तो लगेगा विचार एक साथ गायब हो जाते हैं और बड़ी शांति का अनुभव होता है। कभी-कभी दीर्घश्वास वातानुकूलन का काम कर देता है।

श्वास और संकल्प

हम श्वास का मूल्यांकन करें। दुनिया का प्रत्येक प्राणी श्वास लेता है, पर श्वास लेने की कला का विकास मनुष्य ने किया है। उसने विभिन्न क्षेत्रों में उसका उपयोग किया है, प्रयोग किया है। आपको कोई संकल्प करना है, संकल्प को सिद्ध करना है तो सोते समय संकल्प करो और लंबा श्वास लेकर श्वास को रोको। उस अवस्था में आपका संकल्प भीतर-ही-भीतर पुष्ट होता चला जाएगा। वह संकल्प सिद्ध भी हो जाएगा। हनुमान के लिए आता है पवन पुत्र। वास्तव में इसको प्रतीक मानें तो पवन पुत्र का मतलब है श्वास का पुत्र। हनुमान ने श्वास की साधना की थी। वे एक शक्तिशाली देवता के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। आज जहां भी शक्ति का प्रश्न है वहां सबसे पहले बजरंगबली हनुमान जी का नाम आता है। क्यों आता है? वे पवन पुत्र हैं, उन्होंने श्वास की साधना की, श्वास का अभ्यास किया। उनका श्वास सिद्ध

हो गया, उनकी ऊर्जा जागृत हो गई। यदि हम दिन में दो बार, तीन बार दस-दस मिनट दीर्घश्वास लेने का अभ्यास करें तो शायद स्वभाव बदल जाएगा। आवेश ज्यादा आता है उसमें कमी आ जाएगी, मानसिक शांति का अनुभव होगा और शरीर के भीतर एक सुख का प्रकंपन पैदा हो जाएगा। दिन में जब भी याद आए लंबा श्वास लेना शुरू कर दें। चाहे चलते समय, चाहे चिंतन के समय, चाहे बातचीत करते समय, श्वास का प्रयोग करें, सारी स्थिति बदल जाएगी।

श्वास और मानसिक शांति

पूज्य गुरुदेव दिल्ली में विराज रहे थे। उस समय वित्त मंत्री के साथ बहुत अच्छा संपर्क हो गया। एक दिन वे आए। उन्होंने प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करने की भावना व्यक्त की। उन्हें प्रयोग कराया गया। अच्छा प्रयोग किया। उसके बाद पूज्य गुरुदेव जैन विश्व भारती में विराज रहे थे, वहां दर्शन करने आए। गुरुदेव ने पूछा–आपका प्रेक्षाध्यान का प्रयोग कैसे चल रहा है? उन्होंने कहा–बहुत अच्छा चल रहा है, फिर उन्होंने बताया–मैं जब यात्रा करता हूं, वायुयान में बैठता हूं, लंबा श्वास लेना शुरू कर देता हूं। लंबे समय तक प्रयोग करता हूं।

मेरे मित्र कहते हैं–तुम निकम्मे आदमी हो। न पढ़ते हो, न लिखते हो, न बातचीत करते हो। निठल्ले बनकर बैठ गए। मैं उनको कहता हूं–मैं तो काम कर रहा हूं, तुम सारे के सारे निकम्मे हो। उन्होंने बताया–प्रेक्षाध्यान के प्रयोग से मुझे बहुत अधिक शांति मिली है। मुझे प्रतिश्याय भी रहता था, वह भी मेरा ठीक हो गया। मेरा स्वास्थ्य ठीक हो गया और मानसिक शांति का भी अनुभव हो रहा है।

भीतर की शक्ति जगाने का प्रयोग

जिन लोगों ने दीर्घश्वास की साधना का अभ्यास किया, उनकी स्थिति में परिवर्तन आया है। विशेष साधना करने वाले लोगों को श्वास का संयम ज्यादा करना होता है। हमारे मुनि महाप्राण ध्यान की साधना करते थे। महाप्राण ध्यान में एक महीना, दो महीना श्वास को रोक दिया जाता था। उस समय वे बिल्कुल निष्प्राण अवस्था में रहते थे। पता ही नहीं लगता कि साधक जिंदा है या मृत है। इसका लाभ यह होता कि आंतरिक ज्ञान का विकास हो जाता और आंतरिक शक्ति का विकास हो जाता। जैन परंपरा में महान आचार्य हुए हैं भद्रबाहु स्वामी। उन्होंने बारह वर्ष तक महाप्राण ध्यान की साधना की थी। पुष्यमित्र ने भी लंबे समय तक यह साधना की तथा और भी अनेक आचार्यों ने महाप्राण ध्यान की

साधना की। श्वास को इतना लंबा कर दिया या इतना रोक दिया कि बाहर की क्रिया बंद हो गई और भीतर की शक्तियों का जागरण शुरू हो गया।

श्वास के विभिन्न प्रयोग

हम मनुष्य के स्वरूप को जानने का प्रयत्न करते हैं। उस स्वरूप का एक अंग है श्वास की विद्या का विकास। मनुष्य ने एक विशेष चेतना का विकास किया है और वह है श्वास की चेतना। मनुष्य यह जानता है कि श्वास कैसे लेना है? छोटा श्वास लेना है या बड़ा? यह ज्ञान पशु में नहीं है। पशु आज से हजारों वर्ष पहले जैसा श्वास लेता था, आज भी वैसा ही ले रहा है।

मनुष्य ने इस विद्या का विकास किया। वह जब चाहे तब श्वास के द्वारा अपनी स्थिति को बदल सकता है। श्वास के सैकड़ों प्रयोग हैं। पाचन कमजोर है। भोजन के बाद आहार पचाने के लिए दवाई का अपना प्रभाव होता है, दुष्प्रभाव भी होता है, प्रतिक्रिया भी होती है। उसके लिए श्वास का प्रयोग करें। भोजन किया, लेट गया। आठ श्वास सीधे लेट कर लिया। दाएं पार्श्व से लेट गया, बाएं नथुने से सोलह श्वास लिया और फिर बाएं पार्श्व से लेट गया। दाएं नथुने से बत्तीस श्वास लिया। आठ, सोलह और बत्तीस श्वास का प्रयोग है। इससे पाचन की समस्या का समाधान हो जाता है।

इसके अतिरिक्त भी अनेक प्रयोग हैं—गर्मी है, गर्मी को बदलना है। सर्दी है, सर्दी को बदलना है। स्वर का परिवर्तन किया, अनुभूति में परिवर्तन आ जाएगा। इस श्वास के आधार पर प्राणायाम की विद्या का विकास हुआ और स्वर विद्या का विकास हुआ। स्वरोदय की विद्या बहुत बड़ी विद्या रही है।

आपको किसी बड़े आदमी से बात करना है। कौन-सा श्वास चलना चाहिए, बाएं नथुने का चले या दाएं का चले?

आपको किसी को आदेश देना है, अपनी बात मनवानी है, कौन-सा श्वास चलना चाहिए? आपको किसी की नियुक्ति करनी है तो कौन-सा चलना चाहिए?

अनेक प्रयोग हैं, जिनके साथ श्वास का, स्वर विद्या का संबंध है। मनुष्य ने अपने ज्ञान के द्वारा श्वास का प्रयोग अनेक क्षेत्रों में किया और उससे लाभ भी उठाया।

श्वास साधन है संवर और निर्जरा का

कुछ लोग कहते हैं श्वास लेने में कौन-सी निर्जरा होगी, कौन-सा संवर होगा? श्वास का संयम राग-द्वेष को कम करने का बहुत बड़ा साधन है। राग-द्वेष को कम करने का जो साधन है, क्या उससे संवर नहीं होगा, निर्जरा नहीं होगी? सबकुछ होगा। हमारी मन की स्थिति को, कषाय की स्थिति को ठीक करने का यह सबसे बड़ा साधन है, फिर संवर और निर्जरा का प्रश्न कहां अटक गया।

श्वास सम्यक् लेना निर्जरा का बहुत बड़ा साधन है और श्वास का निरोध करना संवर का बहुत बड़ा साधन है, इसलिए मनुष्य को अपने स्वरूप का संबोध करते समय श्वास को समझना चाहिए, श्वास विद्या को समझना चाहिए और श्वास का समय-समय पर प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करने वाला शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक सब दृष्टियों से लाभ उठा सकता है।

शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और भावनात्मक स्वास्थ्य की त्रिवेणी में स्नान कर सकता है और अपने जीवन का परिष्कार कर सकता है। जैसे नमस्कार महामंत्र को समझना है, उसके साथ श्वास को भी समझना है। महामंत्र कैसे जपें और महामंत्र को जपते समय कैसा श्वास लें–दोनों जुड़ी हुई बातें हैं, इसलिए श्वास का मूल्यांकन करें और सही ढंग से श्वास लेने का अभ्यास करें।

23. रूपांतरण का उपाय : लेश्याध्यान

एक आदमी दूसरे आदमी से मिलता है तो आकृति सामने आती है। वे परस्पर एक दूसरे की आकृति को देखते हैं। आकृति के आधार पर बहुत कुछ निर्णय लिया जा सकता है। प्रकृति को भी जाना जा सकता है। किस आदमी की क्या प्रकृति है, किसका कैसा स्वभाव है–इसे जाना जा सकता है। आकृति में जो लोग केवल चमड़ी, रंग-रूप को देखते हैं, वे प्रकृति की पहचान नहीं कर सकते। प्रकृति की पहचान वे कर सकते हैं, जो आकृति के आस-पास होने वाले आभामंडल को देख सकते हैं।

आभामंडल कैसा है? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। हमारे भाव आभामंडल का निर्माण करते हैं। भीतर जैसे भाव हैं, वैसा ही आभामंडल बन जाता है। हम भाव को नहीं देख सकते, भाव भीतर बहुत गहरे में है। बहुत सूक्ष्म है। उसे नहीं देखा जा सकता, उसके कार्य को देखा जा सकता है।

एक आदमी कमरे में बैठा है। वह सूरज को नहीं देख सकता, किंतु सूरज का प्रकाश कमरे में आता है, उसे पता लग जाता है कि सूरज उग गया है। ठीक वैसे ही आकृति को देखकर हम भाव का पता लगा सकते हैं कि इस व्यक्ति के भीतर भाव क्या है? प्रकृति के साथ भाव जुड़ा हुआ है। इसका भाव कैसा है? वह हम आकृति के आधार पर कह सकते हैं। आकृति के आधार पर एक विद्या का विकास हुआ, जिसका नाम है–फेस रीडिंग यानी आकृति को देखकर और ललाट की रेखाओं को देखकर भविष्यवाणी की जा सकती है। यह एक बहुत बड़ा विज्ञान है।

आभामंडल

प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करने वाले व्यक्ति के लिए जरूरी है आभामंडल का ध्यान करे। व्यक्ति सामने आए, पता लग जाएगा, इसका आभामंडल कैसा

है? आभामंडल के आधार पर भावों का पता लगेगा कि इसका भाव काला है, नीला है, कापोत रंग का है, चमकते हुए तैजस वर्ण का है, पीले रंग का है या सफेद रंग का है। इसी आधार पर छह लेश्याओं का विधान किया गया–कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या। जैन आगमों में लेश्याओं का विवरण मिलता है। लेश्या का भी बहुत बड़ा विज्ञान है।

ध्यान करने वाला व्यक्ति अगर लेश्या को नहीं जानता तो वह पूरी ध्यान की बात को नहीं समझ सकता। हमारी लेश्या कौन-सी है, इसे जानना जरूरी है, क्योंकि भाव तक जाए बिना व्यक्तित्व का परिवर्तन नहीं होता, चेतना का रूपांतरण नहीं होता। जो अशुभ भाव हैं, निषेधात्मक भाव हैं, उनसे मुक्ति नहीं मिल सकती। बहुत लोग कहते हैं कि हम बैठे हैं, कोई बात नहीं हुई, बैठे-बैठे बुरे भाव आ जाते हैं। यह समस्या बहुत लोगों की है। कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं कि जिनके सामने यह समस्या न हो।

प्रश्न है–बुरे विचार और बुरे भाव आते रहते हैं। क्यों आते हैं? इसका कारण साफ है कि जब-जब अशुभ लेश्या के परमाणु व्यक्त होते हैं, हमारे भाव बुरे बन जाते हैं और जब-जब शुभ लेश्या के परमाणु व्यक्त होते हैं, हमारे भाव शुभ बन जाते हैं। प्रथम तीन लेश्याओं के रंग अंधकारयुक्त हैं। जब ये रंग आते हैं, भाव स्वतः ही निषेधात्मक बन जाते हैं, प्रकाश के रंग जब आते हैं, हमारे भाव विधायक बन जाते हैं, दृष्टिकोण विधायक बन जाता है, रचनात्मक बन जाता है।

लेश्या और भाव

मनुष्य में दोनों प्रकार के भाव होते हैं–सकारात्मक भाव और नकारात्मक भाव। लेश्या का सारा सिद्धांत भावों पर आधारित है। लेश्या परिवर्तन के द्वारा भाव का परिवर्तन किया जा सकता है अथवा भाव परिवर्तन के द्वारा लेश्या का परिवर्तन किया जा सकता है। हमारी जैसी लेश्या है, वैसा भाव बन जाएगा और कभी-कभी जैसा भाव है, वैसी लेश्या बन जाती है। लेश्या चैतन्य की एक रश्मि है। जब बुरे रंग का ग्रहण होता है, व्यक्ति गुस्से में आ जाता है। हमें रंग के संदर्भ में वस्तु का चिंतन करना चाहिए। प्रतिकूल रंग का प्रयोग समस्या को आमंत्रण देता है और अनुकूल रंग का प्रयोग समस्या को समाहित करता है। लेश्या ध्यान भाव-परिवर्तन की अचूक औषध है।

दृष्टिकोण का परिवर्तन

सबसे बड़ी बात है पहले दृष्टिकोण बदलना चाहिए। जब तक हमारा दृष्टिकोण नहीं बदलता, भाव का परिवर्तन नहीं होता। भाव परिवर्तन के लिए दृष्टिकोण का परिवर्तन अत्यावश्यक है। एक बार पुलिस के व्यक्ति रास्ते में सबको हटाते जा रहे थे। रास्ता छोड़ो, रास्ता छोड़ो, कहने पर रास्ते से लोग हटते जा रहे थे। रास्ते में पहुंचा हुआ संत था, पर वह भिखारी के रूप में ही रह रहा था। उसे कहा गया–हट जाओ। बोला–क्यों? यह खुली जमीन है, इस पर सबका अधिकार है, यहां किसी का मकान नहीं है। यहां से हटाने का अधिकार किसने दिया? क्यों हटाते हो? पुलिस ने कहा–राजा आ रहा है, इसलिए सबको हटा रहा हूं। राजा की क्या विशेषता है? आप जानते नहीं हैं। अगर राजा नाराज हो जाए तो किसी भी आदमी को अपने देश से निकाल सकता है। अच्छा यह राजा की विशेषता है तो राजा को कह दो कि सबसे पहले मक्खी-मच्छर बहुत सता रहे हैं, इनको देश निकाला दे दो। यह मेहरबानी होगी, तब मानूंगा कि वास्तव में वह राजा है। आदमी भी, पुलिसवाले भी और राजकर्मचारी भी अवाक् रह गए। कैसा विचित्र भिखारी है?

फिर पूछा–बताओ और क्या विशेषता है? विशेषता तुम नहीं जानते। राजा जहां रहता है, वहां बहुत सुरक्षा प्रहरी रहते हैं और किसी के नहीं रहते। मेरी बात भी राजा को बता देना कि कैदी बनकर मत रहो, सुरक्षा तो कैदी की होती है। कैदी को जेल में डाल देते हैं और प्रहरी आगे खड़ा रहता है, वह भी बंदूक लिए। राजा कहां है, वह तो कैदी है। बोलो और क्या विशेषता है?

राजा मंदिर में भगवान की प्रार्थना करने के लिए जा रहा है। ऐसा है, तब तो वह भिखारी है। भिखारी के लिए मैं अपना रास्ता क्यों छोड़ूंगा? अभी भी इसके मन में मांग बनी हुई है, तब तो यह भिखारी ही है। भिखारी के लिए मुझे रास्ते से क्यों हटाते हो? सबने कहा–चलो, इसको छोड़ो। सारा दृष्टिकोण बदल गया। जहां एक व्यक्ति यह मानता है कि यह नाराज हो जाएगा तो पता नहीं क्या कर देगा, मुझे निकाल देगा, यह कर देगा, वह कर देगा, वहां भय पैदा हो जाता है। जहां यह है कि निकालने कि शक्ति किसमें है? मुझे कोई निकाल नहीं सकता, जहां यह चिंतन में एक अंतर आ गया।

आजकल बहुत लोग सुरक्षा में बड़ा अहं का अनुभव करते हैं, इसलिए कमांडो की मांग बढ़ रही है। यह एक मानदंड हो गया कि जिसके पास ज्यादा कमांडो है, वह ज्यादा बड़ा आदमी है। हमने दिल्ली में देखा, बहुत लोग आते थे, कमांडो भी आते थे। एक व्यक्ति जो कोई राजनेता नहीं था, पर किसी धर्म विशेष से जुड़ा हुआ था, पूरा लस्कर आता था। मन में आया कि यह क्यों? इसको क्या खतरा है? बस अपना एक मानदंड बना लिया था कि मेरे साथ इतने कमांडो और इतनी सुरक्षा की व्यवस्था चलती है। एक तो सुरक्षा उसकी होती है, जो बड़ा आदमी है। एक दृष्टिकोण यह है कि जिसके पास सुरक्षा है, वह कैदी है। आदमी को स्वतंत्र रहना चाहिए। उसका सारा दृष्टिकोण बदल गया। मांग करने वाला भिखारी होता है।

स्वामी वह होता है, जिसकी कोई मांग नहीं है, जिसकी चाह समाप्त हो गई। प्रेक्षाध्यान के द्वारा भावात्मक परिवर्तन होना चाहिए और ध्यान करनेवालों में भी विशेषतः जो प्रशिक्षक बनते हैं, उनकी बहुत बड़ी जिम्मेवारी है कि उन्हें कितना गंभीर योग का और अध्यात्म का ज्ञान होना चाहिए और प्रयोग के द्वारा अनुभव भी करना चाहिए।

प्रेक्षाध्यान आत्मानुभूति का प्रयोग है। आत्मानुभूति का अर्थ होगा– 'शुद्ध भाव की अनुभूति', भाव विशुद्धि। हमारा भाव कितना विशुद्ध रहता है। चौबीस घंटे में अगर व्यक्ति एक दिन का निरीक्षण करे कि नकारात्मक भाव कितना आता है और सकारात्मक भाव कितना आता है? फिर बदलने की बात आएगी। बदलने के लिए प्रयोग की बात आएगी। निश्चित ही व्यक्तित्व का रूपांतरण किया जा सकेगा।

स्वभाव को बदला जा सकता है। कहा जाता था कि स्वभाव नहीं बदलता? क्यों नहीं बदलता? हमारा औदयिक भाव होता है तो स्वभाव नहीं बदलता और जब चेतना बदल जाए, क्षायोपशमिक भाव आ जाए, स्वभाव बदल जाएगा।

बदलने के लिए लेश्याध्यान के सूत्र को पकड़ना है, अनुप्रेक्षा को पकड़ना है। ये दोनों परिवर्तन के सशक्त साधन हैं, इसलिए प्रेक्षा साधक को इन सब पर बहुत गंभीरता के साथ चिंतन, अध्ययन और अनुभव करना है।

24. चंचलता और एकाग्रता

ध्यान का प्रारंभ होता है। व्यवस्था का समापन होता है, ध्यान का नहीं। जो कृत होता है, उसका समापन होता है। तर्कशास्त्र का एक नियम है यत् यत् कृतकं, तत् तत् अनित्यम्। जो-जो कृतक होता है, वह-वह अनित्य होता है, जैसे–घड़ा। घड़ा बनाया, एक दिन फूट गया, किंतु अकृत का कभी अंत नहीं होता। ध्यान हमारा स्वभाव है। वह कृत नहीं होता। ध्यान किया नहीं जाता, होता है। ध्यान अकृत है, वह कभी हमसे दूर नहीं होता। अगर पूछा जाए ध्यान और आत्मा एक या दो। उत्तर होगा–जो ध्यान है, वह आत्मा है। जो आत्मा है, वह ध्यान है। जैसे ज्ञान को कभी आत्मा से अलग नहीं किया जा सकता, फिर ध्यान को अलग कैसे किया जा सकता है?

ज्ञान और ध्यान

ध्यान स्वयं ज्ञान ही है। ज्ञान और ध्यान में कोई ज्यादा अंतर नहीं है, सिर्फ अवस्था-भेद है। यत् चलं तत् चित्तम्, जो चंचल है, वह हमारा ज्ञान है और यत् स्थिरं तत् ध्यानम्। ज्ञान जब स्थिर बन गया, ध्यान हो गया। पानी तरल है और बर्फ ठोस है। क्या पानी और बर्फ दो है? जल की तरल अवस्था पानी है और सघन अवस्था बर्फ हो गई। ध्यान ज्ञानात्मक है, इसलिए वह आत्मा का स्वभाव है। उसको अलग नहीं किया जा सकता। चंचलता ध्यान नहीं है।

कहा जाता है कि मैं ध्यान करता हूं, वह हमारी व्यवहार की भाषा है। वास्तविक भाषा क्या होगी? ध्यान हो रहा है। कभी कहते हैं कि आज ध्यान करना शुरू किया, पर ध्यान में मन नहीं लगा, ध्यान अच्छा नहीं हुआ। इसका मतलब है तुम ध्यान कर रहे थे। अगर ध्यान का होना शुरू कर देते तो ध्यान हो जाता। एक बार मैं ध्यान में था। साध्वी पन्नाजी आई, पता नहीं चला। ध्यान

से उठा तब मैंने कहा–कब आ गई? बहुत देरी हो गई। ध्यान में बाहर का पता नहीं चलता। वास्तव में ध्यान आत्मा का स्वभाव है।

ध्यान सहज है, किंतु चंचलता ने उस शक्ति को दबा रखा है। दर्पण में प्रतिबिंब लेने की शक्ति है। कोई भी दर्पण के सामने जाकर खड़ा होगा, मुंह दिखाई देने लग जाएगा, किंतु दर्पण को हिलाते रहो तो मुंह दिखाई नहीं देगा। यदि कुछ दिखाई देगा तो टेढ़ा-मेढ़ा कभी-कभी दिखाई देगा। चंचलता ने प्रतिबिंब ग्रहण की शक्ति को दबा दिया। वैसे ही चंचलता ने हमारी सहज शक्ति को, ध्यान की शक्ति को दबा रखा है। बहुत लोग कहते हैं कि हमें आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता। साक्षात्कार अभी कहां से होगा? एक दिन का बच्चा और हम आशा करें कि ओलंपिक खेल की दौड़ में भाग लेगा। अभी तो उसने चलना ही शुरू नहीं किया, तुम दौड़ की बात करते हो।

साक्षात्कार आत्मा का

आत्मा का दर्शन कब होगा? आत्मा का साक्षात्कार कब होगा? राग-द्वेष की ऊर्मियां उछल रही हैं और वे मन को चंचल बना रही हैं। आत्मा पर ढक्कन आ गया, पर्दा और आवरण आ गया। पहले साधना करो कि राग-द्वेष की ऊर्मियां मन को चंचल न बनाएं। मन शांत रहे। आत्मा का दर्शन होना शुरू हो जाएगा। जिसका मन राग-द्वेष की तरंगों से तरंगित नहीं है, वह आत्मा का दर्शन कर सकता है, दूसरा नहीं कर सकता। सबसे पहले अपनी चंचलता को कम करने का प्रयत्न करें। यह जटिल विषय है। चंचलता कम नहीं होती।

कोई ध्यान करने बैठता है, एक लक्ष्य को लेकर बैठता है, एक शब्द को लेकर बैठता है, एक जप को लेकर बैठता है। पांच मिनट में इतने दूसरे विचार आ जाते हैं कि जिसे लेकर बैठा, वह तो ज्यादा टिका नहीं, कहीं चला गया। दूसरे-दूसरे विचारों का अंबार-सा लग गया। कोई नमस्कार महामंत्र का जप करता है या कोई गायत्री का जप करता है या कोई अन्य जप करता है। बीच में इतनी बातें याद आने लग गईं या इतनी कल्पनाएं आने लग गईं, इतने विचार आने लग गए कि व्यक्ति उनसे डर कर भाग जाएगा। दूसरे-दूसरे विचार आकर धमक जाऐंगे। शायद इसीलिए एक रूपक की भाषा में कहा गया कि खाली दिमाग शैतान का घर होता है यानी जो मंत्र जप करना था, वह तो कहीं खो गया और दूसरे-दूसरे विचार घुसने लग गए, शैतान घुसने लग गए।

क्रिया प्राणवान बने

हम एकाग्र कैसे बनें? इसका कोई ऐसा चामत्कारिक उपाय मिले कि जिस विचार को लेकर बैठें, उसी में तल्लीन रहें, दूसरा न आए। शायद इसके लिए भावक्रिया से बढ़कर कोई सुंदर उपाय नहीं है। एक आदमी भावक्रिया का प्रयोग शुरू कर देता है तो शायद मन की चंचलता कम करने की चाबी उसके हाथ में आ जाती है। भावक्रिया शब्द का अर्थ है जीवंत क्रिया। आदमी काम कर रहा है और मन कहीं दूसरी जगह भटक रहा है। उस काम के साथ मन जुड़ा हुआ नहीं है। वह भोजन कर रहा है और मन बाजार की यात्रा कर रहा है। कोलकाता, मुम्बई की यात्रा कर रहा है। वह खाना है द्रव्यक्रिया यानी निष्प्राण क्रिया, प्राणहीन क्रिया। आदमी भोजन कर रहा है, मन भोजन में लगा हुआ है तो वह जीवंत क्रिया है, प्राणवान क्रिया है। जो काम कर रहा है, मन भी उसी में लगा हुआ है।

हम स्वयं चिंतन करें कि माला जपने बैठते हैं, सामायिक करने बैठते हैं, उपवास किया है तो मन उसी में लगा रहता है या दूसरी जगह चला जाता है। अगर मन इधर-उधर चला जाता है तो वह क्रिया भावक्रिया नहीं होगी। मन की दिशा को कैसे बदलें? इसका अभ्यास शुरू करें। भावक्रिया हो, मन उसी में लगा रहे। यह ध्यान का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। जिस व्यक्ति ने इसका अभ्यास कर लिया, वह हमेशा जागरूक रहता है कि जो मैं करूं, मन उसी में लगा रहे। यह कठिन साधना है। कभी-कभी तो शायद ऐसा होता है कि आदमी दो-तीन मन से काम करने लग जाता है।

एक मन तो काम कर रहा है, दूसरा मन चलने की क्रिया कर रहा है। तीसरा मन घर के सदस्यों को याद करता है। इतना भटकाव हो जाता है कि बेचारा कुछ भी कर नहीं पाता। भावक्रिया का अभ्यास शुरू करें। रोटी का एक कौर खाएं और अभ्यास करें कि मैं रोटी खा रहा हूं, मेरा हाथ उठ रहा है, अब हाथ ऊपर आ गया, मुंह के पास आ गया। अब ग्रास भीतर जा रहा है और मन भी साथ-साथ जा रहा है। इस प्रकार अभ्यास करें, एकाग्रता बढ़ेगी। श्वास और मन साथ-साथ चले तो भावक्रिया होगी। मन की शक्ति बिखरेगी नहीं, चंचलता कम हो जाएगी और फिर वह ध्यान का रूप ले लेगी। हम चंचलता को कम करने का प्रयत्न करें। सबसे बड़ी उपलब्धि है–ज्ञान को ध्यान में बदल देना।

चंचलता

चंचलता कैसे कम हो? चंचलता भी जरूरी होती है। उसके बिना काम नहीं चलता। जीवन का व्यवहार चंचलता के बिना नहीं चलता। अगर मन एकदम एकाग्र हो गया तो आप भूल जाऐंगे कि कहां जाना है? चंचलता को कम करना प्रेक्षाध्यान का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। जिन व्यक्तियों ने प्रेक्षाध्यान का प्रयोग किया है, वे इस पर विशेष ध्यान केन्द्रित करें कि चंचलता को कैसे कम किया जाए? उसके लिए भावक्रिया का प्रयोग शुरू किया जाए। चौबीस घंटे न साधु ध्यान कर सकता है और न गृहस्थ। समय की सीमा है, किंतु अगर भावक्रिया का अभ्यास करें तो काम सफल हो जाएगा। सफलतापूर्वक जीवन जीने की आकांक्षा रखने वाले व्यक्ति को भावक्रिया का सूत्र मिल जाए तो स्वयं का और जनता का कल्याण हो सकता है।

25. मन को पकड़ने की चाबी

गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पूछा–भंते! तत्त्व क्या है? सत्य क्या है? भगवान ने उत्तर दिया–उप्पनेइ वा– उत्पन्न होता है, वह सत्य है। आदमी जन्म ले रहा है, नई-नई वस्तुएं बन रही हैं। सब उत्पन्न हो रहा है, यह सत्य है। फिर प्रश्न हुआ–पैदा ही पैदा होते रहेंगे तो सारा संसार भर जाएगा, स्थान भी नहीं मिलेगा, अवकाश भी नहीं होगा। तो उत्तर दिया–विगमेइ वा–नष्ट भी होता है। पहली सचाई है–जो उत्पन्न होता है। दूसरी सचाई है–जो नष्ट होता है। फिर प्रश्न हुआ–उत्पन्न हुआ, फिर नष्ट हुआ। पुनः उत्पन्न हुआ, नष्ट हुआ। यह कोरा चक्र चलता रहेगा, फिर बचेगा क्या? कुछ नहीं बचेगा। फिर उत्तर दिया–धुवेइ वा– जो ध्रुव रहता है। यह एक त्रिपदी है। इस त्रिपदी के आधार पर अनेकांत का विकास हुआ और संपूर्ण द्वादशांगी का विकास हुआ। वस्तु उत्पन्न होती है, नष्ट होती है और स्थायी रहती है।

स्थिर और अस्थिर तत्त्व

दुनिया दो भागों में विभाजित हो गई–एक स्थायी भाग और एक अस्थायी भाग। उत्पत्ति और नाश का चक्र चल रहा है। पर्याय का परिवर्तन हो रहा है। मूल तत्त्व कभी नष्ट नहीं होता। आत्मा स्थायी है। पांच अस्तिकाय स्थायी हैं। उनका कभी विनाश नहीं होता, किंतु पर्याय परिवर्तित होता रहता है। मनुष्य कोई स्थायी तत्त्व नहीं है। मनुष्य आत्मा का एक पर्याय है। आज वह आत्मा मनुष्य रूप में है। सौ वर्ष पहले वह कहां थी? सौ वर्ष के बाद कहां होगी? नरक में भी जा सकती है। तिर्यंच योनि में भी जा सकती है और देवता में भी जा सकती है।

दो तत्त्व हमारे सामने आ गए–एक स्थिर तत्त्व है और एक अस्थिर तत्त्व है। स्थिर तत्त्व है आत्मा। आत्मा कभी अनात्मा नहीं बनती, जीव कभी अजीव

नहीं बनता और अजीव कभी जीव नहीं बनता। यह स्थायी है, शाश्वत है, किंतु रूप-परिवर्तन होता रहता है।

मन स्थायी नहीं है

प्रश्न है मन अस्थिर क्यों होता है? उसको एकाग्र करने का साधन क्या है? इस पर विचार करें? मन स्वयं एक पर्याय है। स्थायी तत्त्व है हमारी चेतना। मन होता भी है, नहीं भी होता। एक मनुष्य है। मनुष्य के मन होता है और कभी वह मनुष्य नहीं था, चतुरिन्द्रिय था तो उसके मन का विकास नहीं था। मन कोई स्थायी तत्त्व नहीं है। मन की भी दो अवस्थाएं होती हैं–मन और अमन यानी की मन का न होना। मन हम पैदा करते हैं। जेनरेटर चलता है, प्रकाश होता है। बंद कर दिया, प्रकाश बंद हो गया। मन को हम उत्पन्न करते हैं। हम चाहते हैं तो मन को पैदा कर देते हैं, नहीं चाहते हैं तो मन को स्थगित कर देते हैं।

चेतना स्थायी रहती है। मन स्थायी नहीं है। इससे मन की एकाग्रता में बड़ी सुविधा हो जाएगी। चेतना का उपयोग जहां करें, वहां हो जाएगा। बंद कर दें तो नहीं होगा। हर आदमी जानता है कि पंखा चलता है तो ताड़ियां हिलती हैं। कोई कहे कि ताड़ियों को स्थिर करो। कैसे होगा? स्विच ऑन किया हुआ है। एक क्षण ऐसा आता है कि बिजली चली गई और पंखा बंद हो गया। कैसे हुआ? जो करंट आ रहा था, विद्युत का प्रवाह आ रहा था, वह बंद हो गया। ताड़ियां अपने आप स्थिर हो जाती हैं। जब करंट आए, तब पंखा चलेगा। हमें पकड़ना है उस करंट को जहां से विद्युत आ रहा है। मन को चंचल कौन बना रहा है? इस बात को पकड़ना है। जो मन को चंचल बना रहा है, उसे न पकड़ें और सीधा मन को पकड़ना चाहें, सीधा ताड़ियों को हाथ देकर स्थिर करें तो अंगुलियां कट जाएंगी, समस्या पैदा हो जाएगी। ताड़ियों को पकड़ने का प्रयत्न मत करो। ताड़ियों को स्थिर करने का प्रयत्न मत करो। मन बेचारा कुछ भी नहीं है। सामने एक कपड़ा हिल रहा है। कल तो नहीं हिल रहा था, आज हिल रहा है। आज ये पाल भी हिल रहे हैं। कल नहीं हिल रहे थे। अपने आप हिलते हैं। हवा तेज हो गई, हिलने लग गए। हवा कम हो तो हिलने बंद हो जाएंगे। ऐसे ही ताड़ियों में बिजली का प्रवाह है तो हिलने लग गईं और बिजली चली गई तो वे स्थिर हो गईं।

महत्त्वपूर्ण है काययोग

हम यह जानने का प्रयत्न करें कि मन को चंचल कौन बना रहा है? आगमों में योग की चर्चा की गई है। योग तीन होते हैं–मन योग, वचन योग और काय योग। हमारा शरीर काय योग है। यह सबसे प्रमुख है। मन प्रमुख नहीं है। हमने मन को प्रमुख बना लिया, इसीलिए बहुत सारी भूलें हो रही हैं, भ्रांतियां हो रही हैं। वास्तव में सबसे ज्यादा शक्तिशाली है हमारा काय योग। वही तो सबको चला रहा है। दिमाग ठीक है तो मन भी काम करता है और दिमाग ठीक नहीं है तो मन भी काम नहीं करेगा। शरीर योग सारे पुदगलों को ग्रहण करने वाला योग है। वे चाहे भाषा वर्गणा के पुदगल हों, चाहे श्वास वर्गणा के पुदगल हों, चाहे मनोवर्गणा के पुद्गल हों, सबको ग्रहण करने वाला है। अगर आप मन की एकाग्रता को सिद्ध करना चाहें तो सबसे पहले शरीर को स्थिर करें। काय की स्थिरता मन की एकाग्रता में निमित्त बनती है।

कायोत्सर्ग

चौबीसी में जयाचार्य ने इस बात पर बहुत अधिक बल दिया है। भगवान ऋषभ की स्तुति में भी लिखा–चेतन तन भिन लेखवी ध्यान शुक्ल ध्यावंदा– यह समझने का प्रयत्न करो कि चेतना अलग है और शरीर अलग है। जहां स्थिरता का प्रश्न आया, जयाचार्य ने श्रेयांस प्रभु की स्तुति में लिखा–

तन चंचलता मेटने पद्मासन आप विराज रे।

तन की चंचलता मिटेगी तो मन शांत होगा। कोई व्यक्ति मन की समस्या को सुलझाना चाहे तो उसे कायोत्सर्ग सीखना होगा। कायोत्सर्ग एक बहुत सुंदर पद्धति है। जो व्यक्ति कायोत्सर्ग करना सीख लेता है, अनेक समस्याओं को सुलझाने में सक्षम हो जाता है। जैन परंपरा में कायोत्सर्ग का उपक्रम चलता है। इन दो सौ, चार सौ वर्षों में कायोत्सर्ग को भुला दिया गया है।

हम दिल्ली में थे। दिगम्बर संप्रदाय के आचार्य विद्यानन्द जी हमारे बहुत अच्छे मित्र हैं। उन्होंने कहा–आप कायोत्सर्ग पर एक पुस्तक तैयार करें। वे प्रेक्षाध्यान के समर्थक भी हैं। सन 1994 की बात है। आचार्य विद्यानन्द जी अध्यात्म साधना केन्द्र में आए थे। वहां एक दिन रहे। उन्होंने गुरुदेव से कहा–आचार्य जी! आप और सारे काम बंद कर दें। केवल प्रेक्षाध्यान का

ही काम करें। उस बात पर उन्होंने बहुत बल दिया। यह महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। इससे समाज में बहुत परिवर्तन हो जाएगा। उनके अनुरोध को स्वीकार कर हमने कायोत्सर्ग पर एक पुस्तक तैयार करवाई। बहुत अच्छी पुस्तक आई है। कायोत्सर्ग कैसे करें? कायोत्सर्ग की विधि को अगर जान लें तो काफी मानसिक समस्याओं को सुलझा सकते हैं, शारीरिक समस्याओं को भी सुलझा सकते हैं।

गुरुदेव ने कायोत्सर्ग के संदर्भ में लिखा है–कायोत्सर्गे सुखं शयानः–मैं कायोत्सर्ग में सुख से सो रहा हूं। कोई व्याधि नहीं है। प्रवहतु सततं मनःप्रसत्तिः–मन की प्रसन्नता बढ़ रही है। मैं कायोत्सर्ग में आनंद की अनुभूति कर रहा हूं, शारीरिक और मानसिक व्याधियों को मिटाने के लिए समस्याओं को सुलझाने का यह एक अमोघ उपाय है। कायोत्सर्ग को हम जानते हैं, पर काम नहीं ले रहे हैं। बड़ा आश्चर्य है कि पास में संपदा है, उपयोग नहीं कर रहे हैं। कायोत्सर्ग की गहराई में जाएं तो समाधान भी अपने आप मिल जाता है। एकाग्रता समाधान देती है। अगर हम एकाग्र होना सीख जाएं तो बहुत अच्छा समाधान हमें मिल सकता है, पर मन की चंचलता इतनी है कि समाधान तक पहुंचाती नहीं है।

कायोत्सर्ग की संपदा को हम ठीक से समझ लें, उसका ठीक उपयोग करें तो काफी लाभ उठाया जा सकता है। आश्चर्य इस बात का है कि जैन है, महावीर का अनुयायी है और कायोत्सर्ग करना नहीं जानता, सामायिक करना नहीं जानता। क्या कायोत्सर्ग के बिना सामायिक भी अच्छी हो सकती है? शरीर की चंचलता है, फिर सामायिक अच्छी कैसी होगी? भिक्षु स्वामी की साधना के बारे में पूरी जानकारी लिखी हुई नहीं मिलती है, किंतु हमारा दृढ़ विश्वास है कि भिक्षु स्वामी और उनका शिष्य परिवार कायोत्सर्ग की बहुत बड़ी साधना करता था। कुछ मुनियों का इतिहास मिलता है। खेतसी जी स्वामी और हेमराज जी स्वामी के बारे में बताया जाता है कि ये लोग सर्दी के मौसम में एक प्रहर रात चले जाने के बाद खुले बरामदे में कपड़े खोल देते। नीचे थोड़ा चोलपट्टा रखते। एक-एक प्रहर तक खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करते। बिना साधना के कोई सिद्धि नहीं मिलती। यह तेरापंथ के विकास का आधार है। साधना से ही सारा काम हुआ है। अगर यह साधना नहीं होती तो ऐसा नहीं होता।

साधना की गहराई

गंगाशहर में वि.सं. 2035 में पूज्य गुरुदेव का चातुर्मास था। गुरुदेव हाजरी के लिए पधारे। मुझे कहा–अभी तुम आगम का काम करो, एक घंटा बाद आ जाना। हम लोगों ने एक घंटा काम किया। बाद में कार्यक्रम में पहुंच गए। जैसे ही मैं पहुंचा, गुरुदेव ने विषय परिवर्तन कर गीतिका शुरू कर दी–

स्वामीजी थांरी साधना री मेरुसी ऊंचाई।
मेरुसी ऊंचाई है सागर सी गहराई॥

गुरुदेव ने मुझे कहा–तुम बोलो। मैं खड़ा हुआ। मैंने कहा–एक पक्ष हमारा अज्ञात पक्ष है। भिक्षु स्वामी ने मर्यादानिष्ठा, आचारनिष्ठा, अनुशासननिष्ठा आदि के सूत्र दिए। यह बात हम जानते हैं, पर भिक्षु स्वामी ने ध्यान की, एकाग्रता की, कायोत्सर्ग की साधना की, इस बात को हम नहीं जानते। बिना साधना के इतना बड़ा कार्य नहीं हो सकता। उन्होंने आतापना ली, हम जानते हैं। नदी में गर्मी में लेट कर आतापना लेने जंगल में चले जाते। इस बात को तो हम जानते हैं, पर इस बात को नहीं जानते कि उन्होंने ध्यान की साधना की। जब उन्हें कहा गया कि इस पंचम आरे में दो घड़ी शुद्ध साधुपना नहीं पाला जा सकता, उस समय भिक्षु स्वामी ने आचार्यश्री रुघुनाथ जी से कहा–महाराज! दो घड़ी तो मैं श्वास रोक कर रह सकता हूं। कितनी कठिन बात कह दी। कितना मुश्किल काम है। यह बात कौन व्यक्ति कह सकता है, जिसकी साधना प्रबल है। हमारे सामने खोज का बहुत बड़ा विषय है–भिक्षु स्वामी की साधना की विधि क्या थी? वे कायोत्सर्ग कैसे करते थे? कैसे साधना करते थे?

कायिक स्थिरता

मन को समझना है तो अवश्य ही कायोत्सर्ग को समझने का प्रयत्न करें। शरीर की स्थिरता का अभ्यास करें। एक घंटा तक प्रतिमा की भांति बैठ जाएं। कठिन है, पर अभ्यास के द्वारा हो सकता है। एक बार जैन विश्व भारती में शिविर था। मुम्बई से प्रेक्षाध्यान शिविर में भाग लेने एक भाई आया। शिविर में उस समय प्रायः एक घंटा ध्यान का प्रयोग होता था। एक घंटा में उसने लगभग तीस-चालीस बार आसन बदला होगा। वहां बैठने का गद्दा था। उस प्लास्टिक था। उसकी खट-खट की आवाज आ रही थी। सब लोग परेशान हो गए। सोचा, उसे मनाही करनी पड़ेगी कि तुम शिविर में नहीं रह सकते।

उसको कहा–देखो, तुम ध्यान दो, तुम्हारा यहां रहना कैसे संभव होगा? दूसरे दिन साठ मिनट में एक बार भी आसन नहीं बदला। कायिक स्थिरता हो गई। काया की स्थिरता अगर सध जाती है तो मन को पकड़ने की चाबी हाथ में आ जाती है।

जो व्यक्ति मन की चंचलता को कम करना चाहता है, मानसिक समस्याओं को सुलझाना चाहता है, उसके लिए कायिक स्थिरता, कायोत्सर्ग प्रतिमा बहुत महत्त्वपूर्ण है।

26. अभ्यास करें भावना का

प्राचीनकाल से मनुष्य की जिज्ञासा रही है कि सत्य क्या है? आदमी मिथ्यावाद में ज्यादा जी रहा है, यथार्थ को कम पकड़ता है और सचाई को कभी-कभी झुठलाने का भी प्रयत्न करता है। एक व्यक्ति ने ठेकेदार से पूछा–मुझे दो मंजिला मकान बनाना है। पहली मंजिल में कितना खर्च होगा? कहा–दो लाख रूपये। दूसरी मंजिल में? एक लाख। ऐसा करो, पहली मंजिल को तो रहने दो। दूसरी मंजिल ही बना दो। यह है मिथ्यावाद, यथार्थ को नकारना। मनुष्य काल्पनिक जीवन ज्यादा जीता है, अयथार्थ का जीवन ज्यादा जीता है। वस्तुस्थिति पर कम ध्यान देता है, इसलिए सत्य की खोज निरंतर चले, यह आवश्यक है।

दुनिया की यथार्थता

हमारी दुनिया में सुख-दुःख दोनों चलते हैं। कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में केवल सुखी रहा हो ऐसा संभव नहीं है और निरंतर दुःखी रहा हो, ऐसा भी नहीं है। हम नारकीय जीवों को दुःखी मानते हैं, किंतु आगम साहित्य कहता है कि वे भी कभी-कभी सुख का अनुभव करते हैं। दुःख आने के अनेक कारण हैं। कुछ बाहरी परिस्थितियां आदमी को दुःख देती हैं, किंतु उनसे भी ज्यादा भीतरी कारण आदमी को दुःखी बनाते हैं, जैसे–मन की चंचलता, भावों की तीव्रता, संवेग आदि। ऐसी स्थिति में क्या ऐसा कुछ हो सकता है कि आदमी दुःख की स्थिति में भी सुखी रह सके। क्या यह संभव है? इस पर ध्यान दिया, चिंतन किया और खोज की। प्रयोग करने के बाद एक तत्त्व समझ में आया, वह है भावना। कोई भी व्यक्ति भावना की साधना करे तो वह भयंकर दुःख की स्थिति में भी सुखी रह सकता है।

संयोग के साथ वियोग निश्चित

भगवान महावीर ने एक अमोघ मंत्र दिया है बारह भावना का। इनमें महावीर की वाणी का सार है। कठिनाई आने पर, दुःख के क्षण आने पर व्यक्ति यदि भावना में चला जाए तो दुःख समाप्त हो सकता है। भावना सचाई पर आधारित है, यथार्थ पर आधारित है। एक संयोग से आदमी सुखी बनता है और उसका वियोग होने पर दुःखी बन जाता है। यह दुनिया की सचाई है। जहां संयोग है, वहां वियोग निश्चित होगा। वियोग होने पर आदमी बहुत दुःखी बनता है। इस स्थिति में यदि अनित्य भावना का गहरा अभ्यास हो, उसकी साधना हो तो शायद आदमी दुःखी नहीं बनेगा।

वह मानेगा कि अंतिम सचाई यही है–जहां संयोग है, वहां वियोग निश्चित है। जहां जन्म है, वहां मृत्यु निश्चित है। जिस क्षण संयोग हुआ, उसी क्षण वियोग साथ में शुरू हो गया। वियोग कोई एक दिन में नहीं होता। संयोग के साथ ही वियोग प्रारंभ हो जाता है। मृत्यु भी एक दिन में नहीं होती। जन्म के साथ-साथ मृत्यु चल रही है। जीने का पहला क्षण ही मृत्यु का भी पहला क्षण होता है। एक बच्चा दस वर्ष का हो गया, हम कहते हैं कि यह बच्चा दस वर्ष का हो गया और दूसरा पक्ष देखें तो जीवन के दस वर्ष समाप्त हो गए। ये भावना की जो सचाइयां हैं, उनका अभ्यास कराया जाए तो आदमी दुःख के क्षणों में भी सुखी रह सकता है। अनित्य, अशरण, एकत्व, अन्यत्व आदि बारह भावनाएं हैं। मैत्री, करुणा, प्रमोद और मध्यस्थ–ये चार भी इनके साथ जोड़ी गई हैं।

अभ्यास अनित्य भावना का

मैंने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा, मनोवैज्ञानिक साधनों से भी देखा तो लगा कि जीवन में सुखी रहने का भावना से बड़ा कोई उपाय नहीं है। केवल भावना का नाम जानने से नहीं होता, जिस व्यक्ति ने इनका अभ्यास कर लिया, वह दुःखी नहीं बनता। अभ्यास नहीं करने वाला दुःखी बन जाता है। ऐसे लोगों को भी देखा है, जिन लोगों ने भावना का अभ्यास किया है, कठिनाई के क्षणों में वे विचलित नहीं हुए। प्रेक्षाध्यान में एक प्रयोग है अनुप्रेक्षा का। भगवान महावीर के सामने इतनी कठिनाइयां आईं। उन्होंने उन कठिनाइयों को झेला। यह हम जानते हैं, पर इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं कि दीक्षा से पूर्व भगवान महावीर ने छह महीनें तक अनित्य भावना का अभ्यास

किया था। जो व्यक्ति एक भावना का छह महीनें तक अभ्यास कर लेता है, उसकी चेतना बदल जाती है, उसकी चेतना का रूपांतरण हो जाता है। ऐसी घटनाएं हमने साधु-साध्वियों में भी देखी है और श्रावकों में, गृहस्थों में भी देखी है।

आगम में एक शब्द आता है–भावियप्पा–भावितात्मा, वह आत्मा जो भावना से भावित है, वह मुनि, जो भावना से भावित है, सुख से रहता है और सुख से जीता है। जो मुनि भावना से भावित नहीं है, वह मुनि भी अंतिम समय में कभी आर्त्तध्यान में चला जाता है। उसे ऐसा लगता है मानो सब कुछ छूट रहा है, सब जा रहा है। अंतिम सचाई तो यही है कि सब छूटेगा, शेष कुछ नहीं रहेगा। इस सचाई को कोई बदल भी नहीं सकता, किंतु जो भावना से भावित है, वह दुःखी नहीं बनता। अगर आप कोई सुख का मंत्र खोजें तो भावना को समझने का प्रयत्न करें और भावना का अभ्यास करें।

एक सम्राट था। वह अपनी कमाई का खाता था, खजाने से धन नहीं लेता था। बहुत विचित्र बात है। मिश्रीमलजी सुराणा राणावास के थे। उनका परिवार संपन्न था, किंतु उनका धन से कोई संबंध नहीं था। बस रोज कुछ बनाते, बेचते। दूसरों से कुछ भी नहीं लेते। अपने श्रम का खाते। जिस दिन कार्य नहीं होता, उपवास, बेला, तेला भी कर लेते। यह हमने साक्षात् देखा है। बड़ा कठिन काम है। वह सम्राट ऐसा था कि रसोई भी महारानी बनाएगी। एक दिन रसोई बनाते समय महारानी का हाथ जल गया।

महारानी सम्राट के पास आई और बोली–महाराज! मेरा हाथ जल गया। खाना बनाने में बड़ी कठिनाई हो रही है। कुछ दिनों के लिए आप एक नौकरानी रख लें, जिससे वह रसोई बना दे। सम्राट बोला–तुम्हारी बात ठीक है। तुम्हारी कठिनाई को मैं समझता हूं, पर नौकरानी रखूं कैसे? पैसा कहां है? आपके पास पैसे की क्या कमी है? इतना बड़ा खजाना आपके पास है। सम्राट ने कहा–खजाना मेरा नहीं, जनता का है। मैं खर्च नहीं कर सकता। आज तो वह बात कल्पना-सी लगती है।

मेरा कुछ भी नहीं है

अगर आज इस प्रकार की मनोवृत्ति बन जाए तो पता नहीं दुनिया कितनी बदल जाए और सारी समस्याएं भी हल हो जाए। जनता का धन है। मैं जनता

के लिए खर्च कर सकता हूं, अपने परिवार के लिए खर्च नहीं कर सकता। यह हो गई भावना। सम्राट को लगता है कि मेरा कुछ भी नहीं है। बहुत पुरानी बात है। हम लोग दिल्ली में थे। गुरुदेव श्री तुलसी दूसरे स्थान पर विराज रहे थे। मैं किसी विद्यालय में प्रवचन करने के लिए गया। प्रवचन में मैंने साम्यवाद और संपत्ति का मोह और संपत्ति का त्याग आदि-आदि विषयों की चर्चा की। फिर अपने स्थान पर आया।

विद्यालय के कार्यक्रम में सरदारशहर के रामेश्वर टांटिया, जो प्रसिद्ध उद्योगपति थे, प्रवचन सुनने के लिए आए। प्रवचन सुनकर अपने घर गए। तत्काल ड्राइवर के साथ एक पत्र लिखकर भेजा। आज मैंने आपका प्रवचन सुना। उसमें आपने फरमाया–'यह धन मेरा नहीं है। बस मैं तो केवल काम में ले रहा हूं, उपयोग कर रहा हूं। आवश्यक है ऐसी चेतना जागे।' उसने लिखा–आज मुझे एक नया संबोध मिला है। मैं इसका अभ्यास करूंगा। बड़े-बड़े कारखाने हैं। करोड़ों की संपत्ति है, पर यह मेरी नहीं है। इस दृष्टि से मैं इसका उपयोग करूंगा। यह सब भावना के अभ्यास से हो सकता है।

अनुभव करें आनंद का

एक बार हमने एक प्रयोग किया कि पदार्थ दुःख नहीं है। दुःख अलग है, पदार्थ अलग है और समस्याएं अलग हैं। पूरे शिविर में उसी प्रयोग को किया। कुछ दिनों बाद एक भाई का पत्र आया और बाद में वह स्वयं भी आया। बोला–इस एक सूत्र ने मेरा जीवन बदल दिया। मैं बहुत दुःखी रहता था। मुझे सुखी बना दिया। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि अगर आप इस सुख-दुःखात्मक द्वंद्ववाली दुनिया में कोई सुख का स्थायी मंत्र खोजना चाहते हैं, जिससे हर स्थिति में आनंद का अनुभव कर सकें, कठिनाइयों में भी सुखी रह सकें, तो वह है भावना का अभ्यास।

ये सोलह भावनाएं हैं। इन भावनाओं में से एक या दो का ही अभ्यास शुरू करें। कम-से-कम आधा घंटे रोज दो महीना, चार महीना तक अभ्यास करें, चेतना का रूपांतरण होगा, संस्कार बदलेगा। मानसिक और भावनात्मक दुःख की दुनिया में और संयोग-वियोग की दुनिया में अगर कोई स्थिर रहना चाहता है तो भावना के सिवाय कोई उपाय नहीं है। सत्य की खोज करना है

तो भी भावना को समझने का प्रयत्न करें। प्रवचन होते हैं, लोग पढ़ते हैं, परंतु वह अधूरी बात है।

प्रवचन में जो सुनते हैं, उसका अभ्यास करें, तब तो प्रवचन की सार्थकता हो जाती है, पर अभ्यास के बिना परिवर्तन नहीं होता। अगर अभ्यास जुड़ जाए तो स्थायी परिवर्तन हो सकता है, इसलिए अभ्यास यह करें कि पढ़ना भी है और प्रयोग भी करना है। अध्ययन और प्रयोग दोनों बातों पर ध्यान देना है। हमें पढ़ना है और जो पढ़ा है, उस पर मनन करना है, अभ्यास करना है। शायद वह ज्ञान सबके लिए चिरस्थायी और आत्मा को आह्लाद देनेवाला बन सकेगा।

27. मैं अकेला हूं

जैन दर्शन का प्रसिद्ध सिद्धांत है अनेकांत। अनेकांत शब्द 'न एकांत = अनेकांत' और 'अनेक + अंत = अनेकांत'–इन दोनों विधियों से निष्पन्न हो सकता है। एक अकेला होता है। दो से अनेक शुरू हो जाते हैं। इस सचाई के आधार पर व्याकरण शास्त्र में एकवचन और बहुवचन बना। प्राकृत और अंग्रेजी में दो ही वचन होते हैं–एकवचन और बहुवचन। इनमें द्विवचन नहीं होता। संस्कृत में विकास किया गया–एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। एक के लिए एकवचन। दो है तो द्विवचन। ज्यादा है तो बहुवचन। एक और दो या एक और बहु हर स्थिति में हमारे सामने रहता है। कोई पूछता है घर में कौन है? मैं अकेला हूं और बहुत होते हैं तो कहते हैं हम अनेक हैं। इस विषय पर दार्शनिकों ने चिंतन किया। समाजशास्त्रियों ने भी चिंतन किया। अकेला व्यक्ति है, बहुत मिलते ही समाज बन गया।

व्यक्ति और समाज

व्यक्ति और समाज की समस्याओं पर विचार किया गया। व्यक्ति क्या है? समाज क्या है? वहां समाजशास्त्र के सिद्धांत स्थापित हुए। यह चिंतन कम हुआ है कि व्यक्ति के साथ समाज का क्या संबंध होना चाहिए? अध्यात्म शास्त्र में भी इन दोनों विषयों पर विचार किया गया। व्यक्ति और समाज का क्या संबंध रहे? अगर समाजशास्त्र की दृष्टि से विचार करें तो व्यक्ति और समाज में परस्परता रहे। एक दूसरे का सहयोग करें। सहयोग का नाम समाज है। इकट्ठा होना समाज नहीं होता। एक-दूसरे को सहारा दें, आलंबन दें तो समाज बनता है। संस्कृत शब्द कोष में दो शब्द बन गए–एक है समज और दूसरा है समाज।

जहां पशुओं का समूह होता है, उसको समाज नहीं कहा जाता। वह समज कहलाता है। मनुष्यों के समूह को समाज कहते हैं। पशुओं में सहयोग

नहीं है ऐसा नहीं है। आपस में पशु भी सहयोग करते हैं, पर बहुत कम। मनुष्य ने सहयोग का विकास किया। एक-दूसरे को सहारा देने का विकास किया, इसलिए चिंतनपूर्वक समाज बन गया। पशुओं में, बंदरों में परस्पर काफी सहयोग देखा जाता है। इन्दौर के आसपास जंगल में बंदर थे। एक आदमी भी कार्यवश जंगल में गया हुआ था। बंदर के एक छोटा बच्चा था। उसको सांप काट गया। जब बंदरों को पता लगा तो वे दौड़े और कुछ जड़ी तोड़ कर लाए। उसका रस उस बच्चे के मुंह में निचोड़ दिया। बच्चा ठीक हो गया। उसका जहर उतर गया। उस व्यक्ति ने देखा तो उसने भी यह कला सीख ली कि इस जड़ी से जहर उतरता है। सहयोग की भावना मनुष्य में होती है। वे असमर्थ को सहयोग देते हैं, बड़े-बूढ़ों को भी सहयोग देते हैं। रोगी को भी सहयोग देते हैं। सबके लिए आलंबन बनते हैं, सहारा बनते हैं।

व्यक्ति और अध्यात्म

समाज का काम है व्यक्ति से समाज की ओर जाना और अध्यात्म का काम है समाज से व्यक्ति की ओर आना। यह अनुभव करना कि तुम अकेले हो। अकेला होना सचाई है। समाज हमारी व्यवस्था है। हमने एक व्यवस्था बना ली। वास्तविक सचाई है अकेला होना। अकेला हूं, यह अंतिम सचाई है। समाज को हम मानेंगे व्यवहार की सचाई। यह स्थूल सचाई है। एक संबंध होता है। स्थूल सचाई बन जाती है। अध्यात्म की सचाई वास्तविक सचाई है। निश्चय नय की सचाई है। अकेलेपन का अनुभव होता रहे। ऐसा नहीं है कि धार्मिक लोग या अध्यात्म का जीवन जीने वाले परस्पर सहयोग नहीं करते। सहयोग करते हैं। हमारी साधु संस्था में सैकड़ों साधु-साध्वियां हैं। एक दूसरे का सहयोग करते हैं, सेवा करते हैं। कोई बीमार हुआ तो सेवा के लिए तत्पर रहते हैं। कोई अपेक्षा है तो सहयोग करते हैं। हमारे पास जितने रजोहरण, उपकरण हैं, वे साध्वियां बनाकर लाती हैं। साधु काम में लेते हैं। साधु उनका अन्य कार्य में सहयोग कर देते हैं। परस्पर सहयोग तो चलता रहेगा, क्योंकि जहां संगठन है, वहां सहयोग अवश्यंभावी है। अकेला व्यक्ति हिमालय की गुफा में जाकर बैठ जाए तो फिर न सहयोग लेने की बात रहती है और न सहयोग देने की बात, किंतु जहां दो हैं, दो से ज्यादा हैं, वहां परस्परता रहेगी।

एकत्व-अनुप्रेक्षा

सहयोग धर्म के क्षेत्र में भी चलता है, जिसका नाम है साधर्मिक वात्सल्य। अध्यात्म ने एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात सुझाई है कि तुम समाज में रहते हुए भी अकेलेपन को मत भूलो। सचाई को मत भूलो। आखिर मैं अकेला हूं, इसको भूल जाओगे तो तुम बहुत भारी कर्म का बंधन कर लोगे और भारी बन जाओगे। सबके साथ रहते हुए भी मैं अकेला हूं, अगर यह बात याद रहे तो वह दुःखी कम होगा। सुखी रहने का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है एकत्व भावना–एकत्व अनुप्रेक्षा, अकेलेपन का अनुभव करना। कल्पना करें कि पांच आदमी साथ रहते हैं। एक आदमी ने किसी को कुछ अप्रिय कहा, कुछ नुकसान कर दिया। कुछ बड़ी बात कह दी। उस समय अगर एकत्व भावना का अनुभव है तो वह दुःखी नहीं होगा। वास्तव में मैं अकेला हूं, यह सोचने वाला दुःखी नहीं होगा। अगर यह अनुभूति नहीं है तो एकदम दुःखी बन जाएगा। मेरे भाई ने मुझे धोखा दिया, पिता ने मुझे कुछ भी नहीं दिया। घर से मुझे निकाल दिया। सारा धन भाइयों को दे दिया। इस चिंतन से दुःख बढ़ जाएगा। जहां समाज के साथ व्यक्ति में एकत्व भावना है, वहां दुःख कम होगा और वह अंतिम चिंतन करेगा कि मैं अकेला हूं–

न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ,
न मित्तवग्गा न सुया न बंधवा।
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं,
कत्तारमेवं अणुजाइ कम्मं॥

ज्ञातिजन उस दुःख का हिस्सा नहीं बंटाएंगे। न मित्र वर्ग बंटाएगा, न पुत्र, न बंधुजन। जो दुःख देगा, उसे कर्म का फल मिलेगा। उसे अकेले को भुगतना पड़ेगा। इस बात को मत भूलो। यह तो व्यवहार है करना पड़ेगा, हर कार्य के साथ यह दृष्टि भी रहे कि कर्म का बंधन मेरे अकेले के होगा। वह मुझे ही भुगतना पड़ेगा। कोई बंटाने वाला नहीं होगा। कर्म कर्ता के पीछे दौड़ता है। जैसे बछड़ा गाय के पीछे दौड़ता है, वैसे ही कर्म करने वाले के पीछे दौड़ता है। कर्म मेरे पीछे आएगा मुझे तो भुगतना पड़ेगा।

चिंतन क्या है?

आदमी यह सोचे कि मैं जो यह कार्य अपने या दूसरों के लिए कर रहा हूं। ऐसा तो नहीं कर रहा हूं जो अपराध बन जाए, बड़ी बुराई बन जाए। इस पर

चिंतन करें। अगर यह चिंतन आए तो व्यापार शुद्धि भी हो जाएगी। सत्ता पर जाने वालों में शासन की शुद्धि भी हो जाएगी। चरित्र-शुद्धि हो जाएगी। चरित्र-शुद्धि का एक बहुत बड़ा सूत्र है कि व्यक्ति यह चिंतन करे कि इस बुराई का फल मुझे भुगतना पड़ेगा। मैं किसी को लूट रहा हूं, किसी का जबरदस्ती कुछ ले रहा हूं, हड़प रहा हूं, शोषण कर रहा हूं। किसलिए? अकेले के लिए नहीं। सबके लिए, परिवार के लिए। परिणाम किसको भुगतना पड़ेगा? परिणाम मुझे भुगतना पड़ेगा, दूसरों के लिए करूं तो ऐसा करूं, जिससे मुझे कटु परिणाम न भुगतना पड़े। गलत काम किसी के लिए न करूं। अगर यह चिंतन रहता है तो व्यक्ति बहुत बचाव कर लेता है। आदमी के व्यवहार में भी बदलाव आता है।

एक गांव में कोई मुनि आए। काफी लोग उपदेश सुनने को जाते थे। उनके साथ सत्संगत करते थे। एक दिन एक आदमी ने कहा–हमारे गांव में एक सेठ है। धन बहुत है, पर जितना धन है उतना ही कंजूस है। कुछ लोगों की प्रकृति होती है। पास में बहुत धन है, पर देना नहीं जानते। देने का नाम सुनते हैं तो भी दुखी हो जाते हैं। देना क्या खाना भी नहीं जानते। कृपण बन जाते हैं। कोई कंजूस आदमी सब्जी लाने गया। कुछ पैसे लेकर गया था। पुराने जमाने में पैसों का मूल्य होता था। थोड़े से पैसों से बहुत कुछ आ जाता था। आज तो पैसे का पता ही नहीं चलता। उस कंजूस आदमी ने मुट्ठी ऐसे बांध ली कि कहीं हाथ से पैसे गिर न जाए। मालिन के सामने जाकर खड़ा हुआ। मुट्ठी एकदम बंद थी। गर्मी का मौसम था। कंजूस वृत्ति का था। बोला–पैसा! रो मत, मैं शरीर को भले ही छोड़ दूंगा, तुझे नहीं छोडूंगा। कहकर वापस घर को जाने लगा। सब्जी नहीं खरीदी। लोगों ने कहा–इस सेठ को आप समझा दो। कुछ दे तो अच्छा है।

संन्यासी ने जाकर सेठ को समझाने का प्रयत्न किया। सेठजी इतना धन पास में है। गांव का कुछ भला नहीं करते हो। जनता का भला नहीं करते हो, यह धन क्या काम आएगा? वह बोला मैं किसी को कुछ नहीं दूंगा। काफी समझाया, पर बिल्कुल इनकार करता गया। तब संन्यासी बोला–मेरा एक काम कर दोगे। महाराज! कहिए, आपका क्या काम है? उन्होंने एक सूई मंगाई। सूई मंगाकर कहा–सेठजी! यह सूई ले लो और अपने पास में रख लो। लेने में तो कोई कठिनाई नहीं थी। लेना तो जानता ही था, देना नहीं जानता था। सूई ले

ली। मैं क्या करूं इसका? एक काम करना–'अगले जन्म में हम मिलेंगे, यह सूई तुम मुझे वापस दे देना।'

वह बोला–महाराज! अगले जन्म में तो सूई कहां चलेगी? शरीर ही नहीं रहेगा और मेरे पास जो धन है, वह भी नहीं रहेगा, घर भी नहीं रहेगा। सब यहीं छूट जाएगा, और तो क्या, मेरे दांतों में थोड़ा सोना लगा हुआ है, वह भी निकाल लेंगे। अच्छा, ये चीजें अगले जन्म में तुम्हारे साथ नहीं चलेगी। बिल्कुल नहीं चलेगी। तब इतनी कंजूसी क्यों? इस घटना ने सेठ की आंख खोल दी। बात समझ में आ गई। साथ कुछ नहीं चलेगा। अब मैं कंजूस नहीं रहूंगा। सबके लिए काम करूंगा। आदमी अपने स्वार्थ में ज्यादा रहता है, समाज के लिए कुछ करना नहीं चाहता।

एकत्व का अनुभव हो

दूसरा दृष्टिकोण यह है कि समाज के लिए, परिवार के लिए तुम कुछ करो तो उनके लिए भी गलत काम मत करो। सहयोग करो तो गलत तरीके से मत करो। दूसरे का सहयोग करना है तो तुम अपराधी बन जाओ, चोरी करो, डकैती करो, लूट लो, दूसरे को दे दो, यह ठीक नहीं है। इस बात की सचाई को ध्यान में रखो कि मैं अकेला हूं, मेरे साथ कुछ नहीं चलेगा। मैं जगत में अकेला आया हूं, अकेला जाऊंगा। यह एकत्व की भावना एक बहुत बड़ी सचाई है। उपाध्याय विनयविजय जी ने बहुत सुंदर लिखा है–

विनय! चिन्तय वस्तुतत्त्वं, जगति निजमिह कस्य किम्?
भवति मतिरिति यस्य हृदये, दुरितमुदयति तस्य किम्?
एक उत्पद्यते तनुमानेक एव विपद्यते।
एक एव हि कर्म चिनुते, सैककः फलमश्नुते॥

तत्त्व पर विचार करो। सचाई को समझने का प्रयत्न करो। मोहवश मान लिया कि मेरा है, तुम्हारा क्या है? केवल आरोपण, केवल कल्पना, सचाई नहीं है। व्यवहार चलाने के लिए मान रखा है, पर इसको सचाई मत मानो। सचाई क्या है? अकेला जन्म लेता है और अकेला ही मरता है। आजकल जुड़वा बच्चे जन्म लेते हैं। एक चिंतनशील व्यक्ति ने एक बात सोची–आजकल जुड़वां बच्चे ज्यादा हो रहे हैं। क्या कारण है? उसने कल्पना भी कर ली कि वर्तमान की दुनिया में डर ज्यादा है। इस दुनिया में कोई आता है तो अकेला

आना पसंद नहीं करता, बेचारा डरता है। किसी को साथ लेकर आता है, पर सचाई यह है कि व्यक्ति अकेला जन्मता है, अकेला ही मरता है। पैदा तो साथ हो सकते हैं, पर मरना तो अलग-अलग होता है।

व्यक्ति अकेला ही कर्म करता है। उसका कोई साथ नहीं देता। एक आदमी दुकान पर बैठा है, मिलावट करता है। वह मिलावट अकेला कर रहा है, करता है सबके लिए। पूरे परिवार को धन मिलेगा। गलत काम अकेला करता है, तो कर्म का बंधन भी अकेले का होता है और उसका फल भी अकेला ही भुगतता है। चार सचाइयां बता दी–अकेले का जन्म, अकेले का मरण, अकेले के द्वारा कर्म का बंधन, अकेले द्वारा उसका फल-भोग।

अध्यात्म का सूत्र

समाज है, सामाजिकता है, सामुदायिकता है, सहयोग है, परस्परालंबन है, एक-दूसरे का सहारा है–ये सारी समाजशास्त्रीय अवधारणाएं हैं, पर इनके साथ सचाई को नहीं भूलना है। उसको भी याद रखना है। दूसरों के लिए भी गलत काम नहीं करेगा, बुराई नहीं करेगा। धन पाने के लिए दूसरे की हत्या कर देता है, किसी को लालच में आकर मार देता है। समाचार पत्र में था कि दस वर्ष के बच्चे ने बैंक को लूटा।

आज टी.वी. का जमाना है। दस वर्ष का बच्चा बहुत होशियार हो गया। पुराने आदमी पचास वर्ष के जो नहीं जानते थे, आज के दस वर्ष के बच्चे जानते हैं। बारह वर्ष का बच्चा कितने साथियों को, विद्यार्थियों को मार डालता है, घायल कर देता है।

ये अपराध क्यों हो रहे हैं? एक चिंतन छूट गया–इसका फल मुझे भुगतना पड़ेगा। अध्यात्म का महत्त्वपूर्ण सूत्र था अपराध से बचने के लिए। अगर यह सूत्र ध्यान में रहे तो आदमी बड़ा अपराध नहीं करेगा, सकुचाएगा। आज तो सकुचाने की बात नहीं रही। आज तो एक स्पर्धा हो गई कि मेरा नाम आए।

अमेरिका में एक छात्र ने यूनिवर्सिटी के गुंबज पर खड़े होकर गोली चलाई। पांच-सात लोगों को मार डाला। पकड़ा गया। न्यायाधीश के सामने प्रस्तुत किया गया। पूछा–तुमने क्यों किया? बोला–मैंने टी.वी. में देखा था कि ऐसा करने वाला एक दिन में प्रसिद्ध हो जाता है और समाचार पत्रों की

सुर्खियों में आ जाता है। इसलिए मैंने यह कार्य कर दिया। कितना छोटा लक्ष्य है, कितना गलत लक्ष्य है। प्रसिद्ध होना और कुछ धन पाना। ये दो बातें ऐसी हो गईं कि आदमी बड़ा अपराध कर देता है। अगर यह धारणा रहे कि जो करता है, उसको कर्म भुगतना पड़ेगा। मैं जो कर्म करूंगा, उसका फल मुझे भुगतना पड़ेगा, कोई साथी नहीं बनेगा तो काफी बचाव हो सकता है।

हमारा आचारशास्त्रीय दृष्टिकोण बहुत प्रशस्त हो सकता है। बड़ी बुराइयों से आदमी बच सकता है, पर आज तो बच्चों को भी यह जानने को नहीं मिलता। जानने को सिर्फ वह मिलता है, जो रोज देखता है या तो कोई हिंसक घटना या बलात्कार की घटना, सेक्स की घटना। वही संस्कार दिमाग में प्रविष्ट होता है।

आचारशास्त्र का आधार

जो बच्चा रोज टी.वी. देखता है और रोज ये घटनाएं देखता है तो वह एक वर्ष में कितनी घटनाएं देखेगा? तीन सौ साठ भी हो जाती हैं, क्योंकि दिन-रात देखता रहता है। इतनी घटनाएं दिमाग में घुसेंगी तो उसका दिमाग फिर कैसा होगा? कहते हैं अपराध बहुत बढ़ रहा है। क्यों नहीं बढ़ेगा? यह तो अपराध बढ़ाने का रास्ता है। अच्छी चीज देखने को कम मिलती है। गलत चीज रोज सामने आती है। ज्यादा तो ऐसे दृश्य आते हैं कि कभी-कभी तो पिता और पुत्र एक साथ बैठकर नहीं देख सकते। चोरी और डकैती के दृश्य आते हैं।

हमने साधु-साध्वियों के लिए कहा था कि भोजन से पहले किसी को समाचार पत्र नहीं पढ़ना। मैं स्वयं नहीं पढ़ता हूं। भोजन कर लिया, फिर कुछ समय के लिए समाचार पत्र देखते हैं, पहले नहीं देखते। समाचार पत्र के पहले पृष्ठ में आपको क्या मिलेगा? कितनी हत्या हुई? कितनी दुर्घटना हुई? कितने बलात्कार हुए? ऐसी बातें मिलती हैं। समझदार आदमी को भूखे पेट समाचार पत्र देखना ही नहीं चाहिए। दिमाग खाली हो तब भी नहीं देखना है।

आजकल कुछ लोगों को तो ऐसा हो गया कि शायद उठने के साथ-साथ ही समाचार पत्र चाहिए। उसकी जगह ज्ञान की कोई पुस्तक पढ़े, स्वाध्याय करे तो अच्छी बात है। यह सारा क्रम चल रहा है, इसका कारण है अध्यात्म के सूत्र का नहीं मिलना। अपराध का सूत्र उनको मिल जाता है। अध्यात्म

का इतना महत्त्वपूर्ण सूत्र है–मैं अकेला हूं। यह भावना पक्की हो जाए तो वह अपराध में नहीं जाएगा, अन्याय नहीं करेगा, दूसरे को नहीं सताएगा, सहयोग करेगा। मैं व्यक्ति हूं और सामाजिक भी हूं। अकेला हूं, इस सचाई को नहीं भुलूंगा। ये दोनों सचाइयां सामने रहें तो शायद हमारी नैतिकता बढ़ सकती है, आचार पवित्र बन सकता है और आचारशास्त्र के लिए बहुत बड़ा आधार मिल सकता है।

हम सब चिंतन करें। अध्यात्म की सचाइयों को न भूलें। दर्शन की सचाइयों को न भूलें। दर्शन को जीने का प्रयत्न करें। एकत्व की अनुप्रेक्षा करें। आप फिर दूसरे के साथ कुछ गलत काम नहीं करेंगे। अकेला हूं, अकेला आया हूं, अकेला जाऊंगा, अकेला कर्म करूंगा, अकेला उसका फल भुगतूंगा। इतनी सचाई सामने रहे तो धर्म और अध्यात्म एक ऐसी नौका बन जाएगी, जो लक्ष्य तक पहुंचा देगी।

28. शांति का हेतु है निवृत्ति

आज पूरे विश्व में शांति की व्यवस्था के बहुत कार्य चल रहे हैं, अनेक आंदोलन चल रहे हैं। शायद एशिया की अपेक्षा यूरोप और अमेरिका में ज्यादा चल रहे हैं। इसका कारण है कि जिन लोगों ने युद्ध, महायुद्ध की अशांति को भोगा है, उनके मन में शांति के लिए और अधिक आकर्षण है। वे अनुभव कर चुके हैं कि अशांति में कैसी स्थिति बनती है? अहिंसा के बिना शांति की बात लंबे समय तक टिक नहीं सकती। अशांति हिंसा की निष्पत्ति है।

शांति : निर्वाण

लोग कामना करते हैं कि मोक्ष मिले। मोक्ष कहां है? हम जीते जी मोक्ष का अनुभव करें और वह है शांति। संति निव्वाणमाहियं यानी शांति निर्वाण है। अगर तुम्हारे मन में शांति है, तुम्हारे कषाय शांत हैं तो वह निर्वाण–मोक्ष है। उससे अलग मोक्ष क्या होगा? उमास्वाति ने प्रशमरतिप्रकरण में लिखा है–इहैव मोक्षः सुविहितानाम्। वर्तमान में मोक्ष का अनुभव करो। वर्तमान में निर्वाण का अनुभव करो और वह है शांति। जितनी शांति रहती है, उतना ही मोक्ष और निर्वाण होता है। जिन घरों में शांति रहती है, वे लोग कहते हैं कि हमारे यहां तो स्वर्ग का राज्य चल रहा है, स्वर्ग जैसा सुख भोग रहे हैं। स्वर्गीय सुख और उससे आगे जाएं तो मोक्ष का सुख।

शांति कहां?

प्रश्न है शांति कहां रहती है? जो व्यक्ति स्वार्थ का विसर्जन करता है, वहां शांति रह सकती है। जहां स्वार्थों की खींचातान है, वहां कभी शांति नहीं हो सकती। स्वार्थ पदार्थ से जुड़ा हुआ है। तीन तत्त्व हो जाते हैं–स्वार्थ, पदार्थ और आत्मा। जहां आदमी चेतना के साथ जीता है, वहां स्वार्थ का अतिरेक नहीं होता, स्वार्थ भी पवित्र बन जाता है। जहां आदमी पदार्थ के

साथ जीता है, वहां स्वार्थ अपवित्र बन जाता है, वहां खींचातान होती है, अशांति होती है।

एक आदमी की दुर्घटना में टांग टूट गई। दो पुत्र थे। एक था डॉक्टर और एक था वकील। डॉक्टर ने कहा–पिताजी के टांग की स्थिति यह है कि जल्दी ऑपरेशन करवाना होगा और स्थिति यह बन गई कि टांग काटनी पड़ेगी, अन्यथा पूरे शरीर में सेप्टिक हो जाएगा। वकील बोला–पिताजी! यह ठीक कह रहा है टांग काटनी पड़ेगी, अभी नहीं। जब तक पूरा केस सर्च नहीं हो जाए, तब तक टांग नहीं कटाएं। पिताजी बैठे थे। कुछ लोग कुशल क्षेम पूछने आए। बोले–तुम्हें तो क्या चिंता है? बड़े सुखी हो। घर में डॉक्टर है तो अपने आप इलाज हो जाएगा।

बोला–चिंता तो इस बात की है कि एक नहीं, दो बेटे हैं। दोनों का अपना स्वार्थ है। आदमी पदार्थ की ओर झुक जाता है तो चाहे पिता हो, माता हो, कोई भी हो, वे गौण हो जाते हैं। हर घटना के साथ मीमांसा कर सकते हैं कि जहां स्वार्थ पदार्थ की ओर झुका, वहां समस्या पैदा होती है। स्वार्थ चेतना की ओर झुका, वहां समस्या पैदा नहीं होती, समाधान मिलता है। एक ओर पदार्थ और एक ओर चेतना, बीच में है स्वार्थ। इसीलिए हम स्वार्थ को बुरा भी नहीं कह सकते। स्वार्थ अच्छा भी होता है। स्वार्थ बुरा भी होता है। जब स्वार्थ आत्मोन्मुख होता है, चेतनोन्मुख होता है तो अच्छा बन जाता है। वही जब पदार्थोन्मुख बनता है तो बुरा बन जाता है।

अशांति क्यों?

पदार्थ का आकर्षण अशांति पैदा करता है। घर में भी अशांति पैदा करता है। हर आदमी शांति चाहता है। यह निर्णय करना है कि स्वार्थ किधर झुका हुआ है। सूर्यमुखी फूल ऐसा होता है कि जिधर सूर्य है, वह उधर झुक जाता है, उधर उसका मुंह हो जाता है। अगर चेतना की ओर हमारा मुंह हो तो फिर स्वार्थ बाधा नहीं डालता। स्वार्थ एक बड़ी प्रेरणा है। उसको हम गौण भी नहीं कर सकते, पर वह बाधा नहीं डालता। उसका मुंह हमेशा प्रकाश की ओर रहता है, किंतु जिसका मुंह पदार्थ की ओर हो गया, वहां बाधा ही बाधा आती है। क्या करें? शांति कैसे हो?

एक सूत्र है–स्वार्थ का विसर्जन करना सीखो।

प्रेक्षाध्यान में कायोत्सर्ग का प्रयोग करते हैं। कायोत्सर्ग–शरीर का विसर्जन। शरीर को तुम छोड़ नहीं सकते। जब तक जीना है, शरीर साथ रहेगा, किंतु शरीर से चिपके मत रहो। समय-समय पर शरीर का विसर्जन भी करते रहो। कायोत्सर्ग का अर्थ है काया का त्याग, काया का उत्सर्ग कर देना। बहुत महत्त्वपूर्ण शब्द का चयन हुआ है। महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि आदमी उत्सर्ग करना नहीं जानता, त्याग करना नहीं जानता, विसर्जन करना नहीं जानता, केवल इकट्ठा करना जानता है। विसर्जन, उत्सर्ग, त्याग–ये सब एक कोटि में आ जाते हैं। शरीर का उत्सर्ग क्यों करना है? प्रेक्षाध्यान के मर्म को समझने वाला इस बात को समझ सकता है कि ममत्व का सबसे प्रमुख केन्द्र है मनुष्य का शरीर। मनुष्य का जितना अपने शरीर के प्रति ममत्व होता है, उतना किसी के प्रति नहीं होता। जब तक वह शरीर का विसर्जन नहीं करेगा, शरीर का उत्सर्ग या त्याग नहीं करेगा, तब तक साधना का रास्ता तो खुलता ही नहीं है, दरवाजा भी बंद ही रहता है।

स्थानांग सूत्र में तीन प्रकार के परिग्रह बतलाए गए हैं–शरीर, उपधि और कर्म। पहला है शरीर परिग्रह। जब तक उसको हम पकड़कर रखेंगे, तब तक शांति की बात और स्वार्थ विसर्जन की बात आ नहीं सकती। सबसे पहले कायोत्सर्ग करो। कुछ लोग बहुत बार पूछते रहते हैं कि प्रेक्षाध्यान का आधारभूत तत्त्व क्या है? हमारा उत्तर है–कायोत्सर्ग। साधना का आदि बिंदु है कायोत्सर्ग, साधना का मध्य बिंदु है कायोत्सर्ग और साधना का अंतिम बिंदु है कायोत्सर्ग। काया का उत्सर्ग करके ही साधक मुक्त होगा। जब तक शरीरधारी है, मुक्त नहीं हो सकता।

मन और वाणी का कायोत्सर्ग

शरीर के कायोत्सर्ग की तरह मन और वाणी का भी कायोत्सर्ग होता है। मन के कायोत्सर्ग का अर्थ है मन की चेष्टा को शांत करना, शिथिल करना। वाणी के कायोत्सर्ग का अर्थ है वाणी की चेष्टा को शांत करना, मौन करना। मौन भी वास्तविक मौन होना चाहिए। एक तो होता है औपचारिक मौन और एक होता है वास्तविक मौन। औपचारिक मौन है कि बोला तो नहीं, किंतु

इशारे इतने किए कि बोलने की कसर निकाल दी या मौन में हूं-हूं इतने किए कि शायद बोलने में जोर नहीं पड़ता, उससे ज्यादा दिमाग पर जोर पड़ता है। बार-बार लिखकर देता है तो चिंतन तो करना ही पड़ता है। इससे स्वर यंत्र सक्रिय होता ही है। जब स्वर यंत्र सक्रिय होता है तो वास्तविक मौन नहीं होता।

वास्तविक मौन है कंठ का कायोत्सर्ग। कंठ के कायोत्सर्ग का अर्थ है स्वरयंत्र को शिथिल कर देना। जब स्वरयंत्र शिथिल होता है तब वास्तव में मौन होता है। मन में बोलने की भावना है, शब्दों का मानसिक व्यापार चल रहा है और इशारा भी कर रहा है। यह औपचारिक मौन है। जब हम दर्शन केन्द्र या प्राण केन्द्र पर ध्यान करते हैं तब विचार कम हो जाते हैं, मन का कायोत्सर्ग हो जाता है, शिथिलीकरण होता है।

स्वरयंत्र का कायोत्सर्ग करते हैं तो कंठ का कायोत्सर्ग हो जाता है, शिथिलीकरण हो जाता है। शिथिलीकरण क्यों जरूरी है? आदमी प्रवृत्ति बहुत करता है, इसलिए शिथिलीकरण की जरूरत है।

संतुलन करें

जीवन का रथ निरंतर आगे बढ़ रहा है। जीना एक बात है और कलापूर्ण जीवन जीना दूसरी बात है। जो व्यक्ति कलापूर्ण जीवन जीता है, वह बहुत सारी समस्याओं से मुक्त रहता है। जो जीने की कला नहीं जानता, वह बहुत सारी समस्याओं से घिर जाता है। जीने की कला के अनेक सूत्र है, उनमें से एक सूत्र है–प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन। आदमी प्रवृत्ति करता है शरीर, वाणी और मन के द्वारा। प्राचीन दार्शनिक क्षेत्र में दो शब्द चलते–एक है प्रवृत्ति और एक है निवृत्ति। गीता में कहा गया–

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्।

वैदिक कर्म दो प्रकार के हैं–प्रवृत्ति और निवृत्ति। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया–गुप्ति का काम है निवर्तन और समिति का काम है सम्यक् प्रवर्तन। प्रवृत्ति और निवृत्ति का चक्र चलता है। मनुष्य प्रवृत्ति कितने घंटे करता है, निवृत्ति कितने घंटे करता है। प्रवृत्ति में शरीर, वाणी और मन की तीनों प्रवृत्तियां आ जाती हैं। व्यक्ति का ज्यादा समय प्रवृत्ति में बीतता है। निवृत्ति में कम बीतता है। निवृत्ति के बारे में बहुत लोग स्पष्ट नहीं हैं। पूज्य गुरुदेव उदयपुर में चतुर्मास

कर रहे थे। वहां के प्रिंसिपल और कुछ प्रोफेसर रात को मेरे पास बैठे थे। वे बोले–आप लोग निवृत्ति की बात करते हैं।

प्रवृत्ति में तो कुछ करना होता है। निवृत्ति में तो कुछ करना नहीं होता। उसका महत्त्व क्या है? मैंने कहा–निवृत्ति में जितना प्रयत्न करना होता है, प्रवृत्ति में तो उतना करना ही नहीं होता। अंतर इतना है कि प्रवृत्ति में बाहर के क्षेत्र में कार्य होता है और निवृत्ति में भीतर के क्षेत्र में कार्य होता है। हमारी चेतना निवृत्ति के क्षणों में जितनी जागृत होती है, प्रवृत्ति में उतनी जागृत नहीं होती। निवृत्ति अच्छा धन है।

बहुत सारे लोग मानसिक दृष्टि से अस्वस्थ हो जाते हैं। कारण क्या है? जो ज्यादा सोचेगा वह पागलपन की ओर प्रयाण करेगा। मन को भी निवृत्ति देनी चाहिए। चिंतन का चक्र अनवरत न चले। कुछ क्षण सोचें और बाद में मन को विश्राम दें, तब तो मन ठीक काम करेगा। चौबीस घंटे मन को चलाते रहो तो मन भी थक जाएगा और फिर उसमें विकृति पैदा होगी।

हृदय भी कितना विश्राम लेता है। हमारा हृदय बहुत समझदार है। हर मिनट में, हर श्वास के साथ एक क्षण विश्राम लेता है, फिर काम शुरू करता है। हृदय बहुत कायोत्सर्ग करना जानता है। बिना कायोत्सर्ग उसका काम नहीं चलता। एक बार स्पंदन किया, फिर दो क्षण विश्राम करना उसकी स्वाभाविक प्रक्रिया है। मन को भी विश्राम देना चाहिए। निरंतर सोचना नहीं चाहिए। पागलपन के अनेक कारण हैं। उनमें एक कारण है–मन की निरंतर प्रवृत्ति। जो मन की निवृत्ति करना नहीं जानता, विचार के प्रवाह को थामना और रोकना नहीं जानता, वह शायद विपरीत दिशा में चला जाता है।

वाणी की भी यही बात है–अनवरत बोलते चले जाओ, ज्यादा बोलते चले जाओ तो बोलने की शक्ति क्षीण होगी। साथ-साथ दिमाग भी अस्त-व्यस्त होगा। राजस्थान में तो कहावत भी चलती है–कुत्ते को हाड़को है। मतलब कुत्ते का हाड़ है, जो बोलता ही रहता है। कुत्ता भौंकता रहता है, वैसे बोलता है। दिन में कितने घंटे बोले, कितने घंटे ना बोले, इसकी विचारणा होनी चाहिए। जैसे मन की निवृत्ति, वैसे ही वाणी की निवृत्ति भी आवश्यक है।

शरीर का कायोत्सर्ग

तीसरी है शरीर की प्रवृत्ति। आदमी प्रायः काम करता रहता है। उससे शरीर की क्रिया भी गड़बड़ा जाती है। अगर वह दिन में शरीर से पंद्रह-सोलह घंटे काम करता है, वहां आधा घंटा, एक घंटा कायोत्सर्ग कर ले, शरीर की निवृत्ति कर ले तो शायद सारा सिस्टम ठीक हो जाए। शरीर की सारी क्रिया ठीक हो जाए, रक्त संचार की प्रणाली स्वस्थ बन जाए। निरंतर प्रवृत्ति करने से शरीर में टूट-फूट होती रहती है। तंत्र है वह टूटता रहता है। उसे संभलने का मौका ही नहीं मिलता, इसलिए तीनों की निवृत्ति जरूरी है।

जीवन को चलाने के लिए तीनों की प्रवृत्ति भी आवश्यक है। अगर कोई आदमी सोचना नहीं जानता, विकास नहीं कर सकता। बोलना नहीं जानता तो अच्छा काम नहीं कर सकता और शरीर से काम करना नहीं जानता तो आलसी हो जाता है, पड़ा रहता है। वह भी अच्छा नहीं होता। जैसे तीनों की प्रवृत्ति आवश्यक है, वैसे ही तीनों की निवृत्ति भी आवश्यक है।

तीनों की निवृत्ति आवश्यक क्यों? इस पर भी हम विचार करें कि जीवनचर्या को चलाने के लिए प्रवृत्ति आवश्यक है। रोटी, पानी के लिए प्रवृत्ति जरूरी है। मकान के लिए भी प्रवृत्ति जरूरी है। पारस्परिक संबंधों के लिए भी प्रवृत्ति जरूरी है। उसके बिना काम नहीं चलता, इसलिए आदमी मन से अच्छा चिंतन करे। अच्छा काम करे, अच्छा बोले और शरीर से भी श्रम करे तो जीवन सफल होता है।

एक उद्देश्य हमारे सामने आ गया प्रवृत्ति का। जीवन यात्रा को अच्छा चलाना है, अच्छे ढंग से चलाना है तो प्रवृत्ति के साथ निवृत्ति आवश्यक है और निवृत्ति के लिए कायोत्सर्ग जरूरी है।

निवृत्ति क्यों?

निवृत्ति क्यों आवश्यक है? निवृत्ति इसलिए आवश्यक है कि जीवन यात्रा को चलाना है। शरीर, मन और वाणी को स्वस्थ रखना है तो निवृत्ति आवश्यक है। उसके बिना न शरीर स्वस्थ रहेगा, न वचन की प्रवृत्ति स्वस्थ रहेगी और न मन का चिंतन स्वस्थ रहेगा। दोनों का संतुलन करो तो व्यक्ति स्वस्थ रहेगा, इसलिए निवृत्ति जरूरी है। इससे आगे जाएं तो एक बड़ा महत्त्वपूर्ण तथ्य हमारे

सामने आता है और वह यह है कि जिस व्यक्ति को आंतरिक चेतना के द्वार खोलना है, अतीन्द्रिय चेतना का विकास करना है, उसके लिए इन तीनों की निवृत्ति करना परम आवश्यक है। जब तक इन तीनों की निवृत्ति नहीं होती, तब तक भीतर की चेतना बाहर नहीं आती। अतीन्द्रिय चेतना का विकास नहीं होता।

अतीन्द्रिय चेतना एक बहुत बड़ी शक्ति है। हम बिना पढ़े जान सकते हैं, बिना देखे जान सकते हैं और भी पता नहीं क्या-क्या हो सकता है। हमारी चेतना सोई हुई रहती है और जब तक प्रवृत्ति का चक्र चलता है, उसे जागने का अवसर नहीं मिलता। जब निवृत्ति के क्षण आते हैं, तब भीतर की चेतना को प्रगट होने का अवसर मिलता है। हम इतने ज्यादा व्यस्त रहते हैं कि निवृत्ति को अवसर ही नहीं देते। सबसे निकम्मा आदमी कौन है? जो चौबीस घंटे एक ही रट लगाए कि मैं बहुत बिजी हूं। वह निकम्मा आदमी है। काम करने वाला कभी नहीं कहता कि मैं व्यस्त हूं। खाली रहो तो भीतर की चेतना प्रकट होगी। व्यस्तता का अनुभव करो तो जो हमारी अंतर की चेतना है, उसे बाहर आने का मौका ही नहीं मिलता। बहुत लोगों में क्षमता होती है, पर प्रगट नहीं कर पाते।

हम मानते हैं कि आचार्य भिक्षु की अतीन्द्रिय चेतना जागृत हो गई, क्योंकि वे व्यस्त नहीं होते थे। वे खाली रहना जानते थे और किसी चिंता में नहीं जाते थे। जो निरंतर प्रवृत्ति के चक्कर में व्यस्त रहता है, उसकी चेतना जागृत नहीं होती। वह बाहर का कार्य कर सकता है, किंतु भीतर का संबोध उस व्यक्ति को नहीं मिल सकता। भीतर की चेतना उसी व्यक्ति की जागृत होती है, जो ठहर जाता है।

हमें निरंतर चलना नहीं, ठहरना भी सीखना है। लोग जाते हैं समाधि के स्थान पर। वहां भी प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए। बस गए और ध्यान में बैठ गए, एकाग्र हो गए। वाणी की प्रवृत्ति नहीं, न कोई चिंतन और न कोई शरीर की क्रिया। एकदम एकाग्र होकर ध्यान की मुद्रा में बैठ गए और देखने लग गए। यह है आराधना, जिससे भीतर की शक्तियां जागृत होती हैं। एक बात पर सोचें कि कैसे हम क्रिया के साथ अक्रिया का अभ्यास कर सकें। जो लोग शिविर में आते हैं और कायोत्सर्ग का अभ्यास करते हैं, उन्हें स्वयं अनुभव हो जाना चाहिए कि जिस समय कायोत्सर्ग करते हैं, उस समय स्थिर हो जाते हैं। जब

स्थिर होते हैं तो फिर एक नए आनंद का अनुभव होता है। हमारी प्रवृत्ति के साथ लेक्टिक एसिड पैदा होता है। जब उसकी मात्रा बढ़ती है तो बेचैनी का अनुभव होता है। निवृत्ति के समय एसिड की मात्रा कम हो जाती है। प्रवृत्ति करते हैं तो उस समय ऑक्सीजन की अपेक्षा ज्यादा बढ़ जाती है। निवृत्ति के समय ऑक्सीजन की खपत भी कम हो जाती है। थोड़ी-सी ऑक्सीजन से भी काम चल सकता है। बाहर से लेने की स्थिति भी कम हो जाती हैं। श्वास भी हमारा मंद हो जाता है।

कायोत्सर्ग में श्वास की संख्या एकदम घट जाएगी और यह सारी स्थिति मानसिक शांति की स्थिति है। इस स्थिति में शांति का अनुभव हो सकता है, क्योंकि निवृत्ति शांति का एक रूप है। शांति का एक अर्थ है निवृत्ति करो, कोरी प्रवृत्ति मत करो। प्रवृत्ति करो तो सुप्रवृत्ति करो, उसकी भी सीमा करो। सुप्रवृत्ति भी निरंतर नहीं, उसके साथ निवृत्ति करना अवश्य सीखें, क्योंकि निवृत्ति के बिना चाहे सुप्रवृत्ति है तो भी बंधन रहेगा। बंधन से मुक्ति नहीं होगी।

जब तक निरोध और संवर नहीं है, कितनी ही निर्जरा हो, मुक्ति नहीं हो सकती, इसलिए हमें निवृत्ति का मूल्यांकन करना है। यह एक सूत्र बना लेना है कि जहां-जहां निवृत्ति, वहां-वहां शांति। जहां-जहां प्रवृत्ति, वहां जीवन यात्रा का संचालन। अधिक प्रवृत्ति अशांति का कारण बनती है। यह सचाई समझ में आ जाए। प्रवृत्ति और निवृत्ति की मर्यादा समझ लें, शांति और अशांति को समझने में अधिक सफल हो सकेंगे।

29. सौंदर्य आचार और व्यवहार का

धर्म के क्षेत्र में दो शब्द बहुत प्रचलित हैं–आचार और व्यवहार। आचार व्यक्ति का अपना होता है। व्यवहार दूसरे के प्रति होता है। जहां दो नहीं है, वहां व्यवहार नहीं होता। व्यवहार का मूल आधार है–भेद, पृथक्करण। जहां एक है, वहां व्यवहार नहीं होता। अकेला किसके साथ व्यवहार करेगा? लड़ाई भी दो में होती है, अकेले में नहीं होती। दो मिलते हैं, लड़ाई शुरू हो जाती है। बातचीत भी दो में होती है, अकेले में नहीं होती। अकेला बात करता है तो लोग उसे पागल कहते हैं। अकेले बात करने वाले को लोग समझदार नहीं मानते। बातचीत दो में होती है, संवाद भी दो में होता है, चर्चा भी दो में होती है, यह सारा व्यवहार है।

कलह मत करो

आगम साहित्य में आचार पर प्रकाश डाला गया है, वैसे ही व्यवहार पर भी विश्लेषण किया गया है। एक धार्मिक आदमी का व्यवहार कैसा होना चाहिए? इस पर बहुत कुछ बताया गया है। सैकड़ों नियम बतलाए गए हैं एक मुनि के लिए भी और श्रावक के लिए भी। दशवैकालिक का पूरा नौवां अध्ययन, उत्तराध्ययन का पहला अध्ययन व्यवहार-प्रशिक्षण से संबंधित है। सूत्रकृतांग आदि आगमों और व्याख्या ग्रंथों में भी व्यवहार पर बहुत प्रकाश डाला गया है। व्यवहार कैसा हो? उसी संदर्भ में एक नियम बतलाया, एक संदेश दिया कि साधु किसी के साथ कलह न करे। यह एक व्यवहार का बड़ा सूत्र है।

कलह करने से तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। मान लो कभी थोड़ा बहुत प्रयोजन सिद्ध हुआ भी, पर तुम्हारा जो कार्य है उसकी भयंकर हानि होती है, इसलिए अभ्यास करो, संकल्प करो, प्रयोग करो कि मैं किसी के साथ

कलह नहीं करूंगा। व्यवहार में सरलता आ जाए, मधुरता आ जाए। छोटी-सी बात पर आदमी कलह का वातावरण बना देता है। कभी विचार पसंद नहीं आता, किसी ने कुछ कह दिया इतने में कलह शुरू हो जाता है। कलह होते-होते हाथापाई, लड़ाई-झगड़ा तक भी हो जाता है। साथ में रहते हैं, वहां कलह के अनेक प्रसंग आ जाते हैं। क्या कोई व्यक्ति अपने बारे में यह कह सकता है कि पूरे वर्ष में मैंने कलह नहीं किया।

व्यवहार से होती है पहचान

अगर दो बातें आ जाएं कि पूरे वर्ष में मैंने किसी को कोई कटु शब्द नहीं कहा और मैंने किसी के साथ कलह नहीं किया तो उसका सुपर व्यवहार माना जाएगा। मनोविज्ञान की एक शाखा है व्यावहारिक मनोविज्ञान, जिसमें व्यवहार अच्छा करने का प्रशिक्षण दिया जाता है। व्यवहार के आधार पर व्यक्तित्व का अंकन होता है। एक कंपनी का मालिक मंदिर में गया। एक कर्मचारी उसे देखकर खड़ा हो गया और दूसरा अकड़ कर बैठ गया। वह बोला कुछ नहीं, उसने किया कुछ नहीं, पर व्यवहार से उसका अंकन हो गया। मैंने देखा है पहले सांप्रदायिक अकड़न ज्यादा थी।

एक बार गुरुदेव किसी गांव में पधारे। बाजार आया, अजैन लोग सब खड़े होकर नमस्कार कर रहे थे, पर कुछ जैन वहां तनकर खड़े रहे। क्या हुआ? उनके व्यवहार से ही पता लग गया कि आदमी कितना गहरा है, कहां तक पहुंचा हुआ है? व्यवहार का सौष्ठव होना, अच्छा व्यवहार होना, अच्छे व्यक्तित्व की पहचान है।

जिस व्यक्ति के भीतर गुणों का विकास होता है, उसका व्यवहार भी बदल जाएगा, अच्छा बन जाएगा। जिस व्यक्ति के भीतर बुराइयां है, क्रोध का आवेश है, अहंकार है, उसमें अकड़न आ जाएगी। उसका व्यवहार अच्छा नहीं होगा, व्यवहार तो एक बाहरी पहचान है, मूल भीतर है। भीतर के आधार पर व्यवहार बनता है। हमारे व्यवहार के प्रवर्तक तत्त्व हैं–भाव और भाषा। भाव आंतरिक हैं, उनका पता नहीं चलता, किंतु भाषा सब कुछ स्पष्ट बता देती है। कुछ लोग भीतर से स्वच्छ और निश्छल होते हैं, किंतु आवेश के कारण कटु बोल देते हैं। भाषा का विवेक नहीं रहता। भाव कभी सामने नहीं आता, भीतर रहता है, पर व्यवहार दुनिया के सामने आता है। व्यक्ति का भीतरी

जगत या हृदय और बाहरी जगत या व्यवहार–इनमें समरूपता भी हो सकती है, विभिन्नता भी। इसके आधार पर व्यक्तित्व का चार कोटियां बन सकती हैं।

निश्चल हृदय, निश्छल व्यवहार

प्रथम कोटि का व्यक्ति वह है, जिसका हृदय निर्मल है, स्वच्छ है, अंतःकरण अकलुषित है, अपायरहित है, वह व्यक्ति बड़ा मीठा बोलता है, मधुर बोलता है। जिसका भीतर और बाहर दोनों निर्मल है, वह व्यक्ति निश्छल व्यवहार कर सकता है। उसकी कथनी और करनी में दूरी नहीं होती। जैसा कहता है, वैसा ही करता है। वह व्यक्ति सबके लिए कल्याणकारी होता है।

निश्छल हृदय, पर आवेशयुक्त व्यवहार

दूसरी कोटि में व्यक्ति का हृदय कलुषित नहीं है, हृदय निर्मल है, स्वच्छ है, किंतु वाणी पर नियंत्रण नहीं है, वह बोलना नहीं जानता। शब्दों का ठीक प्रयोग करना नहीं जानता। कहता कुछ है, मुंह से निकल कुछ और जाता है। तत्काल गुस्से में भी आ जाता है। भीतर कुछ भी नहीं होता। ऐसे व्यक्ति कहते हैं कि मेरे भीतर यह भाव नहीं था, लेकिन मुंह से निकल गया। आखिर दूसरे के पास क्या पहुंचेगी? दूसरा तो यही कहेगा कि मैं तेरे हृदय को नहीं पढ़ सकता और मैं जान भी नहीं सकता कि तेरे भीतर क्या है? तुमने जो कहा, वह जहर ही उगला है। इस प्रकार के लोग होते हैं, जो कहते हैं कि उसमें सचाई है, झूठ नहीं है, पर दूसरा विश्वास नहीं करता, क्योंकि उसके सामने तो जहर उगलता हुआ ही दिखाई देता है। ऐसे लोग भीतर से सरल होते हैं, किंतु आवेश से घिरे होते हैं।

छलयुक्त हृदय, मधुर व्यवहार

तीसरी कोटि के लोग स्वार्थी होते हैं। स्वार्थी लोग धोखा देने में माहिर होते हैं। वे मधुर भाषा एवं मीठे शब्दों का प्रयोग करते हैं। ऐसी मीठी-मीठी बातें उगलते हैं कि दुनिया भुलावे में आ जाती है। लोग कहते हैं कि देखो, कितना अच्छा आदमी है, कितना बढ़िया आदमी है, किंतु भीतर में छुरियां-कैंचियां सब चलती रहती हैं। कितना बुरा सोचता है, परंतु वाक्चतुर बन जाता है। ऊपर से कभी नहीं दिखाता कि वह बुरा आदमी है। ऐसे लोग स्वार्थी मनोवृत्ति के होते हैं। जो कटु बोलता है, वह अप्रिय लगता है, उसका व्यवहार भी बिगड़ता है, पर वहां धोखा नहीं होता।

धोखा वहां होता है, जहां भीतर सारा जहर भरा होता है और बाहर में मीठी बातें होती हैं। आदमी उसमें फंस जाता है। यह धोखे का सबसे बड़ा कारण बनता है। जैसे खुले कुएं से सभी सावधान रहते हैं, किंतु ढके कुएं से सब असावधान रहते हैं। जैसे ही उस पर आदमी बैठता है कि धमाका बोल जाता है। जल समाधि हो जाती है। वहां आदमी धोखा खाता है। कोई आदमी सख्त हो सकता है, किंतु हृदय साफ होता है तो वहां धोखा नहीं होता। उसकी बात कटु लग सकती है, वह अप्रिय शब्द कह सकता है, पर कभी धोखा नहीं दे सकता। कहा भी जाता है कि दुर्जन की मीठी-मीठी बातों से तो सज्जन की लात भी भली लगती है।

छलयुक्त हृदय और व्यवहार

चौथी कोटि में दुष्ट व्यक्ति होते है। दुष्ट प्रकृति वाले लोगों का व्यवहार और भाषा दोनों दुष्टतायुक्त होती है। वे समाज के लिए हितकारी नहीं होते। कुछ व्यक्ति आते हैं और कहते हैं कि गुरुदेव अमुक व्यक्ति आपके पास आया है, वह बड़ा चालाक है, चतुर है, सावधान रहना। वह व्यक्ति बातें बहुत मीठी करता है, पर सबसे ज्यादा खतरनाक आदमी है। हम सोचें खतरनाक कौन बनता है? जो व्यक्ति भीतर कुछ रखता है और बाहर में कुछ और दिखाता है। जो छलनापूर्ण व्यवहार करता है, वह व्यक्ति सबके लिए खतरनाक बन जाता है।

प्रश्न होता है कि इन चारों में से ज्यादा खतरनाक किस कोटि का आदमी होता है? निश्छल व्यवहार वाला कभी भी खतरनाक नहीं होता। वह कोई खतरा पैदा नहीं करता। वह किंचित् मात्र भी दूसरों का बुरा नहीं करता, उसका व्यवहार कभी दूसरे के लिए अप्रिय नहीं होता, अनिष्टकारक नहीं होता। वह खतरे से मुक्त सर्वोत्तम व्यवहार है। सबसे बढ़िया व्यवहार है। वहां हृदय भी साफ होता है और वाणी भी मधुर होती है। दूसरे का व्यवहार भी घटिया नहीं होता। इसमें हृदय बहुत साफ व स्वच्छ होता है, पर मुंह से कटु शब्द निकल जाता है, किंतु ऐसे लोग फिर क्षमा भी मांग लेते हैं। प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू गुरुदेव के समय में अणुव्रत के प्रति पूर्ण समर्पण भाव रखते थे।

वे प्रकृति से विनम्र थे। मैंने ऐसी विनम्रता बहुत कम लोगों में देखी है। राष्ट्रपति थे, फिर भी अहंकार नहीं था। जब भी गुरुदेव राष्ट्रपति भवन में पधारते तो गुरुदेव पट्ट पर विराजते, स्वयं नीचे आकर सामने बैठ जाते। इतने सरल और

पवित्र विचारधारा वाले आदमी थे। हमने देखा वास्तव में वे अणुव्रती थे। एक दिन घर का नौकर सफाई कर रहा था। एक अच्छा पेन था। वह उसके हाथ से गिर गया। इस पर उन्होंने थोड़ा कटु शब्द कह दिया। कभी-कभी ऐसा होता है। ऐसी स्थिति आती है, कटु शब्द कह दिया जाता है।

राजेन्द्र बाबू हृदय से बहुत पवित्र थे। उन्होंने थोड़ी देर बाद नौकर को बुलाया और बुलाकर उससे क्षमा मांगी। तुम मुझे क्षमा करो। मैंने कटु बात कह दी। ऐसा व्यवहार कौन व्यक्ति कर सकता है, दूसरी कोटि का व्यक्ति, जिसका हृदय पवित्र है, मुंह से कोई कटु शब्द निकल भी जाता है। दूसरी कोटि वाले का व्यवहार भी उत्तम व्यवहार होता है।

तीसरी कोटि का व्यक्ति वह होता है, जो भीतर में तो काला और बाहर में गौरा होता है। उसके भीतर में कलुषता है और बाहर में मीठी बातें करता है। शायद इस कोटि के आदमी को ही लोग चापलूस कहते हैं। आजकल चापलूस की जगह नया शब्द 'चमचा' चल पड़ा है। उसकी नियत अच्छी नहीं है, भीतर तो घात लगा रहा है, मारने की बात सोच रहा है और बाहर में कहेगा–चिरंजीव भव, कोड दीवाली राज करो।

बाहर में ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है कि आदमी को उलझा देता है। ऐसा व्यवहार सबसे ज्यादा खतरनाक होता है। तीसरी कोटि का व्यवहार खतरनाक है। ऐसा पर्दा डालता है कि सामने वाला समझ नहीं सकता और मौका आने पर पता नहीं क्या कर देता है। एक व्यक्ति जैन मुनि बना था। उसके भीतर पाप था। उस पाप की भावना को लेकर साधु का वेश धारण कर लिया। गुरु को पता भी नहीं चला। वैराग्य को प्रदर्शित किया राजा को मारने के लिए। ऐसे तो उसे मार नहीं सकता। मुनि वेश करके मैं उसे आसानी से मार सकता हूं। यह सबसे खतरनाक व्यवहार है।

यह तीसरी कोटि का व्यवहार, जिसमें भीतर कलुषता, पाप और मलिनता रहती है और बाहर में उजला और मीठा व्यवहार करता है। यह दुनिया में सबसे खतरनाक और धोखा देने वाला व्यवहार है। इसी व्यवहार के कारण दुनिया में बड़े-बड़े अनर्थ हुए हैं। चौथा व्यवहार अच्छा नहीं है। यह सबसे निकृष्ट व्यवहार है। भीतर भी मलिनता और बाहर में भी मलिनता, भीतर भी कटुता और बाहर में भी कटुता रहती है।

व्यवहार के चार प्रकार

आध्यात्मिक और धार्मिक जीवन जीने वालों को इन चारों व्यवहारों को जानकर अपना व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि आचार अपने पास रहता है, व्यवहार दूसरे के पास जाता है। इसलिए कहा गया–कलह मत करो, क्योंकि तुम्हारा कलहपूर्ण व्यवहार दुनिया को सताएगा, खराब लगेगा। व्यवहार चार प्रकार का हो सकता है–

1. अकलह का व्यवहार
2. मैत्री का व्यवहार
3. सौहार्दपूर्ण व्यवहार
4. सौजन्यपूर्ण व्यवहार।

ये चारों व्यवहार सबको सुख देने वाले व्यवहार हैं, इसलिए हर धार्मिक को, जो उपवास करता है, बड़ी तपस्या करता है, सामायिक करता है, पौषध करता है और भी धर्म के अनेक प्रयोग करता है, आराधना करता है, उस व्यक्ति को निरंतर यह सोचते रहना चाहिए कि मेरे व्यवहार में परिवर्तन आ रहा है या नहीं? आ रहा है तो कहीं मेरे मुंह से कोई कटु शब्द तो नहीं निकल रहा है, मेरे द्वारा कोई गलत काम तो नहीं हो रहा है, कहीं किसी को मारने के लिए मेरा हाथ तो नहीं उठ रहा है, मेरा पैर तो नहीं उठ रहा है और मेरी भाषा से किसी को कोई दुःख तो नहीं हो रहा है। कोई कटु शब्द का व्यवहार तो नहीं हो रहा है। यह चिंतन रहेगा तो आचार और व्यवहार दोनों सुंदर बन जाएंगे।

30. खोज करें समाधि की

एक भाई से मित्र ने पूछा–तुम्हें जो काम करना था वह कर लिया? भाई बोला–मैं जो चाहता था, वह कर नहीं सका। पूछा–क्यों नहीं कर सके? मेरा मन ठीक नहीं था। मैं समाधि में नहीं था। निष्कर्ष यह है कि आदमी अच्छा काम तभी कर सकता है जब चित्त समाधि में होता है। मन स्वस्थ होता है तो अच्छा काम कर सकता है। मन उखड़ा-उखड़ा होता है तो काम ठीक नहीं कर सकता। किसी ने पूछा–तू कल अमुक स्थान पर गया था। वहां तुम्हारा प्रयोजन सिद्ध हुआ या नहीं? बोला–प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ? बोला–मैं तो वहां गया था, लेकिन जाते ही उसने मेरा अपमान कर दिया, फिर आगे की बात तो समाप्त हो गई।

समाधि से सफलता

आदमी असमाधि के कारण सफलता से वंचित रह जाता है। बहुत जगह सफलता मिलनी चाहिए थी, परंतु असमाधि की वजह से सफलता रुक जाती है। दशाश्रुतस्कन्ध में असमाधि के बीस स्थान बताए गए हैं। उनमें एक स्थान है–कलह। जो व्यक्ति बात-बात में कलह करता है, लड़ाई करता है, झगड़ा करता है उसके असमाधि बनी रहती है। उसके सिर दर्द बना रहता है, तनाव बना रहता है। बहुत लोगों की शक्ति असमाधि में खर्च हो जाती है। हर आदमी में काम करने की शक्ति होती है और वह बहुत अच्छा काम कर सकता है, पर पहली शर्त है चित्त में समाधि हो।

हमारे सामने प्रश्न है कि हम समाधि की खोज कहां करें? असमाधि और समाधि में कोई बहुत दूरी नहीं है–दोनों पास-पास चलते हैं। दोनों शब्द बहुत निकट हैं। हमें पहले असमाधि के कारणों को खोजना है। असमाधि का

एक हेतु है आपदा। जब तक व्यक्ति आपदा में जीता है, तब तक समाधि प्राप्त नहीं कर सकता। वह रात-दिन असमाधि में रहता है। हम इतिहास को देखें। उन लोगों ने शायद ज्यादा विकास किया है, जिन्होंने आपदा से छुट्टी पा ली है। जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के लिए जिन्हें जूझना नहीं पड़ा, उन लोगों ने बहुत बड़े-बड़े काम किए हैं। रात-दिन रोटी की चिंता में आर्त्तध्यान रहता है, उसका मस्तिष्क भी रोटी को ही देखता है। वह अन्य कोई चीज नहीं देख सकता। जीवन की आवश्यकताओं का पूरा न होना, असमाधि का बहुत बड़ा कारण है। हम केवल भीतर की ही बात न करें। बाहर का कारण क्या है? उस पर भी ध्यान दें।

समाधि कोई दूसरा व्यक्ति नहीं दे सकता, उसे भीतर अनुभव करना होता है। भीतर और बाहर दोनों को देखना है। राग की प्रबलता, द्वेष की प्रबलता और आवेश की प्रबलता के कारण असमाधि हो जाती है। थोड़ा-सा किसी ने कुछ कह दिया, इतने में तो रोटी हराम, नींद हराम, रूठ गए। सारा दिन तनाव में बीतता है। यह भीतर का कारण है। यह असमाधि कहां से आई? थोड़ा-सा कुछ कहा, इतने में तो सबकुछ समाप्त हो जाता है। इमोशन इतना प्रबल है कि छोटी-सी घटना भी बहुत बड़ा रूप ले लेती है।

चंचलता : समाधि का बाधक तत्त्व

समाधि शतक ग्रंथ में एक विषय पर विचार किया गया कि एक व्यक्ति अपमान को सहन करता है, उसे कुछ अनुभव ही नहीं होता। दूसरे को इतना लगेगा कि हमारा बहुत बड़ा अपमान हो गया। मैंने किसी व्यक्ति से सुना कि मैं वहां गया, लेकिन मेरा सम्मान ही नहीं किया। यह सब क्यों होता है? पंचसूत्रम् में बहुत सुंदर कहा गया है–

अपमानादयतस्य विक्षेपो यस्य चेतसः।

अपमानादि किसका होता है? जिसका चित्त अति चंचल है। वह मामूली-सी बात में अपमान मान लेता है। 'इधर जाओ' कहने मात्र में अपमान का अनुभव करता है। मैंने देखा–कभी-कभी ऐसा होता है। पुराने जमाने की बात है। आचार्यश्री विश्राम कर रहे थे। दरवाजे पर छोटे संत खड़े थे। कोई भाई बीस वर्ष बाद दर्शन करने आया। छोटे साधु ने कहा–दर्शन नहीं हो सकता।

वह बहुत नाराज हो गया। जिसके मन में चचंलता ज्यादा है, प्रतिकूल उत्तर सुनने पर वह रूठ जाता है। जिसके मन में विक्षिप्तता नहीं है, वह अपमान नहीं मानता।

एक पहुंचा हुआ योगी था। उसकी साधना सिद्ध हो गई थी। भिक्षा के लिए किसी गृहस्थ के घर में गया। गृहस्थ की पत्नी झगड़ालू थी। योगी को देखा और बोली–रोज-रोज घर में आ जाते हो। जाओ यहां से, फिर मन में आया, मैंने ठीक नहीं किया, कुछ दे देती तो अच्छा रहता। उसने योगी को बुलाया तो वे तत्काल वापिस आ गए। वह बोली–महाराज! मैंने आपका अपमान किया, फिर भी आप कैसे आ गए? योगी तो फक्कड़ था। उसने कहा–क्या फर्क पड़ता है? जो व्यक्ति इतना पहुंचा हुआ होता है, उसके लिए अपमान की कोई बात नहीं होती। उसे गालियां भी दें तो कोई फर्क नहीं पड़ता। महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वर, तुकाराम, नामदेव आदि उच्च कोटि के संत हुए हैं, जिनका अनेक बार अपमान हुआ। संत नदी में स्नान करके आते, फिर उन पर कोई थूक देता, फिर स्नान करते, फिर थूक देता। यह क्रम कई बार चला। अंत में ऐसी हरकत करने वाले व्यक्ति ने माफी मांगी।

संत ने कहा–तुमने क्या अपराध किया? मां गोदावरी में रोज एक बार स्नान करता हूं, तुम तो मेरे हितैषी हो। आज मुझे सौ बार स्नान करने का मौका दिया है। जो साधना की उच्च भूमिका पर पहुंच जाते हैं, उनके लिए मान-अपमान के सारे प्रश्न समाप्त हो जाते हैं। एक व्यक्ति सामान्य भूमिका में साधना कर रहा है। उस साधु या गृहस्थ के सामने मान-अपमान का प्रश्न आ सकता है। जितनी मन की चंचलता है, उतना अपमान का अनुभव अधिक होता है। जितनी मन की चंचलता कम होती है, उतना अपमान का अनुभव कम होता है। कलह, लड़ाई, निंदा, चुगली, मान, अपमान–ये सब चंचलता के साथ जुड़े हुए हैं। जहां चंचलता है, वहां समाधि नहीं हो सकती।

प्रश्न समाधि का

समाधि का एक बड़ा प्रश्न है। उसे हम कैसे खोजें? हमें दोनों कारणों–भीतर और बाहर पर विचार करना होगा। भीतर का परिष्कार करने के लिए साधक भीतर का शोधन करता है, तपस्या करता है, उससे निर्जरा होती है। सब

लोग प्रथम कोटि के व्यक्ति नहीं होते, साधारण लोग होते हैं। उनको समाधि कैसे मिले? उनके लिए पहले बाहर के कारणों के परिष्कार की बात आती है। साधक के लिए पहले भीतर के कारण की खोज और एक जनसाधारण के लिए पहले बाहर के कारण की खोज आवश्यक है। पहले बाहरी कारणों को समाप्त करो, तब भीतर का परिष्कार होगा।

लड़ाई-झगड़े, जो असमाधि के कारण बनते हैं, उन सबको समाप्त किया जा सकता है। दो भाइयों में झगड़ा चल रहा है। दोनों को बुलाते हैं, बातचीत करते हैं, समझाते हैं। दोनों शांत हो जाते हैं। लड़ाई समाप्त हो जाती है और दोनों चले जाते हैं। कलह का निवारण किया जा सकता है। भाई-भाई में कलह होता है, पति-पत्नी में कलह होता है। बड़ी-बड़ी संस्थाओं में कलह होता है। बड़ी-बड़ी राजनीतिक पार्टियों में कलह होता है। कलह के बाहरी कारणों को भी शांत किया जा सकता है।

समाधान हर बात का हो सकता है। हम समाधान खोजें। लड़ाई-झगड़े से कोई समाधान नहीं होता। लड़ते रहो, क्या समाधान होगा? लड़ते-लड़ते कोर्ट में चले जाते हैं। क्या इससे समाधान हो गया? समाधि मिल गई? उत्तर मिल गया। एक आदमी कोर्ट में जाता है। वर्षों तक केस चलता रहता है। पिता की मृत्यु हो गई। पुत्र की मृत्यु हो गई। पोता अब केस लड़ रहा है। समाधान कैसे मिले? कहां मिले? समाधान का तरीका है समझौता और वार्ता। यही समाधि का तरीका है। लड़ते रहो, अड़ते रहो, झगड़ते रहो, समाधान नहीं होगा। समाज में भी ऐसा होना चाहिए। कुछ ऐसे व्यक्ति हों, जो घरेलू झगड़ों को समाप्त कर सके।

परिवार से शुरू हो अहिंसा

अहिंसा का एक बड़ा प्रयोग है। अहिंसा का प्रयोग कहां से शुरू होना चाहिए? परिवार से पहला प्रयोग शुरू होना चाहिए। परिवार में झगड़ा न हो, कलह न हो, अशांति न हो, असमाधि न हो। जिस परिवार में कोई कलह नहीं है, कदाग्रह नहीं है, वह परिवार हमेशा समाधि का जीवन जीता है। जैसे एक भिक्षु, एक संन्यासी समाधि का जीवन जीता है, वैसे ही वह परिवार समाधि का जीवन जीता है, जिसमें कोई कलह नहीं होता। यह बहुत बड़ी बात है। अगर हम भीतर और बाहर दोनों कारणों पर विचार करें तो शायद कलह नहीं होता।

दो भाइयों ने बंटवारा किया। बंटवारे के समय लड़ाई नहीं हो तो अपवाद ही मानना चाहिए। भाई बड़ा समझदार था। बंटवारा कर दिया, फिर हमारे दर्शन करने आया। पूछा—बंटवारा कैसे हुआ? परस्पर विवाद तो नहीं हुआ। कहा—विवाद का कारण ही नहीं है। मैंने यह सोच लिया दस-बीस लाख रुपए मेरे पास रहे या मेरे भाई के पास रहे, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आखिर वह मेरा भाई ही तो है, फिर लड़ाई का कोई प्रश्न ही नहीं है। प्रश्न तो तब होता है जब छोटी बात को लेकर ही कलह हो जाता है।

सुपारी के पेड़ को लेकर झगड़ा हो गया। छोटी-सी बात को लेकर सुप्रीम कोर्ट और हाई कोर्ट में पहुंच गए। कारण है मन की चंचलता। हम अगर समाधि चाहते हैं तो सबसे पहले मन की समस्या को समाहित करने का प्रयत्न करें। बार-बार हम यह कहते हैं कि प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करें। क्यों? यह तो हम जानते हैं कि प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करके सब व्यक्ति अध्यात्म के शिखर तक नहीं पहुंच पाते हैं।

यह संभव भी नहीं है, पर इतना जरूर है कि प्रेक्षाध्यान का अभ्यास करेंगे तो छोटी-छोटी बातों को लेकर असमाधि नहीं होगी। कम से कम एक भूमिका बन जाएगी कि छोटी बात का निपटारा थोड़े में ही कर दो। अनेक लोगों ने ऐसा किया है। उनमें चिंतन का परिवर्तन आया है कि वे कोई छोटी बात में नहीं उलझे। छोटी बात में न उलझें, इतना हो जाए तो बहुत बड़ी बात होती है। जो ध्यान का अभ्यास नहीं करते, उनके राग-द्वेष इतना प्रबल होता है कि छोटी बात को लेकर तनाव हो जाता है। रामायण में एक प्रसंग आता है कि दो सगे भाई थे। बड़े भाई की पत्नी क्रूर थी, कठोर थी। छोटे भाई को कुटिया में देखना भी नहीं चाहती थी। एक बार भोज का प्रसंग आया तो बड़े भाई की पत्नी ने कहा—देखो! छोटे भाई को नहीं बुलाना। उसने कहा—यह कैसे होगा कि उसको न बुलाऊं? अच्छा कोई बात नहीं है, बुला लो। बुलाओ तो खिचड़ी परोसो, घी मत परोसना। वह अपनी बात पर ही अड़ गई। उसने कहा—कोई बात नहीं है। घी नहीं परोसेंगे। वह सबको खिचड़ी परोस रहा है और घी भी। अब सोचा, क्या करूं? छोटे भाई को घी न परोसूं, और सबको परोसूं, कैसे होगा? उसने युक्ति निकाली।

भाई के पास एक दूसरा आदमी बैठा था। उसे घी परोसा गया और घी का वर्तन भी उसके पास रख दिया। पैर से ऐसी ठोकर लगाई कि सारा घी छोटे भाई की थाली में चला गया। जहां आदमी में समझ होती है वह समाधान भी निकाल लेता है।

बड़े भाई की पत्नी ने कहा–उसे घी क्यों परोसा?

वह बोला–उसे मैंने घी डाला नहीं, ठोकर लग गई। कोई न कोई ऐसा रास्ता निकलता है कि कलह से बचे? जहां कलह होता है, वहां समाधि का प्रश्न ही नहीं रहता है। चित्त की समाधि वहां होती है, जहां कलह नहीं होता।

कलह के भीतर के कारण और बाहर के कारण दोनों को कैसे निरस्त किया जाए? यह एक अहिंसा का महान प्रयोग है। इससे जीवन समाधिपूर्ण हो जाता है। हर व्यक्ति समाधि और शांति के साथ आनंद का जीवन जी सकता है।

31. कैसे जीएं?

आज जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण के निर्माण की जरूरत है। पहला प्रश्न होता है–क्या जीना जरूरी है? यदि है तो कैसे जीएं? दोनों बातें बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। क्यों जीएं? कैसे जीएं? एक बात यह भी महत्त्वपूर्ण है कैसे समाधि मरण से मरे? जीवन का प्रारंभ भी समाधि से हो और जीवन की समाप्ति भी समाधि मरण से हो। जीवन का प्रारंभ होता है, किसी के हाथ की बात नहीं है।

कोई बच्चा जन्म लेता है, नियति मानना चाहिए। सब महावीर नहीं होते, जिनको यह पता हो कि मुझे कैसे जन्म लेना है। सबको अतीन्द्रिय ज्ञान जन्म से नहीं होता। जन्म एक नियति है, किंतु कैसे जीना यह नियति नहीं है। इसमें परिवर्तन किया जा सकता है। मरना नियति है, पर समाधि मरण नियति नहीं है। वह अपने पुरूषार्थ के द्वारा होता है। आदमी समाधि मरण से मृत्यु का वरण करना चाहता है। यह जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

हमारी जीवनशैली कैसी हो? संयमपूर्ण जीवनशैली से लोग जीना नहीं जानते। मरने की बात तो बाद की बात है। कैसे जीना? जीते तो सब हैं, पर जीने की कला कम लोग जानते हैं। कलापूर्ण जीवन जीना बड़ी कठिन बात है। जो लोग संयम का मूल्यांकन नहीं करते, वे कलापूर्ण जीवन नहीं जी सकते। वे फूहड़पन का जीवन जीते हैं।

संयमप्रधान जीवन

हमारा जीवन संयमप्रधान होना चाहिए। एक विदेशी व्यक्ति ने एक प्रश्न रखा कि जैन मुनि को एक दिन में कितने पानी की जरूरत होती है? एक छोटे बच्चे से आज पूछा जाए कि दिन के समय स्नान में कितना पानी खर्च करते हो?

कोई पता नहीं है। पानी बाल्टी में लेकर स्नान करते हैं या नल खोलकर नीचे बैठ जाते हैं। कितना लीटर पानी खर्च होता है? व्यक्ति का जीवन संयमप्रधान हो तो पानी का मूल्य दूध और घी से भी ज्यादा है। जैन आचार संहिता में षड्जीवनिकाय की व्यवस्था की। हमारी जीवनशैली अहिंसा और संयम पर आधारित है। जीवन में अहिंसा का विकास कितना हुआ? संयम का विकास कितना हुआ? गुड़गांव से एक दम्पति आया। पति-पत्नी दोनों थे। बैठ गए। अनजान व्यक्ति था। अपरिचित व्यक्ति का पहला प्रश्न यही था–द्वेष की भावना कैसे मिट सकती है? मैंने अनेक उपाय उसे बताए। वह बोला–द्वेष अगर परिवार में हो तो कैसे मिट सकता है? हिंसा की समस्या परिवार में भी है और बाहर भी है। कोई भी परिवार ऐसा शायद भाग्य से मिलेगा कि जिसमें आठ सदस्य हैं तो आठों में आपस में प्रीति, सौहार्द और मैत्री का भाव हो।

अहिंसाप्रधान जीवन

एक बार गुरुदेव लाडनूं में थे। अमेरिका से एक व्यक्ति का पत्र आया कि हम कुछ लोग रशिया जा रहे हैं। वहां जाकर हम परिवार में सौहार्द से कैसे रहे? इस विषय पर काम करना चाहते हैं। आप भी हमारे साथ चलें तो बहुत अच्छा होगा। हमारे शिष्टमंडल का आप नेतृत्व करें, यह हमारी प्रार्थना है। हिंसा की समस्या केवल सीमा पर नहीं है, परिवार में भी हिंसा हो रही है। परस्पर प्रीति-मैत्री का भाव बहुत कम हो रहा है। बहुत परिवारों को मैं जानता हूं। एक भाई आया और बोला–हम सब भाई मिले। कितने वर्षों से प्रयत्न चल रहा है कि परस्पर में निपटारा हो जाएगा, झगड़ा मिट जाएगा। आखिर नहीं मिटा।

बड़ी निराशा के स्वर में कहा–भाई! सब इकट्ठे हो गए, पर एक भाई अड़ गया। ऐसा नहीं होगा। इतना नहीं दूंगा। आज बड़े-बड़े परिवारों में हिंसा का वातावरण है, झगड़ा है, कलह है, द्वेष है और स्वार्थ है। संस्थाओं में भी हिंसा का वातावरण है। जहां कुछ लोग मिलते हैं, काम करते हैं, आकांक्षाएं होती हैं और हिंसा बिना बुलाए आगे आ जाती है। कभी-कभी तो संस्थाओं में चुनाव के समय परस्पर में गाली-गलौज, हाथापाई, झगड़ा आदि होने की संभावना बनी रहती है।

राजनीति की भी यही स्थिति है। चुनाव चल रहे हैं। एक दल दूसरे दल को जितना नीचा दिखा सके, उसमें जितना रस है, उतना रस किसी बात में

नहीं है। दूसरों की कमजोरी और अपनी विशेषता बता सके, यह परम धर्म बन गया। प्राचीन मान्यता तो यह थी कि आदमी को अपनी प्रशंसा, अपनी श्लाघा, अपना बड़प्पन नहीं करना चाहिए और दूसरों की हल्की बात नहीं कहनी चाहिए। आज तो सारा उलट गया कि अपनी प्रशंसा जी भरकर करो। दूसरों की निंदा, हल्की बात करने में संकोच ही नहीं है।

अहिंसा कहां है? जीवनशैली में अहिंसा के बीज ही नहीं हैं। चाहे परिवार का वातावरण हो, चाहे किसी सभा-संस्था का वातावरण हो, चाहे राजनीतिक दलों का वातावरण हो, हिंसा सब जगह हो रही है। उसे प्रकट होने का मौका नहीं मिलता। वैशेषिक दर्शन में माना जाता है गन्धवती पृथ्वी पृथ्वी में गंध होती है। यह सिद्धांत है, पर वह गंध प्रकट नहीं होती। उस पर पानी गिरा, भीनी-भीनी, सौंधी-सौंधी मिट्टी बन जाती है। सुगंध आने लग जाती है।

झगड़े की नहीं, प्रेम की भाषा सीखें

हिंसा का भाव, हिंसा का विचार हर व्यक्ति के भीतर जमा हुआ है। उसे प्रकट होने का मौका नहीं मिलता। मौका मिलते ही हिंसा फूट पड़ती है। शायद इसीलिए संस्कृत कोषों में दो का नाम रखा गया द्वंद्व। लड़ाई का नाम है द्वंद्व। दो मिले और लड़ाई शुरू हो जाती है। हिंसा शुरू हो जाती है। हमारी जीवनशैली ऐसी बने, जिसमें हिंसा कम हो। यह तो मैं नहीं मानता कि हिंसा छूट जाएगी। हिंसा का अल्पीकरण बहुत जरूरी है। पश्चिमी लेखक ने लिखा कि अल्प हिंसा का जीवन अच्छा होता है। इस विषय पर मैंने टिप्पणी की। 'आपका तात्पर्य तो ठीक है, पर शब्द-प्रयोग ठीक नहीं है। अल्प हिंसा अच्छी नहीं है, हिंसा का अल्पीकरण अच्छा है।

आचार्य भिक्षु की भाषा में हिंसा अच्छी नहीं होती। हिंसा का अल्पीकरण अच्छा होता है।' हम हिंसा को कम करते चले जाएं। हमारी जीवनशैली अहिंसा से ओतप्रोत हो, संयम से ओतप्रोत हो। इसका तात्पर्य है कि हिंसा को कम करते चले जाएं। असंयम को कम करते चले जाएं। एक दिन ऐसा आ सकता है कि अहिंसक बन जाएं और संयमी बन जाएं। हमें धरती को स्वर्ग बनाना है। धरती स्वर्ग कब बनेगी? जब हमारा जीवन अहिंसाप्रधान होगा, हमारा जीवन संयमप्रधान होगा। दो बातें बचपन से ही बच्चों को सिखा दी जानी चाहिए–अहिंसा और संयम। दो छोटे-छोटे बच्चे हमारे पास बहुत आते

हैं, बैठे रहते हैं, खड़े रहते हैं। मूलचंदजी बोथरा के दौहित्र हैं। एक दिन मैंने पूछा–बोलो, भाई-भाई आपस में लड़ते हो? हां, लड़ते हैं। मैंने कहा–ऐसा मत करो। अब से यह कहो–प्रेम करते हैं। अब उनसे पूछते हैं–आपस में झगड़ा करते हो? उनकी भाषा बदल गई। वे कहते हैं–झगड़ा नहीं करते, प्रेम करते हैं। झगड़े की जगह प्रेम की भाषा आ गई।

समाज का कायाकल्प

अहिंसात्मक जीवन जीने का और संयमपूर्वक जीवन जीने का, बचपन से ही बच्चों में संस्कार आ जाए तो समाज का कायाकल्प हो सकता है। आज बच्चों में भी संयम कहां है? हमारे भी छोटे-छोटे साधु ग्यारह, बारह, तेरह वर्ष के हैं। कहते हैं कि दांत खराब हैं। डॉक्टर के पास जा रहे हैं। मैंने कहा–अभी तो तुम जन्मे ही हो और दांत खराब हो गए। बच्चे समझते नहीं हैं। टॉफी ज्यादा खाते हैं, बर्फ ज्यादा खाते हैं, ठंडी चीज ज्यादा खाते हैं, इससे दांत खराब हो जाते हैं। पुराने जमाने में लंबे समय तक भी दांत खराब नहीं होते थे। मैं अणुव्रत भवन, दिल्ली में था।

एक दिन वहां दरियागंज से एक जैन डेंटिस्ट आया। मेरे दांत देखे और कहा–आप की अवस्था कितनी है? मैंने कहा–पचहत्तर वर्ष। पचहत्तर वर्ष में ऐसे दांत आपके हैं। उसने इतना आश्चर्य व्यक्त किया। कुछ दिनों पहले एक डॉक्टर आया। हमारे छोटे-छोटे साधुओं के दांत देखे और फिर मुझ से बातचीत की। मेरे दांत भी देखे। बाहर जाकर बोला–इन छोटे साधुओं से तो गुरुजी के दांत बहुत अच्छे हैं। डॉक्टर की बात ठीक है। मैंने बचपन में कभी टॉफी, बर्फ कुछ भी नहीं खाया, तब दांत तो अच्छे रहेंगे ही। आज बच्चों को संयमप्रधान जीवन का बोध नहीं दिया जा रहा है। उनको नहीं बताया जाता कि संयम के साथ जीवन जीना चाहिए। छोटे-छोटे बच्चे आंखों पर चश्मा लगा रहे हैं। आठ घंटे टी.वी. देखने वाला अच्छा आदमी कैसे बनेगा? उसका संयमप्रधान जीवन कैसे बनेगा? वह हिंसा से कैसे मुक्त रहेगा? उसका अहिंसाप्रधान जीवन कैसे बनेगा?

आत्मा को नहीं देखा, परमात्मा को नहीं देखा, आत्मा के प्रति अनुराग नहीं, परमात्मा के प्रति अनुराग नहीं। सबसे बड़ा आकर्षण और अनुराग का

केन्द्र है टी.वी.। इसके माध्यम से बहुत ही असंयम का विकास हुआ है। जीवन अहिंसाप्रधान बने और संयमप्रधान बने। समाज व्यवस्था में बदलाव आए। समाज की व्यवस्था बदले तब तो कहीं पर भी जाना बहुत सार्थक होता है।

राजा भोज की सभा में एक व्यक्ति बहुत बढ़िया कपड़ा पहन कर आया, अच्छा दिखाई दे रहा था। चेहरा भी अच्छा था। राजा ने सोचा–कोई बहुत बड़ा आदमी लग रहा है। राजा खड़ा हुआ, अभिवादन किया, स्वागत किया और अच्छे आसन पर बिठा दिया। बातचीत शुरू की तो उसमें कोई दम नहीं था। थोड़ी देर बाद एक दूसरा व्यक्ति आया। साधारण कपड़े में था। राजा ने ध्यान ही नहीं दिया। नमस्कार कर बैठ गया। अब पहला व्यक्ति जाने लगा। राजा ने ध्यान नहीं दिया, चला गया। अब जो बाद में आया था, उसके साथ राजा ने बातचीत शुरू की। इतना बड़ा विद्वान, इतना वाक्पटु, इतना बुद्धिमान कि राजा घंटों तक बात करता चला गया और जब उसने प्रस्थान किया तब राजा छोड़ने के लिए दरवाजे तक गया। राजा का पहुंचाने जाना बहुत बड़ी बात थी। राजा परिषद में आकर बैठा।

राज्यसभा के सांसद बोले–महाराज! आपका व्यवहार हमारी समझ में नहीं आया। जब एक आदमी आया तब तो आपने इतना स्वागत किया और गया तो ध्यान ही नहीं दिया। दूसरा व्यक्ति आया तो आपने उसके सामने भी नहीं देखा और जब वह जाने लगा तब आप उसे पहुंचाने दरवाजे तक गए। यह व्यवहार हमारी समझ में नहीं आया। राजा ने बहुत सीधा-सीधा उत्तर दिया–तुम समझे नहीं। आते समय स्वागत कपड़ों का होता है और जाते समय स्वागत गुणों का होता है। चिंतन करें हम कहीं भी हो, अगर अहिंसाप्रधान और संयमप्रधान शैली से जुड़ा कोई बड़ा कार्य होता है तो हम जीवन को सार्थक मानेंगे और यदि अहिंसा और संयम नहीं है तो हम कोई नई बात नहीं जोड़ पाएंगे, नई उपलब्धि नहीं होगी, इसलिए हर व्यक्ति को चिंतन करना है कि हमारा जीवन कैसा होना चाहिए?

32. इन्द्रियातीत सुख

भीतर जाते हैं तो लगता है कि भवन बहुत बड़ा है। बाहर आते हैं तो लगता है कि प्रवचन पंडाल बहुत बड़ा है और आगे जाएं तो लगता है कि गांव बड़ा है। आगे से आगे चलो, कोई न कोई बड़ा मिलता जाएगा। यह हमारे स्थूल जगत का दर्शन है। सूक्ष्म जगत में जाएं तो प्राणी जगत इतना बड़ा है, सामान्य आदमी उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता।

एक सूई की नोक जितनी जगह में असंख्य जीव और अनंत जीव हो सकते हैं। कितना बड़ा है हमारा प्राणी जगत। प्राणी जगत का पहला सदस्य है, एक इन्द्रिय वाला जीव जगत, जो सबसे बड़ा है। इन जीवों के केवल स्पर्शन इन्द्रिय, केवल त्वचा होती है। वे अपना सारा जीवन स्पर्शन के द्वारा चलाते हैं। वही उनके लिए ज्ञान का माध्यम है और वही संवेदन का।

उसके बाद दो इन्द्रिय वाला जीव जगत है। दो इन्द्रियां–स्पर्शन और रसन।

उसके आगे तीन इन्द्रियों वाला जगत है। तीन इन्द्रियां–स्पर्शन, रसन, घ्राण। तीन इन्द्रिय वाले जीवों में सूंघने की शक्ति और आ जाती है। चींटियों की घ्राण शक्ति बहुत तेज होती है। कहीं छिपाकर भी मिठाई रख दो, चींटियां चली जाएगी। एक छोटा बच्चा चींटियों के पीछे-पीछे चल रहा था।

किसी ने पूछ लिया–तू चींटियों के साथ क्यों चल रहा है। माँ ने मिठाई छुपा कर रखी है। चींटियां ढूंढ़ लेंगी तब मुझे पता लग जाएगा कि मिठाई कहां छुपाई हुई है।

आगे चलो तो चतुरिन्द्रिय जीव जगत है, जहां आंख की शक्ति और बढ़ गई और आगे जाएं तो पंचेन्द्रिय जीव जगत, जहां सुनने की शक्ति भी बढ़ गई। यह पांच इन्द्रियों का जगत बहुत विशाल जगत है।

मनुष्य पंचेन्द्रिय प्राणी है, उसके पांच इन्द्रियां हैं। वह इन्द्रियों के द्वारा जानता है और जानने के साथ-साथ रसास्वाद भी करता है, सुख की अनुभूति करता है।

सुख है अतीन्द्रिय जगत में

सुख कहां से आता है? इन पांच इन्द्रियों की अनुभूति से सुख आता है तो दुःख भी आता है। इन्द्रियां विकास का माध्यम बनती हैं। एक इन्द्रिय से द्वीन्द्रिय में विकास, दो इन्द्रियों से तीन इन्द्रिय वाले जीवों में विकास, तीन इन्द्रिय से चार इन्द्रियों वाले जीवों में विकास और फिर पांच इन्द्रियों वाले जीवों में विकास अधिक होता है। इन्द्रियां विकास का साधन हैं, ज्ञान का साधन हैं और राग-द्वेष पैदा करने के लिए भी वे साधन बनती हैं। इस प्रकार बहुत सारी समस्याएं इन्द्रिय-जगत से पैदा होती हैं। धर्म ने समस्याओं के समाधान के लिए अतीन्द्रिय जगत की खोज की। अतीन्द्रिय जगत में इन्द्रियों का प्रयोजन भी समाप्त हो जाता है। वहां सुख ज्यादा है। इन्द्रिय जगत में जो सुख है उससे भी ज्यादा सुख है अतीन्द्रिय जगत में। सामान्य आदमी इन्द्रियों के सुखों में लीन रहता है। उसे यह पता नहीं चलता कि अतीन्द्रिय जगत में भी कोई सुख है। यह गूंगे का गुड़ है। गूंगे ने गुड़ खाया, मीठा लगा और पूछा–बोलो, स्वाद कैसा है? स्वाद को बता नहीं सकता। जो चखता है उसी को स्वाद आता है। बोलने से कुछ नहीं होता। गुड़ पर चाहे पचास पुस्तकें लिख दो, पर स्वाद की अनुभूति तो उसी को होगी, जो खाएगा, पूछने पर अनुभव नहीं होगा।

रस अध्यात्म का

अतीन्द्रिय जगत धर्म का जगत है। अतीन्द्रिय जगत की अनुभूति धर्म करने वाला ही कर सकता है। एक बार जो व्यक्ति अतीन्द्रिय चेतना के सुख का अनुभव कर लेता है, उसके सामने इन्द्रियों का सुख फीका पड़ जाता है, छोटा पड़ जाता है और बहुत काम का नहीं लगता। हम एक कथा वस्तु पर विचार करें। दो विद्यार्थी पढ़ रहे थे। आस-पास बैठने से मित्र भी बन गए।

एक दिन प्रसंगवश शिक्षक ने बताया–दूध पीना चाहिए, जिससे मस्तिष्क पुष्ट रहता है और इन्द्रियां पुष्ट रहती हैं। दूध बड़ा उपयोगी है। बच्चों को भी दूध पीना चाहिए, जिससे अच्छी विद्या आएगी। जो विद्यार्थी संपन्न घर का था, दूध

उसके लिए सुलभ था। वह हमेशा दूध पीता था। जो गरीब घर का विद्यार्थी था, वह भी अपने घर गया और मां से बोला–मां! आज से मैं सुबह दूध पीऊंगा। मास्टर साहब ने बताया है कि दूध पीने से विद्या ज्यादा आती है और शरीर भी स्वस्थ रहता है। मां ने मन ही मन सोचा–पूरी रोटी भी नहीं मिल रही है, दूध कहां से आएगा? बच्चे को निराश करना नहीं चाहती थी। बोली–आज तो दूध घर में नहीं है, कल से मैं तुम्हें दूध का नाश्ता कराऊंगी।

दूसरे दिन एक गिलास दूध तैयार कर बच्चे को पिलाया। बहुत अच्छा है। इतने दिन तूने मुझे नहीं पिलाया, कितना मिठास है। आज तो मैं तृप्त हो गया हूं। अब पढ़ाई बहुत अच्छी करूंगा। चार महीने बीत गए। दूध पीता रहा। एक दिन संपन्न मित्र ने उससे पूछा–भैया! नाश्ते में क्या लेते हो? दूध पीता हूं। आज चलो, मेरे घर दूध पीने। मनुहार मान ली। दूसरे दिन उसके घर गया। दूध में इलायची और मिश्री मिलाई हुई थी। स्वाद भी अलग था। पूछा–यह दूध है या और कुछ है? मित्र ने उत्तर दिया–दूध है। अब दूध का स्वाद आ गया।

दूसरे दिन सुबह मां ने कहा–बेटा! दूध पी लो। बोला–मां! धोखा दे रही हो, दूध तो मैंने कल पीया था। यह तो दूध नहीं है। मां ने कहा–बेटा! गरीब का दूध यही है। आ जाओ, पी लो। नहीं, मैं नहीं पीऊंगा। मैंने असली दूध पी लिया, अब मैं यह दूध नहीं पीऊंगा। मां ने कहा–बेटा! समझता नहीं है, यह दूध है। तू पी ले। बार-बार कहा, पर उसने हाथ में गिलास नहीं उठाई। हम विचार करें, बच्चे ने गिलास क्यों नहीं उठाई? जब एक बार असली दूध का स्वाद चख लिया, अब वह चीनी मिला हुआ आटे का घोल कैसे पी सकता है? जिस दिन असली दूध पी लिया, दिशा बदल गई, चिंतन बदल गया, अब वह आटे के घोल की गिलास को नहीं पीना चाहेगा।

घटना का मर्म बहुत सुंदर है। जिस व्यक्ति ने अध्यात्म का स्वाद चख लिया तो फिर इन्द्रियों के सुखों में लिप्त नहीं होगा। उसे लगेगा कि मैं जिसको सुख मान रहा हूं, वह तो वास्तव में दुःख है। इसके द्वारा कितनी समस्याएं पैदा होती हैं। इन्द्रिय लोलुपता स्वास्थ्य को भी बिगाड़ देती है, मन को बिगाड़ देती है, झगड़ा भी पैदा कर देती है। अब मैं अतीन्द्रिय चेतना के जगत में आया हूं और मैंने अतीन्द्रिय सुखों का स्वाद चख लिया, असली स्वाद आ गया। अब मैं इन्द्रिय सुखों में लिप्त नहीं बनूंगा।

अमन की दुनिया

अतीन्द्रिय जगत वहां शुरू होता है, जहां मन काम नहीं करता, मन की सीमा समाप्त हो जाती है। जब साधक कायोत्सर्ग की गहराई में चला जाता है, उसे बाह्य जगत का कोई भान नहीं रहता तब वह अमन की दुनिया में चला जाता है। एक आदमी अध्यात्म की साधना करता है। दूसरा साधना नहीं करता है। साधना करने वाला पूछता है –बोलो, साधना से तुम्हें क्या मिला? साधक कहता है–अरे मैं कैसे बताऊं, बहुत मिला है। तुम भी करो, तुम्हें भी पता लग जाएगा। उसने भी धर्म की साधना शुरू की। प्रश्न समाप्त हो गया। प्रश्न तब तक रहता है, जब तक हम इन्द्रियों के स्तर पर जीते हैं। जब हम अतीन्द्रिय के स्तर पर जीते हैं और अमन के स्तर पर चले जाते हैं तो सारी शंकाएं समाप्त हो जाती हैं। अमन होना, मन से परे जाना, मानसिक विचारों को रोक देना बड़ा कठिन काम है, किंतु एक बार जिस व्यक्ति ने अमन की साधना की है, वह साधना के उच्च स्तर पर पहुंच जाता है।

अमन योग साधना की वह पद्धति है, जहां मन की क्रिया समाप्त हो जाती है। न कोई चिंतन, न कोई कल्पना, न कोई स्मृति। उस स्थिति में जाने पर जो आनंद मिलता है और जो उसका आध्यात्मिक विकास होता है, वह समनस्क अवस्था में नहीं होता। समनस्क अवस्था में व्यक्ति सोचता रहता है। सोचने का चक्का कभी बंद ही नहीं होता। इन्द्रियों का भी बहुत प्रयोग करता है। वह भीतर से निकलने वाले सुख की कल्पना नहीं कर सकता।

बाहरी दरवाजा बंद करो

कहा जाता है भीतर सुख है। भीतर हड्डी है, मांस है, रक्त है, सब धातुएं भीतर हैं, पर भीतर सुख होता तो चीरफाड़ करने वाले सबसे ज्यादा सुखी बन जाते। आज तक कभी भी ऐसा नहीं हुआ।

भीतर सुख है कहां? बाहर का दरवाजा बंद करो। भीतर सुख ही सुख है। बाहर का दरवाजा खुला है, तब बाहर से दुःख आ रहा है, बाहर से समस्याएं आ रही हैं, बाहर से उलझनें आ रही हैं। एक बार दरवाजा बंद कर लो, बस फिर भीतर सुख है। सचाई हमारे भीतर है, अहिंसा हमारे भीतर है। हमारे शरीर में बहुत सारे केमिकल्स हैं, बहुत सारे तत्त्व हैं, उनका स्राव होता है।

मेलाटोनिन का जब स्राव होता है, आदमी मस्ती में चला जाता है और सुखी बन जाता है। स्थूल जगत में उसकी कल्पना नहीं हो सकती। बाह्य जगत में सुख है और सुख के साधन हैं। अंतर् जगत में, सूक्ष्म जगत में अलौकिक सुख के साधन हैं। व्यक्ति अपने घर के भीतर कम रहता है। हमारे दो घर हैं–एक घर बना हुआ है ईंटो का, लोहे का, सीमेंट का। दूसरा घर हमारा शरीर है। हम शरीर के भीतर कम रहते हैं। बाहर में इन्द्रियों का सुख भी मिलता है, पर वह सुख नहीं है। थोड़ी देर बाद वह समाप्त हो जाता है। हमें शरीर के भीतर जाना है और इन्द्रियातीत सुख का अनुभव करने का प्रयत्न करना है।

33. सुख की नींद

एक व्यक्ति ने देखा कि एक संत एक श्लोक का उच्चारण कर रहा है। वह वहां ठहर गया। उसने सुना–मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता। सबसे अच्छी शय्या है भूमि और उपधान (तकिया) अपना हाथ है। उस व्यक्ति ने सोचा–यह तो कोई अच्छी बात नहीं है। अच्छी बात तो तब होती जब संत यह कहते कि पुष्पों की कोमल शय्या है और मखमली तकिया है। ये तो विरोधी बातें बताई जा रही हैं।

वह संत के पास गया और जाकर बोला–महाराज! कोमल शय्या या फूलों की शय्या को अच्छा माना जाता है। भूमि पर सोना कोई अच्छा नहीं माना जाता। संत ने कहा–क्या तुम सुख की नींद सोते हो? अब सामने एक प्रश्न उपस्थित हो गया। यह प्रश्न हर आदमी को अपने आप से पूछना चाहिए–क्या मैं सुख की नींद सोता हूं? अटक गया, रुक गया। सोचने लगा–क्या उत्तर दूं? सुख की नींद तो नहीं आती, मुश्किल से सोता हूं, गोलियां लेकर सोता हूं। सुख की नींद कहां है?

तुम्हारे पास बहुत कोमल शय्या है, तकिया बहुत अच्छा है, फिर सुख की नींद क्यों नहीं आती? प्रश्न शय्या का, सिरहाने का नहीं है। प्रश्न है सुख की नींद का। वह आदमी भाग्यशाली होता है, जो सुख की नींद सोता है। कुछ लोग मानते हैं सोना अच्छा नहीं है, पर सोना बहुत अच्छा है। नींद नहीं आए तो आदमी पागल बन जाता है।

नींद जरूरी है। सुख की नींद बहुत जरूरी है। दुःख की नींद या सपनों की नींद अच्छी नहीं होती। गहरी नींद, सुख की नींद बहुत अच्छी होती है, पर वह किसी भाग्यशाली को ही मिलती है।

बड़ा कठिन काम है सुख की नींद सोना। कितनी बाधाएं होती हैं। जिस व्यक्ति का चित्त शांत नहीं है, मन अशांत है, वह सुख की नींद नहीं सो सकता। मन में क्लेश है, कोई चुभन है, वह भी नहीं सो सकता। महारानी ने राजा भोज को मूर्ख कह दिया।

पूरी रात राजा को नींद नहीं आई। इस उधेड़बुन में रहा–महारानी ने मुझे मूर्ख क्यों कहा? राजा के पास सारे साधन थे। अच्छी शय्या, अच्छा भवन, सब सुविधाएं, फिर भी नींद नहीं आ रही थी, क्योंकि मन क्षुब्ध था। मन आंदोलित हो रहा था कि महारानी ने मुझे मूर्ख क्यों कहा?

एक आदमी यात्रा कर रहा था। रेलगाड़ी आई और वह गाड़ी पर चढ़ा। जिस डिब्बे में चढ़ा, वहां देखा कि एक बहुत भारी भरकम आदमी बैठा है। वह बोल पड़ा कि क्या यह डिब्बा केवल हाथियों के लिए रिजर्व है? उसने कहा–नहीं, भाई ऐसी बात नहीं है, गधे भी आ सकते हैं। आओ, बैठ जाओ। अब मन में उथल-पुथल मच गई कि मुझे गधा कह दिया। इस बात को लेकर बड़ा अशांत हो गया कि मुझे सबके सामने गधा बना दिया। अकेले में कहता तो कोई बात नहीं होती। एक मानसिक उद्वेलन पैदा हो गया। सास ने बहू को डांट दिया। बहू रूठ गई। न रोटी खाई और न नींद ली। सारी रात ऐसे ही बीत गई।

सुख की नींद एक बड़ा प्रश्न है। आज अगर सुख की नींद होती तो बड़ी-बड़ी कंपनियां निकम्मी बन जातीं। अरबों, खरबों रुपयों की नींद की गोलियों का व्यापार चल रहा है। आदमी दुःखी मन से सोता है तो नींद भी डरती है। नींद भी हर जगह नहीं जाती। नींद भी अच्छा स्थान देखती है। सुख से रहने वाले के पास नींद चली जाती है। जब देखती है कि यह आदमी अच्छा नहीं है, नींद भी वहां से विदाई ले लेती है।

स्वास्थ्य और नींद

सुख की नींद का संबंध स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ है। जो अच्छी नींद लेता है, उसका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। सबसे बड़ी बात है कि उसका मस्तिष्क बहुत अच्छा रहता है। जो नींद नहीं ले पाता उसका दिमाग भी अच्छा नहीं रहता। व्यक्ति के लिए आवश्यक है, नींद और जागरण। दोनों उचित हो तो स्वास्थ्य अच्छा रहता है। गीता का यह एक सुंदर वाक्य है–**योगो भवति**

दुःखहा–योग दुःख को मिटाने वाला होता है। कौन-सा योग? जिसमें जागना और सोना दोनों युक्त है, उचित है, तब योग दुःख मिटाने वाला होता है।

अशांत मन और नींद

नींद न आना, बड़ी समस्या है। सुख की नींद आए यानी शांति के साथ नींद आए। एक बार का प्रसंग है। भगवान बुद्ध किसी उद्यान में थे। वहां राजकुमार आया। उसने भिक्षुओं को देखा। देखकर एकदम सन्न रह गया। बोला–भंते! शरद ऋतु की ठंडी-तूफानी हवाएं चल रही हैं। यह पत्तों की शय्या, घास की शय्या कितनी गर्मी देती है। नीचे से ठंड आ रही है और शरीर पर कपड़े भी कम हैं। क्या आपको नींद आई? बुद्ध ने उत्तर दिया–मुझे बहुत अच्छी नींद आई। सुख की नींद आई। क्या यह हो सकता है? बात मानने में कठिनाई होती है। अब प्रश्न है कि इतनी सर्दी में नींद कैसे आती है? हमारे सामने भी प्रश्न आया था। एक बार हम जहां सो रहे थे, रात का समय था। वहां बाहर में बहुत गाना, बजाना, ढोल नगाड़ों की तीव्र ध्वनि सुनाई दे रही थी, कोई कार्यक्रम था। सुबह भाई आया। आकर बोला–आज तो आपके बहुत विघ्न हुआ होगा, क्योंकि हमारे विवाह के काम चल रहे थे। मैंने कहा–बहुत अच्छी नींद आई।

हमारे लिए बाह्य ध्वनि बाधा नहीं बनती, हम तो सुखपूर्वक सो जाते हैं। बुद्ध ने कहा–देखो, एक आदमी है, उसके पास सोने की सारी सुविधाएं हैं, बढ़िया शय्या, बढ़िया मकान, बढ़िया तकिया आदि सबकुछ हैं, वह सो रहा है। इतने में ही संवाद मिला कि तुम्हारी पत्नी बीमार हो गई है या तुम्हारा भाई बीमार हो गया है। तुम्हारी मां या पिता बीमार हो गया है। सोते ही दुःख का संवाद मिला। अब उसको नींद नहीं आएगी। सोने की सारी सामग्री है, अच्छी तरह सो सकता है, किंतु नींद नहीं है। मन अशांत हो गया। अब नींद नहीं आएगी।

एक आदमी सोने की तैयारी कर रहा है। इतने में संवाद मिला कि तुम्हारी दुकान में पचास लाख का घाटा हो गया है। क्या उसको नींद आएगी? उसको नींद नहीं आएगी। नींद का संबंध सिर्फ कोमल शय्या से नहीं है, उसका संबंध है मन की शांति, चित्त की शांति से। अगर मन शांत है, चित्त शांत है तो नींद बहुत जल्दी आ जाती है। मन शांत नहीं है, तनाव से, चिंताओं से, बुरे संवादों

से भरा हुआ है तो चाहे शय्या कितनी ही अच्छी हो, उसको नींद नहीं आएगी। हमारा दिमाग खाली रहे तो नींद भी आ जाती है। दिमाग में कूड़ा-करकट भरा हुआ है तो नींद भी नजदीक आने से डरेगी। सोचेगी कि मैं कहां जा रही हूं?

नींद को सहचरी बना लो

चिंतन करें कि सुख की नींद कितनी दुर्लभ है। जब मन पवित्र होता है, उस स्थिति में सुख की नींद आती है। कितने लोगों का मन खाली रहता है? सोते समय कितने लोग हैं जो निर्विकल्प, निर्विचार होकर सोते हैं? मन में कोई विचार नहीं है। बस लेटे और नींद आ गई। दो मिनट भी नहीं लगनी चाहिए। हमारा तो अनुभव पहले भी था और आज भी है कि सोने के बाद यह सोचना नहीं पड़ता कि नींद नहीं आएगी। तत्काल नींद आ जाती। बचपन की तरह आज भी नींद की लगभग वैसी ही स्थिति है। सर्दी का मौसम होता, मैं सोने की तैयारी करता। कपड़ा ओढ़ना है। कपड़ा ओढ़ना शुरू किया। आधा तो ओढ़ा और आधा बीच में ही रह जाता और नींद आ जाती। जब मन खाली है, मन में कोई विचार नहीं है, अशांति नहीं है, नींद जब चाहो तब आ सकती है। दो मिनट के लिए भी अच्छी नींद आ सकती है। पांच मिनट भी आ सकती है, दस मिनट की भी आ सकती है। जितनी चाहो, उतनी नींद तत्काल आ जाएगी। इसका मतलब है कि नींद को अपना साथी बना लो। नींद को पराया मत समझो, अपनी सहचरी समझ लो। जब चाहो तब तुम्हारी सेवा में तैयार है। इसका अर्थ यह है कि मन पवित्र है, मन में कोई विचार नहीं है तो नींद कभी आपको धोखा नहीं देगी। मन अशांत है, तनाव से भरा हुआ है तो फिर नींद आपके पास नहीं आएगी।

सुख शय्या

ठाणं सूत्र में भगवान महावीर ने चार सुख शय्या का निरूपण किया है। प्रस्तुत प्रसंग में दो सुख शय्या ज्ञातव्य है। सुख की नींद कब आती है? जो उद्देश्य सामने रखा है, उसमें गति करो और उसके प्रति निःशंकित रहो, तो आपको सुख की नींद आएगी। उसके प्रति मन में शंका है, जो काम कर रहा हूं, वह काम अच्छा है या नहीं, इससे मुझे क्या मिलेगा? आदि-आदि विकल्पों के जाल में जब मन फंस जाता है तो नींद भी गायब हो जाती है।

1. निःशंक बनो

सुख की नींद का पहला प्रकार है निःशंक बनो। गुरु ने आदेश दिया–जाओ, सामने भयंकर काला नाग है। इसको नापकर आओ। शिष्य गया और सांप को कपड़े से माप लिया। महाराज! सांप चार फुट का है। गुरु ने देखा–काम नहीं हुआ। फिर गुरु ने कहा–जाओ, सांप के दांत गिनकर आओ। बड़ा कठिन काम था। माप तो दूर से हो गया, पर दांत दूर से कैसे गिने जाते हैं। मुंह में हाथ डालना होगा, पर 'निःशंकित होना यह सुखपूर्वक नींद का पहला साधन है।'

गुरु के प्रति इतना विश्वास था। उनकी वाणी पर इतना भरोसा था कि मन में शंका नहीं, संदेह नहीं कि गुरु ने मुझे कैसा काम सौंप दिया? सामने मृत्यु है, पर मन में कोई संदेह नहीं हुआ। ऐसा व्यक्ति सुख की नींद सो सकता है। शिष्य गया और सांप के मुंह में अंगुली डाली और सांप ने उसे डस लिया।

आकर बोला–गुरुदेव! सांप के दांत तो नहीं गिन सका। जैसे ही मैंने गिनने का प्रयत्न किया, उसने मुझे काट दिया। गुरु ने कहा–काम हो गया। गुरु ने उसे कंबल ओढ़ाकर सुला दिया। कुछ ही समय में शरीर से कीड़े निकल गए, कंबल कीड़ों से भर गया।

गुरु ने कहा–तुम स्वस्थ हो गए हो। यह सचाई है कि गुरु का जो निर्देश है, उसके प्रति निःशंकित रहो। जो निःशंक होता है, वह सुख की नींद सो सकता है। सत्य के प्रति जिसका समर्पण होता है, वह सुख की नींद सोता है। उसे कोई चिंता नहीं होती।

गुरु ने कहा–यह काम कर लो, हमने कर दिया। अब कोई दूसरे लोग आकर कहते हैं, यह अच्छा नहीं हुआ। हम उसके बारे में सोचते भी नहीं थे। जो कहा, वह काम कर दिया। अब अच्छा है या नहीं, उसकी चिंता गुरु करे। मैं क्यों करूं? मन में विकल्प हो जाए कि यह काम मैंने कर तो दिया, अच्छा हुआ या नहीं हुआ। इस विचार से ही सुख की नींद गायब हो जाती है। निःशंकित रहना पहली सुख शय्या है।

2. स्वलाभ में संतोष

दूसरी सुख शय्या है व्यक्ति अपने लाभ में संतुष्ट रहे। उसकी चीज अच्छी है, मुझे वह मिल जाए। वह भोजन, वह कमरा, वह मकान, वह कपड़ा,

वह वस्तु मिल जाए आदि-आदि। असंतुष्ट व्यक्ति दुःख की नींद सोता है। जो संतुष्ट होता है और जिसने आकांक्षा पर अपना नियंत्रण कर लिया, जिसके भीतर प्यास नहीं है कि यह मुझे मिले, जो भी मिला उससे संतुष्ट है, वह व्यक्ति सुख की नींद सो सकता है। हर व्यक्ति में एक लालसा होती है। बच्चे में लालसा हो सकती है, पर बड़ा होने के बाद उसमें नियंत्रण की क्षमता होनी चाहिए, एक समझ आनी चाहिए।

अध्यापक ने एक बच्चे से पूछा–तुम मां का कहना मानते हो या नहीं मानते? वह बोला–मास्टर साहब! मां का कहना मैं सौलह आना नहीं सवा सौलह आना मानता हूं। उसकी पूरी बात मानता हूं। एक दिन मां ने मुझे कहा था–देखो, मिठाई पड़ी है। आधी से ज्यादा मत खाना। मां का आदेश तो इतना ही था। मैं तो सवा सौ प्रतिशत मानता हूं। मैं पूरी मिठाई खा गया। अब आप क्या पूछते हो? मैं मां की बात मानता हूं या नहीं मानता? मैं तो मां जो कहती है, उससे ज्यादा बात मानता हूं।

बचपन में ऐसी बात हो सकती है, पर समझदार होने के बाद भी आकांक्षा कम न हो, वस्तु की चाह कम न हो, यह उचित नहीं है।

आज खाने के पदार्थों की भी कोई सीमा नहीं रही। भोजन की टेबल पर अनेक खाद्य पदार्थ दिखाई देते हैं। कभी-कभी विरोधी पदार्थ भी देखते हैं। एक कटोरी में दही और भुजिया साथ में हैं। बच्चे बड़ी रुचि से उन्हें खाते हैं। ऐसे वस्तुप्रधान युग में संतोष करना बहुत कठिन बात है। सुख की नींद वही ले सकता है, जो संतोष करना जानता है। हर आदमी सुख की नींद नहीं ले सकता।

सुख की नींद के लिए जरूरी है–विवेक। मैंने देखा प्लास्टिक की कुर्सी गीली हो गई। हमारे छोटे मुनि आए और कंबल से उसे साफ किया, फिर भी वह सूख नहीं रही है। खूब रगड़कर साफ किया, तो भी नहीं सूख रही है।

मैंने कहा–यह ऊनी कपड़े से नहीं सूखेगी। सूती कपड़े में सोखने की शक्ति है। उससे सूख जाती है। ऊनी कपड़ा कितनी बार फेर दो वह नहीं सूखेगा और सूती कपड़े से वह सूख जाएगी। सूती कपड़ा आजकल शायद प्रिय कम हो गया। कृत्रिम धागों के कपड़े ज्यादा प्रिय हो गए। जो स्वाभाविक था, उसके प्रति वह भावना नहीं रही। कृत्रिम के प्रति आकर्षण बढ़ गया।

हम किससे संतोष करें और किससे असंतोष करें? जो संतोष योग्य है, उससे संतोष नहीं कर रहे हैं। जो संतोष योग्य नहीं है, वहां हमारा आकर्षण कम हो रहा है। जिसे प्राप्त वस्तुओं में संतोष नहीं होता, वह व्यक्ति सुख की नींद नहीं सो सकता। हम अध्यात्म को समझने का प्रयत्न करें। साधक आदमी यह देखे कि मुझे नींद अच्छी आ रही है या नहीं। नहीं आ रही है तो शायद कहीं साधना में कमी है।

अगर हम उस जगह अध्यात्म की दृष्टि से भी पदार्थों की मीमांसा करना शुरू करें तो शायद बहुत सारी चीजें अच्छी हो सकती हैं, इसलिए हर व्यक्ति अपने आप से प्रश्न पूछे कि मैं सुख की नींद ले रहा हूं या नहीं ले रहा हूं। प्रश्न का उत्तर पाने का प्रयत्न करें तो शायद अध्यात्म का मर्म भी आपके हाथ में आ जाएगा।

34. अव्यक्त को व्यक्त कैसे करें?

आवश्यक सूत्र का एक पाठ है–नमोत्थु णं। उसका एक पद है–तिण्णाणं तारयाणं'। तीर्थंकर के विशेषण बतलाए गए हैं–तीर्ण और तारक, वे स्वयं भवसागर को पार करते हैं, तर जाते हैं और दूसरों को तारते भी हैं। जलपोत स्वयं तरता है और वह भीतर बैठे लोगों को भी तारता है। बुद्धाणं बोहियाणं वे बुद्ध हैं, किंतु केवल बुद्ध नहीं हैं, बोधक है, बोध देने वाले भी हैं। मुत्ताणं मोइयाणं वे मुक्त हैं और दूसरों को भी बंधन से मुक्त कराने वाले हैं। ये दोनों बहुत सुंदर अवस्थाएं हैं। स्वयं समस्या का पार पाना, दुःखों का पार पाना और दूसरों को मार्ग बताना–यह युग की आवश्यकता है।

निमित्त से शक्ति जागरण

योग, अध्यात्म और दर्शन शास्त्र में दो शब्द बहुत चर्चित रहे हैं–व्यक्त और अव्यक्त। मनुष्य में शक्ति है, पर शक्ति अव्यक्त रहती है, व्यक्त नहीं है। हर आदमी अपने आप शक्ति को व्यक्त नहीं कर सकता, प्रकट नहीं कर सकता। शक्ति है, पर वह प्रकट नहीं होती। हनुमान में शक्ति थी, पर जब जामवंत ने कहा–तुम में शक्ति है। तुम समुद्र को पार कर सकते हो। एकदम पौरुष जाग गया, शक्ति व्यक्त हो गई। अगरबत्ती में सुगंध है, पर जब तक जलती नहीं है, सुगंध नहीं आती। कस्तुरी में सुगंध है, जब तक घर्षण नहीं होता, तब तक सुगंध प्रकट नहीं होती। प्रकट होने के लिए सहारे की जरूरत है, दूसरे के सहयोग की जरूरत है। हर आदमी में शक्ति है, पर हर आदमी को निमित्त नहीं मिलता तो शक्ति सोई हुई रह जाती है। व्यक्ति को निमित्त मिलता है तो शक्ति जाग जाती है।

अव्यक्त से व्यक्त होने के लिए निमित्त की जरूरत है, प्रेरणा की जरूरत है। प्रेरणा ठीक मिलती है, एक साथ सबमें उत्साह जाग जाता है। उत्साह अंतराय कर्म के क्षयोपशम से होने वाला एक पुरुषार्थ है, पर वह निमित्त को

पाकर व्यक्त होता है। अगर निमित्त न मिले तो बहुत लोगों की शक्ति निकम्मी चली जाती है। मैंने स्वयं अनुभव किया है, आचार्य तुलसी का निमित्त मिला तो मुझे व्यक्त होने का मौका मिल गया। अगर वह निमित्त नहीं मिलता तो शायद शक्तियां सोई रह जातीं। बहुत सारे लोग हैं, जिनमें शक्ति है, पर कोई निमित्त नहीं मिलता, उनकी शक्ति सोई की सोई रह जाती है।

प्रेरणा जरूरी

परिवार में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, हमारे साधु-साध्वियां, समण-समणियां प्रेरणा देने के लिए जाते हैं। हम आत्मकर्तृत्व में विश्वास करते हैं, पुरुषार्थ व्यक्ति स्वयं करता है, किंतु स्वयं करने के लिए भी एक प्रेरणा की आवश्यकता है।

साधु-साध्वियों का काम है कि व्यक्ति की शक्ति को जागृत करें, जागृत करने की प्रेरणा दें। आदमी के हाथ में अग्नि नहीं है, दियासलाई को घिसा और अग्नि प्रगट हो गई। आजकल लाइट है या कोई भी बल्ब लगा हुआ है। उसमें प्रकाश करने की शक्ति है। पावर हाऊस से बराबर विद्युत का प्रवाह आ रहा है, पर कोई व्यक्ति जब तक स्विच ओन नहीं करता, बटन को नहीं दबाता, तब तक प्रकाश नहीं होता। बटन को दबाने की जरूरत है। अगर ऐसे लोग हों, जो बटन को दबा दे तो फिर प्रकाश तो भीतर से आ जाएगा। बहुत आवश्यक है ऐसा होना।

कुछ लोग आते हैं, जिनके कोई वियोग की स्थिति बन जाती है और हमें आकर कहते हैं कि हमें साधुओं ने बड़ा संबल दिया, साध्वियों, समणियों ने संबल दिया। ऐसे मौके पर ही संबल देना आवश्यक है। श्रावक और साधु का गहरा संबंध होता है। ऐसी स्थिति में उसका मनोबल बढ़ाया जाए, यह अपेक्षित है। यह तिण्णाणं तारयाणं का मार्ग है।

व्यक्त और अव्यक्त–इन दो शब्दों पर ध्यान देना आवश्यक है। साधु का कर्तव्य होता है कि सामने वाला व्यक्ति श्रद्धा रखता है तो उसके प्रति वह न्याय करे। गुरुदेव के मन में हमेशा यह बात रहती थी कि लोग हमारे प्रति इतनी श्रद्धा रखते हैं, हम क्या करते हैं? विक्रम संवत 2005 की बात है। छापर में चतुर्मास था। रेवतमल जी नाहटा की हवेली में ऊपर का स्थल, जहां प्रवचन के बाद गुरुदेव विराज रहे थे, मैं पास में बैठा था।

गुरुदेव ने कहा–देखो, लोग हमारे प्रति कितनी श्रद्धा रखते है। कहां-कहां से दर्शन के लिए आते हैं, कितना कष्ट सहते हैं। अगर हम उनको कुछ नहीं दे पाते हैं तो यह उनके प्रति न्याय नहीं है। श्रावक समाज का भी जीवन अच्छा बने। यह चिंतन भी सामने आया। लंबे समय तक मंथन चलता रहा। परिणामस्वरूप अणुव्रत की योजना बनी। अणुव्रत की आचार-संहिता तैयार की गई। यह बहुत जरूरी था, जिससे लोगों का जीवन नैतिक बन सके, अच्छा बन सके।

अगर अव्यक्त व्यक्त न हो तो दुनिया बहुत छोटी हो जाएगी, निकम्मी बन जाएगी। बीज जब बोया जाता है, तब वृक्ष अव्यक्त होता है। पीपल, बरगद का बीज तो कितना छोटा-सा होता है, कोई कल्पना नहीं कर सकता। इतने छोटे-से बीज में विशालकाय बरगद छिपा हुआ है। बीज अव्यक्त था। भूमि में गया, पोषण मिला,अंकुरित हुआ, बढ़ते-बढ़ते एकदम बरगद बन गया और बड़ का बड़ा पेड़ बन गया।

धर्मशास्त्रीय दृष्टि से विचार करें तो हर आत्मा में, हर व्यक्ति में अंतराय कर्म का क्षयोपशम होता है। संपूर्ण शक्ति अंतराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होती है। अंतराय कर्म बाधा डालने वाला है, उसका विलय होता है तो हमारी शक्ति जागती है, फिर भी उसे कोई जगाने वाला चाहिए। इसलिए उपदेश होता है, प्रवचन होता है।

आचार्य तुलसी ने शक्ति जागरण के लिए बहुत श्रम किया। उसका परिणाम आया कि आज हमारा साधु-साध्वी समाज, समण-समणी समाज इतना प्रशिक्षित हो गया, प्रबुद्ध बन गया। निमित्त मिलता है तो अव्यक्त व्यक्त हो जाता है।

35. विकास हो नियंत्रण की शक्ति का

प्रत्येक व्यक्ति जीवन को उन्नत बनाना चाहता है। बाहर की दुनिया से भीतर की दुनिया में प्रविष्ट होना चाहता है। चाह तो सबकी होती है। किसी की चाह पूरी हो जाती है और किसी की पूरी नहीं होती। उसका कारण क्या है? यह विवेचन का विषय है।

साधना इन्द्रिय-विजय की

कार्य सिद्धि के लिए दो तथ्य हमारे सामने आते हैं। साधन-सामग्री मिले तो सफलता मिल जाती है, बाधक तत्त्व न हों तो सफलता मिल जाती है। साधक और बाधक–ये दो ही तत्त्व समस्या को सुलझाने वाले और समस्या को उलझाने वाले होते हैं। सफलता और उन्नति का साधक तत्त्व है इन्द्रिय विजय। यह सबसे कठिन बात है। हम मन की बात छोड़ दें, उससे आगे की बात भी छोड़ दें। चेतना का पहला स्तर है इन्द्रिय चेतना और बाह्य जगत के साथ संपर्क का पहला माध्यम है इन्द्रिय चेतना। शेष सब परोक्ष में रहते हैं, प्रत्यक्ष में इन्द्रियां हैं। वे सैनिक, जो अग्रिम मोर्चे पर तैनात हैं, उन्हें हर समय अलर्ट रहना पड़ता है। पीछे वालों को उतना सावधान नहीं रहना पड़ता। जो अग्रणी हैं, उन पर जिम्मेदारी ज्यादा होती है। इन्द्रियां सबसे आगे हैं, इन्हें चाहे प्राथमिक कहें, अग्रणी कहें, संपर्क-कुशल कहें। सफलता चाहने वाले साधक को सबसे पहले इन्द्रियों को समझना और साधना पड़ता है, उन पर नियंत्रण करना पड़ता है।

क्यों टूटता है संकल्प?

वही व्यक्ति सफल हो सकता है, जिसने नियंत्रण की शक्ति का विकास किया है। एक व्यक्ति संकल्प करता है, निभा नहीं पाता। मेरे पास बहुत से लोग आते हैं और कहते हैं, संकल्प पर दृढ़ नहीं रह पाते, क्या करें? उनका

संकल्प बार-बार टूटता रहता है। संकल्प क्यों टूटता है? इसीलिए कि नियंत्रण की शक्ति नहीं है। सामने कोई प्रलोभन आया और फिसल गया, संकल्प टूट गया। संकल्प किया उपवास का और जैसे ही रसोई के सामने से गुजरे, स्वादिष्ट भोजन की सुगंध संकल्प को विचलित कर देती है, संकल्प टूट जाता है। संकल्प को आगे के लिए टाल देते हैं। मन की प्रकृति पिघलनशील है। वह बड़ी जल्दी पिघल जाता है। यदि संकल्प शक्ति मजबूत होती तो समाज का चित्र कुछ दूसरा होता। नियंत्रण की शक्ति के अभाव में ऐसा होता है। बहुत से लोग देवस्थानों में जाकर संकल्प लेते हैं, मनौतियां करते हैं और जैसे ही परिस्थितियां बदलती हैं, संकल्प और मनौती टूट जाती है।

हमारे संकल्प की भी यही स्थिति है। संकल्प करते समय जो भावधारा, परिणामधारा बनती है, वह यथावत् नहीं रहती। उसमें शिथिलता आती है, अवरोह आता है। एक व्यक्ति प्रत्याख्यान करता है, अणुव्रती बनता है, साधु, श्रावक और समण बनता है। बनने के समय जो भावधारा होती है, वह दीर्घकाल तक यथावत् नहीं रहती, एकरूप नहीं रहती। इस सचाई को हमें स्वीकार करना चाहिए। इस बात को आगमकारों ने स्वीकार किया और कहा कि कोई व्यक्ति मुनि बनता है तो उस समय सातवें गुणस्थान में होता है और अंतर्मुहूर्त के बाद वह एक पायदान नीचे खिसक कर छठे गुणस्थान पर आ जाता है।

ध्यान में एकाग्रता

ध्यान के विषय में जैन आचार्यों ने बहुत वैज्ञानिक दृष्टि से विचार किया और कहा कि अड़तालीस मिनट से ज्यादा ध्यान की एकरूपता नहीं रहती। एक व्यक्ति कहता है कि मैं दो घंटे या तीन घंटे ध्यान में बैठ सकता हूं। यह दो-तीन घंटे ध्यान की बात को उसने प्रवाह के रूप में ले लिया। वास्तविकता यह है कि अड़तालीस मिनट के बाद भावधारा बदल जाती है, एकरूपता नहीं रहती। हमारी अतीन्द्रिय चेतना तब तक विकसित नहीं होती, जब तक भावधारा एकरूप नहीं रह सकती।

भावधारा को यथावत् रखने के लिए जरूरी है नियंत्रण की शक्ति का विकास। उसके लिए बल की बहुत आवश्यकता है। बात विचित्र लगेगी, किंतु यह सत्य है कि जैसे शरीर का बल एक योद्धा के लिए जरूरी है, वैसे

ही साधक के लिए भी जरूरी है। जिसका देहबल मजबूत नहीं होता, जिसका संहनन मजबूत नहीं होता, वह ध्यान में आगे नहीं बढ़ सकता, साधना में आगे नहीं बढ़ सकता, धर्म में आगे नहीं बढ़ सकता, फिर वह कर्म में तो आगे बढ़ ही नहीं सकता।

शरीर-बल मजबूत होना चाहिए। शरीर बल का अर्थ मांस की अधिकता से नहीं है। जिसका अस्थि संस्थान मजबूत है, वही वास्तव में बलशाली है। शरीर का मूल आधार अस्थि-संरचना है। शरीर से फूले हुए बहुत से लोग मिल जाएंगे, किंतु पंद्रह किलो का वजन सिर पर रख दीजिए तो बैठ जाएंगे, उठाने में सक्षम नहीं होंगे। मेरुदंड और हड्डियों पर हमारे शरीर का ढांचा खड़ा है। वे प्रभावित होती हैं तो आदमी लकवाग्रस्त जैसी स्थिति में चला जाता है, न सीधा खड़ा हो सकता है, न चल फिर सकता है।

शरीर-बल मजबूत है तो व्यक्ति ध्यान की गहराई में जा सकता है, संकल्प भी मजबूत बना रह सकता है। उसके अंतर्ज्ञान का भी बहुत विकास हो सकता है और वह कर्म-क्षेत्र का योद्धा भी बन सकता है। आजकल तो स्थिति विचित्र-सी है। भाई आते हैं, कहते हैं पैर की हड्डी टूट गई। कैसे टूटी? कहते हैं कि चल रहा था, पैर थोड़ा-सा तिरछा पड़ा और फ्रैक्चर हो गया। ऐसा होना नहीं चाहिए। हड्डी तो बहुत मजबूत होती है। थोड़ी-सी लचक खाते ही कैसे टूट सकती है? किंतु ऐसा हो रहा है।

खाद्य पदार्थों की विविधता हड्डियों को प्रभावित कर रही है। विशेषकर ठंडे पेय हड्डियों को बहुत प्रभावित कर रहे हैं। अपने खेत का मोटा अनाज भरपूर कैल्शियम देता था, रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बनाए रखता था। आज बाजार का मिलावटी राशन तरह-तरह की बीमारियों को जन्म दे रहा है। कभी बीमार न भी करे, शरीर की मजबूती को तो निश्चित रूप से प्रभावित कर रहा है। आज के आदमी का शरीर जोर और झटके बर्दाश्त नहीं कर पाता।

नाड़ीतंत्र और अस्थितंत्र

शरीर कमजोर है तो साधना को बलवान नहीं बनाया जा सकता। कर्मक्षेत्र में भी कमजोर शरीर किसी को योद्धा नहीं बना सकता, इसलिए शरीर की मजबूती आवश्यक है। मजबूती का तात्पर्य है—शरीर की चर्बी को मत

देखो, यह देखो कि उसका अस्थि-संस्थान कितना मजबूत है। अस्थिसंस्थान मजबूत है तो शरीर से दुबला-पतला होते हुए भी आदमी ज्यादा शारीरिक श्रम कर सकता है।

महात्मा गांधी का शरीर पहलवान जैसा नहीं था। उनकी काया कृश थी, किंतु अस्थि संस्थान बहुत अधिक मजबूत था। जब वे चलते या मार्च करते तो साथ में चलने वालों को दौड़ना पड़ता। वह छोटा-सा दुबला-पतला आदमी पूरी ब्रिटिश हुकूमत पर भारी पड़ रहा था। जब देश आजादी का जश्न मना रहा था, तब वह व्यक्ति नोआखाली में भीषण दंगों के दौरान सड़क पर लोगों के बीच में था।

भारत में अनेक साधक हुए हैं, जिनका शरीर तो बहुत कृश था, किंतु आत्मा बलवान थी। इसीलिए कहा जाता है कि दुर्बल शरीर में बलवान आत्मा रह सकती है और मजबूत यानी मोटे शरीर में कमजोर आत्मा रह सकती है। बहुत हट्टे-कट्टे आदमी ऐसे भी मिलेंगे, जो चूहे और छिपकली को देखकर भयभीत हो जाते हैं। मजबूत शरीर के लिए नाड़ीतंत्र और अस्थितंत्र-इन दोनों पर ध्यान देना जरूरी है। इनके बाद फिर बाह्य निमित्तों पर भी विचार आवश्यक है।

भय और नियंत्रण

एक राजा ने घोषणा की-जो बकरे को तृप्त कर मेरे पास लाएगा, उसे पुरस्कृत किया जाएगा। प्राचीनकाल में राजा तरह-तरह की घोषणाएं किया करते थे। ज्ञानियों और पंडितों के साथ तरह-तरह की चर्चाएं होती थीं। राजदरबार की ओर से बुद्धि और चातुर्य की परीक्षाएं भी होती थीं। मनोरंजन के लिए तरह-तरह के आयोजन होते थे। राज्य के नागरिक उनमें बढ़-चढ़कर भाग लेते थे।

राजा की यह घोषणा बड़ी विचित्र थी कि जो बकरे को तृप्त कर देगा, उसे पुरस्कार दिया जाएगा। बकरा कोई इतने बड़े डीलडौल का प्राणी नहीं है कि उसे तृप्त न किया जा सके। लोग हाथी-घोड़े भी पालते हैं, जो एक बार में बहुत बड़ी मात्रा में चारा खा जाते हैं। बकरे को तृप्त करना कौन-सी बड़ी बात है? लेकिन बकरी-बकरे की यह सामान्य प्रवृत्ति है कि वे हर समय कुछ न कुछ खाते रहते हैं। गाय, भैंस जैसे पशु तृप्त होने के बाद चारा खाना छोड़ देते हैं और

आराम से बैठकर जुगाली करते हैं, भूख लगने के बाद ही खाते हैं। शेर-बाघ जैसे मांसभोजी पशु एक बार अपने शिकार को छककर खाने के बाद आराम से लेटकर विश्राम करते हैं। उस समय कोई उनके पास से होकर गुजर जाए तो भी उस पर ध्यान नहीं देते, किंतु बकरा पेट भरा होने पर भी हरी पत्ती सामने आई कि उस पर मुंह मार देता है। बकरे की इसी प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर शायद राजा ने यह घोषणा की थी।

तीन महीने की अवधि थी। निश्चित अवधि पर राज्य के तमाम लोग अपने बकरों के साथ राजा के सामने हाजिर होने लगे। परीक्षण में एक-एक कर सभी फेल होते गए। जो भी अपने बकरे को राजा के सामने पेश करता, राज्य कर्मचारी उसके सामने चारा रखता और बकरा उसे खाने लगता। अंत में एक किसान ने अपना बकरा, जो कद-काठी में साधारण या कहें मरियल-सा था, राजा के सामने उपस्थित किया। बकरे की ओर हरी पत्ती वाली एक टहनी बढ़ाई गई, किंतु बकरे ने एक दृष्टि अपने मालिक पर डाली और मुंह फेर लिया। ऐसा कई बार किया गया। आकर्षक हरी पत्तियां बकरे की ओर लाई जातीं और बकरा अपने मालिक का इशारा पाकर अपना मुंह फेर लेता। राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। अगर ठीक से खिलाया-पिलाया गया होता तो बकरा मोटा-ताजा होता, किंतु यह तो निरीह और मरियल-सा बकरा है। इसे तो चारे पर झपट पड़ना चाहिए था, फिर भी चारे की ओर देखता भी नहीं। राजा अपनी घोषणा से बंधा था। बकरा तृप्त हो या अतृप्त अगर शर्त पूरी कर रहा है तो उसका मालिक पुरस्कार पाने का हकदार है। उस बकरे के मालिक को विजेता घोषित कर दिया। पुरस्कार के बाद राजा ने उससे पूछा–'अब तुम इसका रहस्य बताओ कि बकरे को कैसे तृप्त किया?'

बकरे के मालिक ने कहा–'महाराज! मैंने इसे चारा खिलाकर तृप्त नहीं किया। इसकी आदत को सुधारने का प्रयत्न किया। तीन महीने में मैंने इसकी आदत सुधार दी। इसके सामने चारा रखता और जैसे ही चारे पर मुंह मारने का प्रयत्न करता, एक छोटी-सी छड़ी से इसके मुंह पर प्रहार कर देता। यह समझ गया कि चारे पर मुंह चलाते ही डंडा मुंह पर चल जाएगा। तीन महीने में यह क्रम मुझे हजारों बार दुहराना पड़ा है। कभी-कभी तो इसे दिनभर भूखा रखा। यह चारा तभी खाता है, जब छड़ी मेरे हाथ में नहीं होती। जब तक मेरी छड़ी

मेरे हाथ में है, इसके सामने छप्पन भोग रख दें, यह उधर देखेगा भी नहीं। आप देख रहे हैं कि मेरी छड़ी अभी भी मेरे हाथ में है। चारे की ओर निगाह डालने से पहले यह छड़ी पर निगाह डालता है। यह तृप्त नहीं है। तीन महीने का भूखा है, लेकिन डर ऐसी चीज है कि भूख-प्यास सब सहन करना पड़ता है।

भय की विभीषिका हो तो नियंत्रण की शक्ति का विकास होता है। अगर आपके मन में यह बात आ जाए कि ज्यादा मीठी चीज का सेवन करने से निश्चित रूप से कोई बड़ा शारीरिक नुकसान उठाना पड़ेगा तो आप जरूर अपनी जिह्वा पर नियंत्रण करने की कोशिश करेंगे। चित्र में नहीं, साक्षात् किसी को देख लें कि मुंह का कैंसर कितना बीभत्स और भयानक होता है तो गुटखे का पाउच उसी दिन फेंक देंगे।

आत्म-नियंत्रण की कमी : एक समस्या

नियंत्रण की शक्ति का विकास सहज ही नहीं होता। यह बहुत कठिन काम है। नियंत्रण की शक्ति के अभाव के कारण कितने अपराध हो रहे हैं। अनियंत्रण का सिलसिला आगे से आगे बढ़ता जाता है। कोई छोटी-मोटी चोरी कर जेल गए। वहां से लौटे तो पक्के चोर बनकर आए। दूसरी बार जेल से लौटे तो डकैती के गुर सीखकर लौटे। तीन-चार बार से अधिक यह सिलसिला चलता रहा तो समझें, फिर पूरी तरह से पास हो गए, फिर चाहें कि सुधार हो जाए तो मुश्किल है। कोई बड़ी चोट लगे, कोई बड़ा निमित्त मिले तभी परिवर्तन होगा, जैसे वाल्मीकि का हुआ था। आज हमारे परिवारों में शिक्षा का बहुत अधिक प्रचार-प्रसार हुआ है। शायद ही कोई घर मिले, जिस घर का कोई सदस्य अशिक्षित हो। मेट्रिकुलेशन, इंटर, बी.ए., एम.बी.ए. आदि प्रायः हर घर में मिल जाएंगे, लेकिन शिक्षा के बावजूद भी अपराधों में कमी नहीं आ रही है, अपराध बढ़ते जा रहे हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त और ऊंची पोस्ट पर बैठे लोग भी अपराध कर रहे हैं। छोटी उम्र के लड़के बैंक लूटने का दुस्साहस कर रहे हैं। शिक्षा तो बुराइयों से निजात दिलाने वाली मानी जाती है, किंतु आज तो शिक्षा प्राप्त कर आदमी अपराध के नए-नए तरीके और गुर सीख रहा है। कारण यही है कि शिक्षा के साथ आत्मनियंत्रण की कला नहीं सिखाई जाती। मीडिया और इंटरनेट ने आज ज्ञान का भंडार खोल दिया है।

आज के बच्चे जितने भाग्यशाली हैं, पिछली शताब्दी के बच्चे नहीं थे। समाज में आज कुछ ऐसा भी हो रहा है, जो भविष्य में उन्हीं बच्चों के लिए ऐसे अंधेरे रास्ते निर्मित कर देगा, जिससे वे अपनी जड़ों से कट जाएंगे, जैसा आज पश्चिमी देशों में हो रहा है। शिक्षा पद्धति में अधिक अंक पाने की होड़ का दूसरा पहलू यह भी है कि बच्चे इसे अपने भविष्य की अनिवार्यता मानकर इसे पाने के लिए परिश्रम करते हैं और परीक्षा प्रणाली में सोचा हुआ परीक्षाफल नहीं आता तो वे डिप्रेशन में चले जाते हैं, आत्महत्या तक कर लेते हैं। वर्तमान परीक्षा प्रणाली शिक्षाविदों की चिंता का विषय बन रही है।

उपभोक्तावादी संस्कृति ने आदमी की सोच को ही नहीं परिवार के माहौल को ही बदल दिया है। बच्चों को विज्ञापनों ने इस तरह अपने मायाजाल में फंसा लिया है कि उससे निकलने का उन्हें कोई रास्ता नहीं मिल रहा है। जो बच्चे उपभोक्तावादी संस्कृति और विलासिता का जीवन नहीं जी पाते, वे हताश और निराश हो जाते हैं। अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए वे माता-पिता को सताते हैं और आगे का कदम उन्हें अपराध की ओर धकेल देता है। आज टी.वी. के परदे पर जो दिखाया जा रहा है, उससे व्यक्ति अपनी संस्कृति से दूर हो रहे हैं।

आत्मनियंत्रण का उपाय : श्वास-संयम

बहुत बड़ा प्रश्न है कि हम अपनी वृत्तियों पर नियंत्रण कैसे करें? नियंत्रण संभव है। एक है शब्द और उसका प्रतिपक्ष है अशब्द। मुश्किल और असंभव जैसी चीज कुछ भी नहीं है। अपेक्षा है प्रारंभ से ही नियंत्रण की बात सिखाई जाए तो अनियंत्रण की बात होगी ही नहीं। नियंत्रण का सबसे अचूक साधन है हमारा श्वास। श्वास में नियंत्रण करने की अद्‌भुत शक्ति है। श्वास को हम जीने का साधन मानते हैं और यह बिल्कुल सही बात है, किंतु श्वास को हम मात्र जीने का ही साधन न मानें, इसे सही अर्थ में जीवन निर्माण का साधन मानें। श्वास की शक्तियों को पहचानें। भिन्न-भिन्न कामों में उसका उपयोग करें। तनावमुक्ति के लिए श्वास का प्रयोग, चित्त को शांत करने के लिए श्वास का प्रयोग, थकान मिटाने के लिए श्वास का प्रयोग, स्मरण शक्ति के विकास के लिए श्वास का प्रयोग, व्याधिमुक्त रहने के लिए श्वास का प्रयोग, एक वाक्य में कहें तो हजार तालों की एक चाबी है श्वास। इतिहास में बड़े-बड़े

ज्ञानी, ऋषि और महर्षि हुए, जिन्होंने श्वास को साधकर गूढ़ तत्त्वों और रहस्यों की खोज की।

जो भी व्यक्ति नियंत्रण की शक्ति का विकास करना चाहते हैं, उन्हें प्रतिदिन दस मिनट या आधा घंटा श्वास संयम या कुंभक का अभ्यास करना चाहिए। एक साथ न कर सकें तो टुकड़ों में करें। एक घंटा में कभी दो मिनट किया, कभी चार मिनट किया। इस तरह प्रतिदिन अगर एक घंटा श्वास संयम का अभ्यास किया जाए तो कुछ दिन बाद इसके आश्चर्यजनक परिणाम देखने को मिलेंगे। मन की चंचलता नियंत्रित होगी। आकर्षक चीजों पर मन उतनी देर तक नहीं अटकेगा, जितना पहले अटकता था। हम स्थूलिभद्र का चरित्र या आख्यान सुनते हैं तो आश्चर्य होता है कि कैसा रहा होगा उनका कंट्रोलिंग पावर। निमित्त और परिस्थिति होने पर भी जिसमें नियंत्रण की शक्ति होती है, जिसका उपादान प्रबल है, वह विजयी बनता है।

हर व्यक्ति को और विशेषकर जो साधक हैं, उन्हें सोचना है कि सफलता के लिए नियंत्रण की शक्ति का विकास बहुत जरूरी है। कम से कम इतनी नियंत्रण की शक्ति तो जरूर हो कि जिसमें अपना अहित है, उस कार्य से बचा जाए। उन्नति और सफलता की आकांक्षा सबमें होती है। इसके लिए नियंत्रण की शक्ति विकसित करने वाला पाठ पढ़ना चाहिए। आगम का वह पाठ–अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो, हर समय सामने रहे। आत्मा की रक्षा का भाव रहे तो आत्मनियंत्रण की शक्ति जरूर विकसित होगी।

36. संतुलन प्राण का

दुनिया में बहुत सारी वस्तुएं हैं। मनुष्य उन्हें समझने का प्रयत्न करता है। वर्तमान युग में ज्ञान का विकास बहुत हुआ है, तकनीक का विकास हुआ है। आज के वैज्ञानिक ने बहुत सूक्ष्मता से अध्ययन किया है, किंतु जीवन को समझने का बहुत कम प्रयत्न हुआ है। हमारा जीवन क्या है? उसे नहीं समझा गया। शरीर को समझने का बहुत प्रयत्न हुआ है। आज का शरीरशास्त्र कोशिका तक सीमित नहीं रहा, उसने जीन तक का ज्ञान किया है। जीन हमारे गुणसूत्र और संस्कार सूत्र हैं। उन्होंने उनकी बहुत सूक्ष्म व्याख्या की है, किंतु जीवन को समझने का समग्र प्रयत्न नहीं हुआ।

जीवन का आधार है प्राण

शास्त्रकार ने कहा–मनुष्यत्व दुर्लभ है। इसका मतलब कोरा मनुष्य होना नहीं, मनुष्य जीवन को समझना दुर्लभ बात है। मनुष्यत्व क्या है? हमारा जीवन क्या है? जीवन कोरा शरीर नहीं है, कोरी इन्द्रियां नहीं हैं, कोरा श्वास नहीं है, कोरा प्राण नहीं है। जीवन अनेक चीजों का एक समवाय है। जीवन का मूल आधार है प्राण। श्वास भी मूल नहीं है। व्यवहार में तो ऐसे लगता है कि जब तक श्वास है, तब तक आदमी जिंदा है और श्वास खत्म होते ही आदमी खत्म हो जाता है। श्वास ऊपर की पहचान है, पर मूल है प्राण। अगर प्राणशक्ति विद्यमान है और हार्ट भी बंद हो गया, श्वास भी बंद हो गया तो आदमी मर कर भी पुनः जी जाएगा। जब तक प्राण शक्ति समाप्त नहीं होती, तब तक मौत नहीं होती। आज के डॉक्टरों और वैज्ञानिकों का मत है कि जब तक मस्तिष्क नहीं मरता, तब तक मृत्यु नहीं होती। मस्तिष्क मरने के बाद मृत्यु होती है। सारा शरीर निष्क्रिय हो जाए, पर मस्तिष्क जीवित है तो आदमी जीवित है। हमें इससे भी सूक्ष्म में जाना है। मस्तिष्क की क्रिया भी कम हो रही है, शांत हो

रही है। अगर प्राण विद्यमान है तो वह मरता नहीं है। प्राण को पहचानना बहुत जरूरी है।

जीवन का अर्थ

जैन आगम में प्राण के दस प्रकार बतलाए गए हैं–पंचेन्द्रिय प्राण, आयुष्य प्राण, श्वास प्राण, भाषा प्राण, मन प्राण, शरीर प्राण। आदमी बोलता है, यह बोलने की शक्ति कहां से आती है? बोलता है तो वाणी सामने आ रही है। जिस शक्ति के द्वारा वह बोलता है, वह शक्ति वचन प्राण है। आदमी सोचता है। यह सोचने की शक्ति मनोबल प्राण है। अगर प्राण के बारे में हमारा ज्ञान स्पष्ट हो जाए, तो अनेक नए तथ्य सामने आ सकते हैं। आयुर्वेद में पांच प्राण बताएं गए हैं–प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। प्राण जीवनी शक्ति है। इसीलिए हम कहते हैं व्यक्ति प्राणवान है। जब मैं गुरुदेव के सामने बोलता तो प्रायः संबोधन करता था महाप्राण पूज्य गुरुदेव! आचार्य तुलसी में प्राण ऊर्जा बहुत थी। वे बड़े ऊर्जस्वी थे। कहीं पर भी हार नहीं मानते, कभी थकते नहीं, कहीं कुछ होता तो वे कभी घबराते नहीं, कभी डरते नहीं। कारण यही था कि प्राण शक्ति प्रबल थी। जिसका प्राण ठीक होता है, फिर कोई चिंता की बात नहीं होती। प्राण के आधार पर ही हमारा नाम प्राणी है। मनुष्य भी प्राणी है, पशु भी प्राणी है, छोटा कीड़ा भी प्राणी है और पेड़-पौधे भी प्राणी हैं। इन सब में प्राण है, इसलिए जीवन है। जीवन का शाब्दिक अर्थ होता है प्राण।

प्राण का असंतुलन ही ज्ञेय

श्वास हमारे जीवन का मूल तत्त्व माना जाता है, पर श्वास लेने की जो शक्ति है, वह है हमारा श्वास प्राण। शरीरशास्त्र में भी माना जाता है कि प्राणी श्वास लेता है और श्वास लेने का साधन है रेस्पिरेटरी सिस्टम यानी श्वसन तंत्र। उसके द्वारा व्यक्ति श्वास लेता है। आज की समस्या यह है कि प्राण का अपव्यय ज्यादा हो रहा है, प्राण ऊर्जा का अपव्यय ज्यादा हो रहा है। प्राण की उपेक्षा भी हो रही है। लाडनूं में जैन विश्वभारती में प्रेक्षाध्यान का शिविर था। शिविर में एक डॉक्टर आया। उस समय वह बीकानेर मेडिकल कॉलेज में था। उसने कहा–मैं बहुत बीमार हूं। ऑल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट दिल्ली, बरोडा आदि बड़े-बड़े शहरों में चेकअप करा लिया। डॉक्टर कहते हैं–कोई बीमारी नहीं है। डायग्नोसिस करा लिया। उनमें कोई बीमारी नहीं आ रही है

और मैं बहुत दुःख भोग रहा हूं। अब इसका क्या समाधान होगा? तब हमने कहा–तुम्हारी बीमारी प्राणिक बीमारी लग रही है। शारीरिक बीमारी नहीं है।

दो तरह की बीमारियां होती हैं–एक ऑर्गेनिक यानी अवयवों की बीमारी, जैसे हार्ट की बीमारी, किडनी की बीमारी, लिवर की बीमारी। यह अंगों की बीमारी है। दूसरी बीमारी अंगों की नहीं होती, प्राण के असंतुलन की बीमारी होती है। प्राण असंतुलित हो गया। यह प्राणिक बीमारी है। इतनी जगह घूमा, इतने डॉक्टरों से परामर्श लिया, चिकित्सा करवाई। स्वयं डॉक्टर था, पर ठीक नहीं हो रहा था। शिविर में प्रयोग किया और सात दिन में ठीक होकर बीकानेर चला गया। डॉक्टरों ने आश्चर्य किया कि यह कैसे हुआ? तुम इतने बीमार थे, फिर ठीक कैसे हो गए? उसने कहा–मैंने प्रेक्षाध्यान का प्रयोग किया, उससे ठीक हो गया। प्राण का संतुलन किया और स्वस्थ हो गया। प्राण का असुंतलन होने पर आदमी हमेशा दुःख पाता है।

हमारे पास ऐसे बहुत लोग आते हैं, जो यह बताते हैं कि डॉक्टर कहते हैं कोई बीमारी नहीं और हम बड़े दुखी हो रहे हैं। इसका कारण है कि अभी तक मेडिकल साइंस प्राण तक नहीं पहुंचा है। वह केवल शरीर तक सीमित है, अवयवों तक सीमित है। वहां प्राण का कंसेप्ट भी नहीं है। यह प्राण का कंसेप्ट जैन धर्म में तो है ही, अन्य धर्मों में भी है। आयुर्वेद में प्राण बहुत पर विचार किया गया है।

प्राण का असंतुलन

प्राण का असंतुलन कैसे होता है? इस पर विचार करना है। प्राण के असंतुलन का कारण है अतिवाद। आहार जरूरी है, अति आहार किया, प्राण का असंतुलन हो जाएगा। अपान प्राण है, वह दूषित हो जाएगा और वह दूषित होगा तो दिमाग भी गड़बड़ा जाएगा। दिमाग में बुरे विचार, बुरी कल्पना या बुरी भावना आने लगेगी। दिमाग असंतुलित रहेगा। भारतीय नीति में एक सूत्र रहा–अति सर्वत्र वर्जयेत, अति का सर्वत्र वर्जन करना चाहिए। अति आहार का वर्जन करो। दूसरा है–अतिभोग। यह भी प्राण में असंतुलन पैदा करता है। अति सुविधावाद भी प्राण का असंतुलन पैदा करता है।

अति वाक् अर्थात अति बोलना। दिनभर बोलता ही चला जाए, थके ही नहीं तो भी प्राण का असंतुलन होता है। प्राण का एक सीमा तक उपयोग

किया जाए, तब तो ऊर्जा मिलती है और अति की जाए तो ऊर्जा का विनाश होता है और प्राण असंतुलित हो जाता है। शब्द का अप्रयोग, प्रयोग और अति प्रयोग। शब्द को बिल्कुल भी काम में मत लो, निकम्मा हो जाएगा। पैर को काम में मत लो पैर निकम्मा हो जाएगा। इसी प्रकार प्राण शक्ति का प्रयोग नहीं किया तो प्राणशक्ति निष्क्रिय बन जाएगी। उसका प्रयोग सम्यक् किया तो वह सम्यक् रहेगा। अति प्रयोग किया तो वह असंतुलित हो जाएगा। इनकी अति नहीं चाहिए और अभाव भी नहीं। दोनों के बीच की अवस्था रहनी चाहिए, संतुलित प्रयोग करना चाहिए।

हम इस प्रसंग में धर्म की बात को समझने का प्रयत्न करें। कहा जाता है कि सारे दिन मत बोलो, मौन भी करो। इसका मतलब है कि मौन करोगे तो तुम्हारा वचन प्राण संतुलित रहेगा और सारे दिन बोलते ही चले जाओगे तो वचन प्राण असंतुलित हो जाएगा। काय बल अर्थात काय प्राण। सारे दिन शरीर से प्रवृत्ति मत करो, शरीर को विश्राम भी दो, निवृत्ति भी करो, इसका मतलब है कायोत्सर्ग करो। कायोत्सर्ग करोगे तो तुम्हारे प्राण का संतुलन रहेगा। अगर कायोत्सर्ग नहीं किया और सारे दिन हलचल में ही रहे तो कायिक प्राण असंतुलित होगा और वह तुम्हें कष्ट देने लग जाएगा। चिंतन करो, पर सारे दिन सोचो मत। कुछ लोगों का दिमाग ऐसा हो जाता है कि वे सोचते ही रहते हैं, बहुत सोचते हैं। इतना सोचना आवश्यक नहीं है। असंतुलन मत करो, क्योंकि चिंतन की भी सीमा है। इसका मतलब हुआ कि कायिक प्रवृत्ति की भी सीमा है। बोलने की भी सीमा और सोचने की भी सीमा है। शरीर की प्रवृत्ति की सीमा है कायोत्सर्ग का अभ्यास। बोलने की प्रवृत्ति की सीमा है मौन का अभ्यास और सोचने की प्रवृत्ति की सीमा है निर्विचार रहने का अभ्यास।

प्रयत्न करें प्राण को समझने का

यह सीमाबोध धर्म की पवित्र साधना है। इसके द्वारा संवर और निर्जरा का विकास होता है। कहां बोलना चाहिए? कब बोलना चाहिए? कैसे बोलना चाहिए? क्यों बोलना चाहिए? इन प्रश्नों पर चिंतन किए बिना यदि कोई बोलता है, वाणी का बहुत प्रयोग करता है तो इससे वचन प्राण असंतुलित होता है। प्राचीन ग्रंथों में और जैन ग्रंथों में वाणी के बारे में बहुत कहा गया है। अनेक अध्याय लिखे गए हैं। वाणी का विवेक हो तो हमारा वचन प्राण

भी अच्छा रहता है। वचन प्राण, काय प्राण, मनोबल प्राण–सब स्वस्थ रहते हैं। धर्म का अर्थ इतना ही नहीं है कि उससे केवल परलोक सुधरता है, केवल संवर और निर्जरा होती है। लौकिक व्यवहार भी उससे बहुत अच्छा बनता है, इसलिए धर्म को समझने के लिए प्राण शक्ति को समझना जरूरी है।

प्राण क्या है? प्राण का संतुलन कैसे होता है? प्राण का असंतुलन कैसे होता है? प्राण संतुलन से क्या लाभ होता है और असंतुलन से क्या हानि होती है? ये सारी बातें समझीं जाए तो धर्म जैसे परलोक के लिए कल्याणकारी है, वैसे ही वर्तमान जीवन के लिए भी बहुत कल्याणकारी बन सकता है।

37. चक्रव्यूह तोड़ें आसक्ति का

दर्शन में दो तत्त्वों पर विचार किया गया है–नित्य और अनित्य। कुछ दार्शनिकों ने माना कि हमारी दुनिया में कुछ तत्त्व नित्य हैं और कुछ तत्त्व अनित्य हैं। आकाश नित्य है और दीपक की लौ अनित्य है। लौ जलती है, बुझ जाती है। नदी का प्रवाह अनित्य है। पानी का प्रवाह आया और चला गया। ये दोनों विचार रहे हैं।

जैन दर्शन ने अनेकांत की दृष्टि से देखा और कहा कि दुनिया का प्रत्येक द्रव्य न नित्य, न अनित्य, किंतु नित्यानित्य है। महावीर ने तत्त्वज्ञानपूर्वक दीक्षा स्वीकार की और तत्त्वज्ञान की दृष्टि को देखा। जगत को भी इसी दृष्टि से देखा। 'से णिच्चणिच्चेहि समिक्ख पण्णे'। महावीर ने नित्य और अनित्य इन दोनों दृष्टियों से जगत की समीक्षा की और तत्पश्चात् मुनिव्रत स्वीकार किया। दर्शन केवल तत्त्वज्ञान करने के लिए, जानने के लिए ही नहीं होना चाहिए, दर्शन को जीना भी चाहिए। जहां दर्शन को जीया नहीं जाता, वह दर्शन बहुत उपयोगी नहीं रहता, केवल जानकारी दे देता है।

भावना से भावित करें

दर्शन को जीने के लिए भावना का प्रयोग जरूरी है। अध्यात्म में दो शब्द हैं–भावना और अनुप्रेक्षा। जब तक हम दर्शन की सचाई से अपने जीवन को भावित नहीं करेंगे, तब तक दर्शन हमारे लिए बहुत उपयोगी नहीं बनता। उसे भावित करना है, वासित करना है और संस्कारित करना है। आयुर्वेद की पद्धति है कि दवा को भावित करते हैं। बहुत सारे वैद्य यह कहते हुए मिलेंगे कि इस दवा में नींबू रस की भावना दी गई है। अमुक रस की भावना दी गई है।

इस औषधि में जड़ी-बूंटी की भावना दी गई है। भावना देने से उसकी ताकत बढ़ जाती है, शक्ति का विकास होता है। जब भावना कम होती है, तब

मूल्य भी कम होता है। जिस भस्म को छः हजार बार भावना से भावित करते हैं, वह भस्म छह हजार पुटी होती है। छः पुटी का मूल्य कम है, क्योंकि उसमें छः बार भावना दी गई है। जिसमें छह हजार बार भावना दे दी गई, छह हजार बार पुटित कर दिया गया, उसका मूल्य भी बढ़ जाएगा। उसकी उपयोगिता और आरोग्यवर्धक शक्ति भी बढ़ जाएगी।

हम लोग धर्म को सुनते हैं, दर्शन को सुनते हैं, पर उससे अपने आपको भावित नहीं करते और जब तक भावित नहीं करते, तब तक वह श्रोत्रेन्द्रिय का विषय ही रह जाता है, वह जीवनगत नहीं होता, आत्मगत नहीं होता। आज धर्म तो बहुत चलता है, धार्मिक लोग भी बढ़े हैं, पर धर्म का जीवन जीने वाले कम मिलते हैं। जीवन में प्रयोगात्मक धर्म कम मिलता है। धर्मस्थान में तो धर्म मिलता है, किंतु जीवन व्यवहार में धर्म कम मिलता है। इसका कारण क्या है? अगर हम कारण की खोज करें तो पता चलेगा कि जो जीया जा रहा है, उसके साथ धर्म का संबंध नहीं है। जो सुना जा रहा है, उसके साथ हमारे धर्म का संबंध है। सुनने में अच्छा लगता है, प्रिय लगता है और बहुत लोग रस भी लेते हैं, किंतु सुनी हुई बात को जीना बड़ा कठिन काम है।

प्रश्न है जीएं कैसे? प्रेक्षाध्यान में भावना और अनुप्रेक्षा के प्रयोग हैं। अनुप्रेक्षा में उसको भावित करने की प्रक्रिया बतलाई जाती है। हम विचार से अपने आपको भावित कैसे करें? वह प्रक्रिया जब आएगी तभी दर्शन हमारे जीवन के लिए और व्यवहार के लिए उपयोगी बनेगा। हम कहते हैं, आत्मा नित्य है, पर वह दिखाई नहीं देती। वह अमूर्त है, उसे देखा नहीं जा सकता। हमारी इन्द्रियों में शक्ति नहीं है कि वे आत्मा का साक्षात्कार कर सकें। केवल मान रहे हैं कि आत्मा है। हमारी मान्यता है, किंतु साक्षात्कार नहीं है। साक्षात्कार तब हो सकता है जब हमारी अतीन्द्रिय चेतना जाग जाए। इन्द्रियों से काम न लें, तब कोई अमूर्त का साक्षात्कार हो सकता है। हमारे सामने अभी जो है, वह मूर्त, दृश्य और भौतिक जगत है।

आत्मा की बात छोड़ दें। आकाश है। हम कहते हैं कि आकाश नित्य है। कुछ दार्शनिक मानते हैं कि आकाश सर्वथा नित्य है, पर आकाश कहीं दिखाई नहीं देता। आज तक आकाश को किसी ने भी देखा नहीं है। केवल तर्क के द्वारा और अनुमान के द्वारा उसकी सिद्धि की जाती है। जो दिखाई देता है, उसे

हम कहते हैं नीला नभ, नील गगन, नीला आकाश, यह जो रंग दिखाई देता है, वह आकाश नहीं है। वह तो वहां एकत्रित हुए परमाणु-पुंज का एक दर्शन है।

आकाश का दर्शन नहीं होता है, क्योंकि वह अमूर्त है। वह हमें दिखाई नहीं देता। यह हमारी कठिनाई है कि जो नित्य है, वह हमें दिखाई नहीं देता। जो दिखाई दे रहा है, वह सारा अनित्य है।

अनित्य के प्रति अनासक्त रहे

हम अनित्य से नित्य की ओर जाना चाहते हैं। जड़ पदार्थ से आत्मा की ओर जाना चाहते हैं, किंतु अनित्य का ऐसा चक्र है, ऐसा आवर्त्त है कि एक बार जो अनित्य में उलझ गया, फिर छूटना कठिन है। इसीलिए योग के आचार्यों ने, अध्यात्म के आचार्यों ने बार-बार कहा कि तुम आत्मा को पाना चाहते हो तो अनित्य की आसक्ति को कम करो। व्यक्ति की अनित्य के प्रति आसक्ति हो रही है, हमने उसी को सार मान लिया है। उस आसक्ति को कम करो। उस चक्रव्यूह को तोड़ो, तभी तुम नित्य के साथ संपर्क स्थापित कर पाओगे, आगे बढ़ पाओगे। अनित्य क्या है? अनित्यता के विषय में शांतसुधारस भावना में बहुत मार्मिक चित्रण किया गया है–

आयुर्वायुतरत्तरङ्गतरलं लग्नापदः सम्पदः
सर्वेऽपीन्द्रियगोचराश्च चटुलाः सन्ध्याभ्ररागादिवत्।
मित्रस्त्रीस्वजनादिसङ्गमसुखं स्वप्नेन्द्रजालोपमं,
तत्किं वस्तु भवे भवेदिह मुदामालम्बनं यत्सताम्?

मनुष्य का जीवन वायु से उठती हुई उर्मियों की भांति चंचल है, संपदाएं विपत्तियों से ग्रस्त हैं, इन्द्रियों के सभी विषय संध्या के आकाश के रंगों की भांति चलायमान हैं, मित्र, स्त्री तथा स्वजनों के संयोग से मिलने वाला सुख स्वप्न और इन्द्रजाल की तरह क्षणिक है। इस संसार में ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो समझदार मनुष्यों के लिए प्रमोद का आलंबन बन सके?

हर आदमी की जीने की एक अवधि होती है। कौन व्यक्ति, कितने समय तक जीने वाला है? जिन व्यक्तियों की जीवनशैली ठीक नहीं होती, वे लोग अकाल मृत्यु से मरते हैं। एक्सीडेंट में मरने वाले कम हैं और अकाल मृत्यु से मरने वाले शायद 100 में 90% लोग मिलेंगे। जो अपनी जीवनशैली

को अच्छा न रख पाने के कारण, आहार का संयम न रख पाने के कारण, नकारात्मक भावों में रहने के कारण, आवेग और संवेग के प्रबल होने पर अपना कंट्रोल नहीं रख सकते, वे लोग प्रायः अकाल मृत्यु से मरते हैं। कोई क्रोध के कारण अकाल मृत्यु से मरता है। कोई भय के कारण अकाल मृत्यु से मरता है। कोई काम वासना की अति के कारण अकाल मृत्यु से मरता है। अकाल मृत्यु के अनेक कारण हैं। अकाल मृत्यु के अनेक कारणों में एक कारण है आहार। जहां आहार का संयम नहीं है, वहां अकाल मृत्यु को निमंत्रण मिल जाता है।

कुछ समय पूर्व जर्मनी में एक आंदोलन चला कि कम खाओ, क्योंकि जो बहुत खाते हैं, वे भद्दे होते जा रहे हैं। उनका रूप बिगड़ता जा रहा है। सौंदर्य नष्ट होता जा रहा है आदमी की अकाल मृत्यु आहार के असंयम के कारण और संवेगों की प्रबलता के कारण होती है। जैसे हवा की एक लहर आती है, चली जाती है। वैसे ही जीवन कब समाप्त हो जाता है, पता ही नहीं चलता। हमारा पहला विश्वास किस पर होता है? आयुष्य पर होता है, जीवन पर होता है। दूसरा विश्वास मेरे पास कुछ है, इस पर है। मेरे पास मकान है। मेरे पास फार्म है, कपड़े हैं। रोटी है, धन है। जो है, उन सब पर बहुत विश्वास है। विचार करने पर लगता है 'लग्नापदः सम्पदः', ऐसी कोई संपत्ति नहीं, जिसके पीछे आपदा न लगी हो। आपदा और संपदा दोनों का योग है, मेल है। कोरी संपदा नहीं आती। हर संपदा अपने साथ आपदा लेकर आती है। जब-जब धन आएगा, उसके साथ बुराई जरूर आएगी। चाहे सामने के दरवाजे से आए, चाहे पिछले दरवाजे से आए। बुराई को उसके साथ आने से रोका नहीं जा सकता। उसको टालना कठिन है। आपत्ति संपदा की सहचरी है, फिर भी आदमी उस पर विश्वास करता है।

आदमी का विश्वास है कि मेरी इन्द्रियां बहुत अच्छी हैं। सभी इन्द्रियां ठीक काम कर रही हैं, लेकिन सचाई यह है–सर्वेपीन्द्रियगोचराश्च चटुलाः– इन्द्रियों के द्वारा तुम जिसको देख रहे हो, वह सारा चंचल है। आप कान के द्वारा शब्द सुनते हैं। सुना और क्षण में शब्द चला गया, फिर पूछेंगे क्या कहा? सुना, वह तो चला गया। आंख से आप देखेंगे। जिस रूप को आप देख रहे हैं, वह भी चंचल है। कुछ समय बाद उस रूप को पहचानना भी मुश्किल हो जाता

है। हमारे सामने भी यह कठिनाई आती है। एक व्यक्ति को बीस वर्ष पहले देखा था। बीस वर्ष बाद देखा तो चेहरा बदल गया। उसे पहचान नहीं सका कि यह वही आदमी है। बीस वर्ष तो ज्यादा है, कुछ लोग तो पांच-दस वर्ष में ही बदल जाते हैं। रूप भी चंचल है।

जो रूप देखते हैं, टी.वी. में, सिनेमा में आते हैं, चले जाते हैं, वे चंचल ही हैं। आप रेल की यात्रा करते हैं या वायुयान की यात्रा करते हैं। यात्रा करते समय ऐसा लगता है कि सामने की सारी चीजें चल रही हैं। सारी दुनिया चंचल लगती है। चलती तो रेल है, पर ऐसा लगेगा, सब वृक्ष दौड़े जा रहे हैं। कभी आपने ध्यान से देखा होगा कि गाड़ी बहुत तेज दौड़ रही है। उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि सारे पेड़ दौड़ रहे हैं। वास्तव में पेड़ नहीं दौड़ते हैं। हमारी आंख का विषय दौड़ रहा है। देखा और चला गया, भ्रम पैदा कर गया।

कौन मित्र, कौन शत्रु?

इन्द्रियां चंचल कैसे हैं? उत्तर दिया गया–संध्याभ्ररागादिवत्–जैसे सायं के बादल की लालिमा ढलती है। थोड़ी देर बाद वह लालिमा समाप्त हो जाती है। व्यक्ति विश्वास किस पर करे? व्यक्ति परिवार पर, मित्रों पर विश्वास करता है, पर वे अनित्य हैं। आज तो मित्र है, कल क्या होगा? कुछ कहा नहीं जा सकता। चाणक्य ने तो बहुत अच्छी बात कही कि राजनीति में न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु। लगता है कि इससे हमारा स्वार्थ सिद्ध होगा। वहां तत्काल संधि कर ली जाती है। मित्र बन जाते हैं। जब देखते हैं कि स्वार्थ सिद्ध नहीं होगा तो शत्रु बन जाते हैं। राजनीति में कभी एक देश दूसरे देश के साथ मित्रता करता है और कभी वे ही देश परस्पर शत्रु बन जाते हैं। यथार्थता यह है कि कोई किसी का मित्र नहीं होता, कोई किसी का शत्रु नहीं।

राजनीति की बात छोड़ दें। परिवारों में देख लें, समाज में भी देख लें। जब स्वार्थ सधता है, तब मित्र बन जाते हैं। गाढ़ मित्रता हो जाती है। स्वार्थ पर थोड़ी सी भी ठेस लगते ही एकदम शत्रुता हो जाती है। हमने ऐसे परिवारों को देखा है, ऐसे भाइयों को देखा है, जिनके लिए कहा जाता था कि ये तो राम-लक्ष्मण हैं। किसी ने राम-लक्ष्मण न देखा हो तो इन दोनों भाइयों की जोड़ी को देख लो। कुछ वर्षों बाद देखा कि दोनों भाई राम और रावण से भी ज्यादा

विरोधी बन गए। जहां स्वार्थ का थोड़ा-सा खंडन हुआ, भाई-भाई में भी लड़ाई शुरू हो जाती है। मनचाही बात न होने से पति-पत्नी का संबंध भी बिगड़ने लग जाता है। पति-पत्नी में भी वर्षों तक कोर्ट में केस चलते रहते हैं। मरने तक भी केस निपटते नहीं हैं।

मित्रस्त्रीस्वजनादिसंगमसुखं स्वप्नेन्द्रजालोपमम्–हम इस पंक्ति पर गहराई से विचार करें। सपना आया और चला गया। महाराज जनक का प्रसंग आता है। विदेह जनक ने सपने में देखा कि राज्य चला गया है। क्या-क्या स्थितियां सामने आ गईं? बहुत लंबा सपना देखा। जागे तो सब कुछ था। महाराज जनक ने कहा–किमिदम् सत्यम् किं तत् सत्यं। मैंने जो सपने में देखा, वह सच है या जो अभी देख रहा हूं, वह सच है। सपना आखिर सपना है। सपने को सपना ही मानना होगा। प्राचीनकाल में भारत में एक विद्या का बहुत विकास हुआ था–इन्द्रजाल विद्या। यह बड़ी चामत्कारिक विद्या है। ऐसी विद्या है, जिसमें एक बार सारा दृश्य साक्षात् दिखा दिया जाता है। वहां यह भ्रम नहीं होता कि यह कोई नकली बात है। केवल सम्मोहन के द्वारा ऐसा दिखा दिया जाता है कि मानो साक्षात् ही घटित हो रहा है।

राजा की सभा में इन्द्रजालिक आया। राजा ने कहा–कुछ करतब दिखाओ। हां महाराज! दिखाऊंगा। आज क्यों आए हो? एक सूचना देने आया हूं। सूचना यह है कि आप सावधान हो जाएं। आपकी सारी राज्यसभा को भी सूचना दे रहा हूं कि सब सावधान हो जाएं। मेरी भविष्यवाणी है कि प्रलय होने वाला है। लोग घबरा गए। राजा बोला–कैसे होगा? देखते-देखते दो मिनट में आकाश बादलों से भर गया। बादल उमड़ने लगे। काली-कजरारी घटाएं छा गईं। तत्काल मेघ बरसने लगे। मूसलाधार वर्षा हुई। महाराज! सावधान हो जाइए। आपका नगर डूब रहा है और पानी आपकी राज्यसभा में आ रहा है। राज्यसभा भी डूबने वाली है। देखते-देखते ऐसा लगा कि पानी राज्यसभा तक आ गया है और सब कांप उठे कि अब तो सब डूब रहे हैं। राजा ने कहा–कैसे भी बचाओ। बोला–बचाने का मेरे पास कोई साधन नहीं है। अब तो सबको डूबना ही है। राजा भी घबरा गया। सब जानता था, फिर भी घबरा गया। साक्षात् दिखाई दे रहा है कि पानी आ रहा है और पानी सबके ऊपर चढ़ रहा है। राजा ने उसे कहा–अरे! हमें बचा। तू तो जानता है बचाना।

इन्द्रजालिक ने इन्द्रजाल विद्या को समेटा, वहां न बादल, न पानी, न प्रलय। सबकुछ जैसा था, वैसा का वैसा हो गया। अरे! यह क्या हुआ? महाराज! यही तो इन्द्रजाल विद्या है। एकदम साक्षात् स्थिति को दिखा सकता है, इसीलिए लिखा–स्वप्नेन्द्रजालोपमम्। ये जो सारी पौद्गलिक स्थितियां हैं, जो मित्र, परिवार, बंधु-बांधव, स्त्री आदि हैं, जितनी संपदाएं हैं, वे सब सपने के समान हैं या इन्द्रजाल के समान हैं। इस संसार में ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसको आलंबन बनाया जा सके?

अनित्यता से चित्त को भावित करें

तुम किस पर भरोसा करते हो? किस पर खुश होते हो? किस पर गर्व करते हो? कौन-सी वस्तु है, जिस पर तुम गर्व कर सको। जिस पर तुम अहंकार कर सको, कौन-सी वस्तु है, जिसे पाकर तुम खुशी प्रकट कर सको। जनक की भाषा में सत्य क्या है? यह सत्य है या वह सत्य है? इसी भाषा में तुम्हें सोचना पड़ेगा, इन्द्रजाल की भाषा में सोचना पड़ेगा। एक बार तो ऐसा लगता है, किंतु बाद में कुछ भी दिखाई नहीं देता।

ऐसे लोगों को देखा है, जिनके जीवन में बहुत अधिक वैभव और बहुत अधिक ऐश्वर्य था। दूसरी ओर एक दिन यह भी देखा कि दो टाइम खाने को रोटी भी नहीं रही। यह सारा अनित्यता का एक निदर्शन है। हमारे सामने जितना यह पौद्गलिक जगत है, भौतिक जगत है, सारा अनित्य है। इस अनित्यता की भावना से अपने आपको भावित करें। इस अनित्य भावना से तीन या छः महीने तक बराबर अपने चित्त को भावित करें। उसे भावना का पुट दें, तो उसका सुंदर परिणाम आएगा। अनित्य के प्रति अनासक्ति पैदा होगी। आज अनित्य के प्रति आसक्ति और मूर्च्छा पैदा हो रही है।

भावना के प्रयोग से वह आसक्ति धीरे-धीरे टूटेगी और अनासक्ति की चेतना का जागरण होगा। गीता में अनासक्ति की चर्चा की गई है, किंतु उस अध्याय को पढ़ने से अनासक्ति नहीं आएगी। अपने आपको अनासक्ति की चेतना से भावित करना होगा। जितने संत हुए हैं, जितने अवतार हुए हैं, जिन्होंने बहुत अच्छी-अच्छी बातें कही हैं, हम उनको मानकर चलते हैं। उनसे बहुत बड़ा कल्याण नहीं होगा। जब तक उस वाणी से आप अपने आपको

भावित नहीं कर लेंगे, जब तक उस भावना की पुट नहीं लग जाएगी, जब तक चित्त उससे संस्कारित नहीं होगा, तब तक उसका लाभ नहीं होगा।

भगवान महावीर के समय में भगवान बुद्ध हुए। उन्होंने अनित्यता का ही दर्शन दिया। उनका सारा दर्शन अनित्यता का दर्शन है। सव्वं अणिच्चं–सब कुछ अनित्य है। अनित्यता का दर्शन देने मात्र से कुछ नहीं होता। जरूरत है अनित्यता के विचार से, सिद्धांत से अपने आपको भावित करने की। जरूरत है अनित्यता का दर्शन जीवन का अंग बने, उस दर्शन को हम जीएं। ऐसा लगता है कि आज धर्म का क्षेत्र भी ऐसा बन गया है। हमारे पास भी अनेक लोग आते हैं। कहते हैं–गुस्सा बहुत आता है, क्या करूं? बहुत सारे धर्मगुरु कह देते हैं–क्रोध करना बंद कर दो। क्रोध मत करो। मत करो तो ठीक है, पर कैसे कम करे, इसका प्रायोगिक समाधान बताना जरूरी है। इसके लिए अपने आपको क्षमा की भावना से भावित करना होगा।

भावित करने की प्रक्रिया

हमें इस बात पर विचार करना है कि भावित करने की प्रक्रिया क्या है? किस प्रकार चित्त को अनित्यता की भावना से भावित करें। उस प्रक्रिया को जाने बिना चित्त भावित नहीं होता। प्रेक्षाध्यान के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है–अनित्य अनुप्रेक्षा का। दिल्ली का प्रसंग है। धर्मानन्दजी अनित्य अनुप्रेक्षा का प्रयोग करा रहे थे। प्रयोग संपन्न हुआ। एक व्यक्ति खड़ा हुआ, जो बहुत दिनों से प्रयोग कर रहा था। बड़ा समृद्ध व्यक्ति था। वह बोला–मैं अनित्य भावना से इतना भावित हो गया कि मुझे बहुत अच्छा लग रहा है। आप ये सारे प्रयोग मेरे गांव में भी कराएं। दिल्ली के पास ही है मेरा गांव। वहां एक प्रेक्षाकेन्द्र बना लो। उसके लिए मैं आपको दस एकड़ जमीन और पचास लाख रुपये देता हूं।

न कोई देने के विचार से आया, न किसी ने प्रेरणा दी, किंतु अनित्य अनुप्रेक्षा का प्रयोग करते-करते इतनी अनासक्ति आ गई, एकदम अपने आप बोला–ये सारे रुपए ले लो, किंतु मेरे गांव के पास मेरी भूमि पर ये प्रयोग जरूर कराओ, जिससे हमें सचाई का पता चले। सचाई क्या है? उसका पता तब चलता है, जब अनित्य भावना से व्यक्ति भावित होता है, मोह छूटता है, आसक्ति छूटती है, फिर धन के लिए भाई-भाई में झगड़ा, पति-पत्नी में झगड़ा नहीं होता और भी अनेक झगड़े कम हो जाएंगे, क्योंकि जब अनासक्ति

आती है तो सारे झगड़े कम होते जाते हैं। जितनी-जितनी आसक्ति तीव्र है, उतने-उतने झगड़े बढ़ते हैं। भावना से चित्त को भावित किए बिना अनासक्ति नहीं आ सकती, इसलिए चित्त को भावित करने की प्रक्रिया को भी जानना है। अनित्य भावना का प्रयोग अनासक्ति का बहुत बड़ा हेतु है। कैसे भावित करें चित्त को? चित्त का निर्माण कैसे करें? इस हेतु लक्ष्य का निर्धारण और क्रियान्विति दोनों साथ-साथ चलनी जरूरी है।

38. संतुलन राग और विराग में

आध्यात्मिक क्षेत्र में तीन-चार शब्द बहुत प्रचलित हैं–साध्य, साधन, साधना और सिद्धि। सबसे पहले साध्य का निर्णय करना चाहिए। जैन दर्शन की दृष्टि से हमारा साध्य है वीतरागता, राग-द्वेष मुक्त होना। यह हमारा लक्ष्य है। वीतरागता की प्राप्ति का साधन है संयम। साध्य का निर्धारण होने के पश्चात् उसका अभ्यास करना जरूरी है। अभ्यास के बिना साध्य-प्राप्ति नहीं होती। सीधा रूपांतरण नहीं होता। एक लंबी प्रक्रिया से गुजरना होता है। उसके लिए निरंतर साधना करनी होती है। आज कोई व्यक्ति साधना करना नहीं चाहता। सीधा ही सिद्धि को पाना चाहता है, किंतु साधना के बिना ऐसा होना संभव नहीं है।

राग ही संसार है

वर्तमान युग में वीतरागता बहुत आवश्यक है, क्योंकि समाज में रागात्मकता बढ़ रही है। अनेक साहित्यकारों ने, कवियों, लेखकों और काव्यानुशासन की रचना करने वालों ने बतलाया कि जगत रागात्मक है। राग के अभाव में संसार नहीं चल सकता। संसार का मतलब ही राग है और जो राग है, वह संसार है। अगर राग न हो तो मां बच्चे का पालन भी नहीं कर सकेगी। राग न हो तो एक आदमी अकेला पूरे परिवार का पालन भी नहीं कर सकेगा। राग संसार के लिए आवश्यक है। समाज रागात्मक होता है। द्वेष उसके पीछे जुड़ा हुआ है। द्वेष का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। मूल राग है। द्वेष उसका अनुचर है। एक संस्कृत कवि ने बहुत अच्छा लिखा है–

बंधनानि खलु सन्ति बहूनि, प्रेमरज्जु दृढ़बन्धनमाहु।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडंघ्रिः निष्क्रियो भवति पङ्कजकोशे॥

दुनिया में बंधन बहुत हैं, पर सबसे बड़ा बंधन कौन-सा है? ऐसे विद्या के क्षेत्र में माना जाता है कि नागपाश बंधन सबसे ज्यादा बड़ा बंधन होता है।

रामायण में प्रसंग आता है कि हनुमान को रावण ने नागपाश से बांध दिया था। उसे कोई तोड़ नहीं सकता, काट नहीं सकता। वहां कोई शस्त्र काम नहीं कर सकता। वह सबसे बड़ा बंधन होता है। धार्मिक दृष्टि से विचार करें तो राग उससे भी ज्यादा कठोर बंधन है।

राग का बंधन

कवि ने उदाहरण से समझाया। एक भंवरा है। भंवरे का मुंह इतना तीक्ष्ण होता है कि वह काठ को भेदकर उसके अंदर चला जाता है। एक दिन वह सूर्यविकासी कमल का रसपान कर रहा था, कमलकोश सिकुड़ गया, भंवरा भीतर रह गया। बाहर नहीं निकल सका, क्योंकि वह रसपान में आसक्त था। कल्पना करें कि काठ कड़ा या कमलकोश कड़ा? कमलकोश बहुत कोमल होता है। भंवरा काठ को भेदकर चला जाएगा, लेकिन कमलकोश को भेदकर नहीं जा सकता। इसका कारण है प्रेम का बंधन, राग के बंधन को वह तोड़ नहीं सका। भंवरा बंदी बन गया। अब वह बैठा-बैठा सोच रहा है–

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः॥
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा! हन्त हन्त! नलिनीं गजमुज्जहार॥

अब रात चली जाएगी। सुप्रभात होगा। सूरज उगेगा। कमल का कोश खिल जाएगा और मैं उस समय यहां से उड़ जाऊंगा। वह चिंतन कर रहा है, कल्पना कर रहा है। कल्पना में एक रस होता है। आदमी कल्पना के रस से ही जीता है।

अगर कल्पना समाप्त हो जाए तो जीवन इतना नीरस हो जाएगा कि शायद आदमी जी ही नहीं सकेगा। सचाई के आधार पर जीनेवाले बहुत कम होते हैं और कल्पना के सहारे जीने वाले लोग बहुत ज्यादा होते हैं। कल्पना का लड्डू खा रहा है, चिंतन कर रहा है और बहुत सुंदर सपना ले रहा है। इतने में एक हाथी आया और पूरे कमलकोश को मुंह में निगल गया और भंवरा भी साथ में चला गया। सारी कल्पना धरी रह गई और भंवरे की जीवन लीला समाप्त हो गई।

माया और लोभ

इस सचाई को हमें समझना है कि राग का बंधन बहुत जटिल होता है। द्वेष का बंधन उतना जटिल नहीं होता। जिसके साथ वह दुश्मनी कर रहा है, द्वेष कर रहा है, वह दिखाई देता है। राग का प्रयत्न करने पर भी पता नहीं चलता, प्रत्यक्ष नहीं होता। द्वेष प्रत्यक्ष दिखाई देता है। धार्मिक दृष्टि से समझ सकते हैं कि सब कषाय नीचे रह जाते हैं। लोभ दसवें गुणस्थान तक रहता है। लोभ के कारण ही सारा विस्तार हो रहा है।

राग की दो प्रकृतियां हैं–माया और लोभ। उनको प्रकट करने में भी आदमी को बड़ा रस आता है। कुछ लोग कहते हैं कि अमुक के पास इतना धन है, फिर भी क्यों इकट्ठा कर रहा है? क्योंकि लोभ विद्यमान है। राग के कारण संचय कर रहा है। आदमी को जितनी जरूरत है, उतना करे तो समाज की आर्थिक समस्याएं भी सुलझ जाएंगी, परंतु वह इकट्ठा करता ही चला जाता है। भीतर का राग संग्रह करवा रहा है। अगर राग संतुलित हो जाए तो फिर बारह खरब वाला आदमी इस दुनिया में नहीं मिलेगा।

बहुत बार सूचिकाएं और तालिकाएं आती रहती हैं। वर्तमान में प्रथम नंबर का धनी अरब कंट्रीज का सुलतान है, जिसके पास साढ़े बारह खरब डालर की संपदा है। इतना धन उसके क्या काम आता है? एकमात्र मन का संतोष है कि मेरे पास इतना धन है, किंतु उपयोग कितना है उसका? एक विदेशी लेखक ने बहुत सुंदर पुस्तक लिखी है–To be, To have। आज कोई भी To be यानी होना नहीं चाहता। To have यानी अधिकार करना चाहता है कि मेरे पास इतना आए। इससे समस्याएं बढ़ रही हैं।

वैरागी बने

कुछ लोग ऐसे हैं, जो गरीब हैं, जो झुग्गी-झोंपड़ी में रहने वाले हैं, उन बेचारों को दो वक्त की रोटी भी पूरी नहीं मिलती। यह अंतर क्यों? धार्मिक लोग कह देंगे कि कर्म के कारण यह अंतर है अथवा अपना-अपना भाग्य है। यह बहुत स्थूल बात है। यह कोई कर्मों का दोष नहीं है। दोष है समाज की व्यवस्था का, जहां समाज की व्यवस्था अच्छी नहीं होती, वहां इस प्रकार की विषमताएं पैदा होती हैं। अगर समाज की व्यवस्थाएं अच्छी हों तो इस अंतर

को दूर किया जा सकता है। धार्मिक दृष्टि से विचार करें तो इसका स्पष्ट कारण है रागात्मकता। इसीलिए राग के साथ वैराग्य का होना जरूरी है। जैन लोगों में जो दीक्षा लेना चाहता है, उसको वैरागी कहते हैं।

आज हर आदमी को वैरागी होना चाहिए। दीक्षा ले या न ले, पर वैराग्य जरूर होना चाहिए। जहां वैराग्य होता है, वहां समस्याएं कम होंगी और कोरा राग ही राग होगा तो समस्याएं बढ़ती चली जाएंगी। वैराग्य बहुत जरूरी है और वैराग्य तब होगा जब लक्ष्य होगा वीतराग होना। वीतराग होना बहुत बड़ी बात है। लक्ष्य बना लिया, किंतु उस दिशा में जब प्रस्थान होगा, तब जरूर जीवन में वैराग्य का उदय होगा। उसका एक सूत्र है राग और वैराग्य का संतुलन। यह वर्तमान की अनेक समस्याओं का सुंदर समाधान है।

39. वर्जन करें राग और द्वेष का

विषया विनिवर्तन्ते, निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोप्यस्य, परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

इस श्लोक का अनुवाद गुरुदेव श्री तुलसी ने 'अध्यात्म पदावली' में किया है–

निराहार के विषय छूटते, किंतु नहीं होते रस त्यक्त।
रस का तब विनिवर्तन होता, जब होता परमात्मा व्यक्त॥

जब परमात्मा व्यक्त होता है, तब रस स्वतः छूट जाता है। इससे आगे गुरुदेव ने लिखा है–

शक्य नहीं है शब्द न सुनना, खुले श्रोत्र के हैं जब द्वार
शक्य यही है हो न शब्द में, द्वेष-राग का अनुसंचार॥

हम शब्द न सुनें, यह शक्य नहीं है। निरोध एक उपाय है, परंतु निरंतर निरोध शक्य नहीं है। हमारे लिए शक्य यह है कि जो मनोज्ञ शब्द हो उसमें राग और अमनोज्ञ शब्द हो उसमें द्वेष न हो। यह एक सिद्धांत है कि राग-द्वेष का वर्जन हो, पर कैसे हो? यह सूत्रकार नहीं बतलाते।

यह सब व्याख्या करना उत्तरवर्ती आचार्यों तथा विद्वानों का काम होता है। कैसे संभव है कि प्रिय शब्द में राग न हो, अप्रिय शब्द में द्वेष न हो। यह सामान्यतया कोई विहित बात नहीं है और शक्य बात भी नहीं है। हमें इसके लिए उपाय खोजने होंगे। श्रवण के लिए पहला प्रयोग है कि अंतर् ध्वनि को सुनने का प्रयास करें।

उसमें इतना रस आएगा कि दूसरे शब्दों में राग-द्वेष छूट जाएगा। एक चीज में ज्यादा रस आया तो दूसरे में स्वतः ही रस कम हो जाएगा। ऐसे अनेक साधक और भक्त हुए हैं, जिनको भजन करने में इतना रस आ गया कि अन्य चीजों में उनका रस छूट गया।

चक्षु-इन्द्रिय : राग और द्वेष

चक्षु इन्द्रिय के संदर्भ में 'अध्यात्म पदावली' में लिखा गया है–

शक्य नहीं है नहीं देखना, खुले चक्षु के हैं जब द्वार।
शक्य यही है हो न रूप में, द्वेष-राग का अनुसंचार॥

हम विचार करें कि न देखना उपाय नहीं है। इसकी व्याख्या समझनी होगी कि निरंतर नहीं देखना शक्य नहीं है। एक, दो या तीन घंटा आंख बंद कर ध्यान करने से आंख का निरोध शक्य हो सकता है, पर यह सापेक्ष बात है। चौबीस घंटे यह भी शक्य नहीं है। आंखें बंद करें तो यह चक्षु-विषय के प्रचार का निरोध हो गया। चक्षु का विषय है रूप। आंख विषय पर नहीं जा रही है यानी अल्पकाल के लिए सावधिक निरोध भी शक्य है। राग-द्वेष नहीं करना चाहिए यह ठीक बात है। ऐसा कहने से निरोध नहीं होगा। उसके लिए हम उपाय करें।

त्राटक

पहला उपाय है त्राटक का प्रयोग। जो व्यक्ति 'त्राटक' की साधना करता है, उससे यह स्थिति आ जाती है कि वह त्राटक के समय जिस मूर्ति को सामने रखता है चाहे इष्ट को सामने रखता है, चाहे किसी मंत्र को सामने रखता है, उसमें इतना आकर्षण होता है कि दूसरी चीज में प्रियता-अप्रियता का ध्यान कम हो जाता है।

आंख पर ध्यान

दूसरा उपाय है आंख पर ध्यान करना यानी आंखों को देखें। आंख खुली है, आंखों को देखो। जैसे सामने कापियां, डायरियां पड़ी हैं उनको खुली आंख से देखते हैं। साफ-साफ दिखाई देती हैं। उसी प्रकार आंख में देखना शुरू करते हैं। उससे यह अवस्था आ सकती है कि कुछ भी दिखाई नहीं देता। बहुत सारी वस्तुएं सामने हैं, आंखें खुली हैं, पर दिखाई नहीं देतीं। प्रथम प्रयोग में न हो तो इतना तो अवश्य होगा कि फिर आप उन वस्तुओं को गिन नहीं सकते। एक-दो या चार पड़ी हैं, ये गिनी नहीं जा सकती। थोड़ा आभास हो सकता है कि कुछ चीज पड़ी है, पर आप उसको साफ नहीं देख सकते। यह बहुत सुंदर प्रयोग है–आंख में ध्यान करना।

इष्ट का निर्माण

तीसरा प्रयोग है–एक अपना इष्ट बनाएं। साधक के लिए जरूरी होता है इष्ट का निर्माण करना। जो साधक अपने इष्ट का निर्माण नहीं करता, वह

बार-बार स्खलित होता है। इष्ट का निर्माण करना हो तो बहुत सुंदर बतलाया गया है कि पूरक के साथ पहले इष्ट को अपने भीतर ले जाओ और फिर कुंभक करो। श्वास को रोककर, फिर उसको देखते रहो। श्वास चलता रहे और उस इष्ट को देखते रहें। आंखें बंद हैं। इष्ट को देखते रहने से वस्तु के प्रति होने वाली राग-द्वेष की जो परिणति है, वह कमजोर हो जाएगी।

प्रतिपक्ष भावना

प्रतिपक्ष भावना का भी एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है। सूत्रकृतांग की वृत्ति में इसका बहुत अच्छा वर्णन है। योग दर्शन में भी प्रतिपक्ष भावना का वर्णन है। हमें एक चीज से निवृत्ति पानी है तो प्रतिपक्ष की भावना करनी होगी। क्रोध से छुटकारा पाना है तो हमें क्षमा का अभ्यास करना होगा। सीधी क्रोध पर चोट मत करो कि क्रोध छूट जाए। प्रतिपक्ष भावना पर ध्यान दो। प्रतिपक्ष भावना का ध्यान करने से वह पक्ष अपने आप कमजोर हो जाएगा। जब हमने वीतराग को अपना इष्ट बना लिया, तब राग-द्वेष न करें। हर पूरक के साथ हम संकल्प करें कि वीतराग की प्रतिमा भीतर जा रही है, फिर उसको भीतर स्थापित कर दें। अब आंख बंद कर उसे देखने का अभ्यास करें।

यह प्रयोग अगर हम बीस मिनट, आधा घंटा या एक घंटा तक करें, फिर बाह्य वस्तु के प्रति होने वाला आकर्षण अपने आप कमजोर हो जाएगा। वह इतना शक्तिशाली नहीं रहेगा। इन्द्रियों का अपना आकर्षण होता है। इसीलिए जहां प्रिय है, वहां आकर्षण होता है और जहां अप्रिय है, वहां विकर्षण होता है, घृणा पैदा हो जाती है।

जब हम अप्रिय वस्तु को देखें तब हम वीतराग का आक्षेप करें। आक्षेप का मतलब है भीतर में स्थापित कर लेना। भीतर में वीतराग को स्थापित कर लें। यह प्रयोग बाह्य वस्तु के आकर्षण या विकर्षण को कम करने का या छोड़ने का एक बहुत सुंदर और अनुभूत प्रयोग है। इससे फिर बाहर में आकर्षण नहीं रहता, चाहे खाने की वस्तु हो या पहनने की वस्तु हो वह सबको देखता है, पर राग और द्वेष नहीं होता। उसे लगता ही नहीं कि भीतर कुछ हो रहा है।

हम शक्यता पर विचार कर रहे हैं। न देखें यह तो शक्य नहीं है, वस्तुओं को देखना तो पड़ेगा। हमारा सारा व्यवहार उसी से चलता है, किंतु देखने पर भी अप्रिय में द्वेष और प्रिय में राग न हो, यह निर्देश है। यह कैसे छूटे? यहां

हमें प्रयोग का आलंबन लेना होगा। बिना आलंबन के यह शक्य नहीं है। जो व्यक्ति आलंबन का प्रयोग नहीं करता, वह इसकी साधना नहीं कर सकता। वह चाहे हजार बार पढ़ ले, फिर भी राग-द्वेष कम नहीं होगा। राग-द्वेष पूर्णतया छूट जाए, यह संभव नहीं है, पर तारतम्य होगा। जो प्रयोग करता है, उसका राग-द्वेष इतना कम हो जाएगा कि वह राग-द्वेष उसे सताएगा नहीं। जो यह प्रयोग नहीं करता वह बाहर की कोई अच्छी चीज देखता है, स्मृति में बैठ जाती है और बार-बार उसकी याद सताती है। जो प्रयोग करते हैं, उनकी स्मृति में वह प्रतिमा रहती है। जो वीतराग का ध्यान करता है उसके भीतर वीतराग की प्रतिमा रहती है। उसके सामने दूसरी बातें गौण हो जाती हैं तो वह उसे सताती नहीं है, दुःख नहीं देती, विचलित नहीं करती। दशवैकालिक निर्युक्ति का यह निर्देश है कि श्रामण्य का अवतरण कैसे हो? श्रामण्य होना कोई सरल बात तो नहीं है। बिना अभ्यास किए, बिना प्रयोग किए, श्रामण्य शब्दों में तो टिक जाता है, नियमों में भी टिक जाता है, किंतु वह आत्मा का स्पर्श नहीं करता। दशवैकालिक का यह पद बहुत महत्त्वपूर्ण है–

कहं नु कुज्जा सामण्णं जो कामे न निवारए।
पए पए विसीयंतो संकप्पस्स वसं गओ॥

जो कामों का निवारण नहीं करता, उसका श्रामण्य कैसे टिक सकता है? निर्युक्तिकार ने बताया कि धृति का अभ्यास करो। धृति है तो श्रामण्य टिक जाएगा। धृति का मतलब धैर्य नहीं है। यहां धृति का अर्थ है–मन का नियंत्रण करने वाली शक्ति। हमने धृति का अभ्यास कर लिया और मन व इन्द्रिय को नियंत्रित करने का अभ्यास कर लिया तो हमारा श्रामण्य सुरक्षित रहेगा। अन्यथा श्रामण्य दूज के चांद जैसा रह जाएगा। जो धृति का अभ्यास करते हैं, उनका श्रामण्य पूनम के चांद जैसा निर्मल बन जाता है।

इसके लिए पहला उपाय बताया–त्राटक, दूसरा उपाय है–आंखों में ध्यान करना और वीतराग की प्रतिमा की स्थापना करना। एक और उपाय है, जिसमें इष्ट की प्रतिमा स्थापित नहीं करते बल्कि हर प्रवृत्ति में इष्ट को देखते हैं। जैसे कुछ वैष्णव भक्त होते हैं, जो गुरु का मंत्र ले लेते हैं। जैसे ॐ अर्हम् मंत्र ले लिया। अब वह जहां भी देखे उसमें ॐ अर्हम् को देखे, हर जगह ॐ अर्हम् को फैला हुआ देखे। प्रभु के रूप में इष्ट मंत्र को देखे। पुस्तक को भी

देखो 'ॐ अर्हम्' मेरे सामने है। बस फिर उस पुस्तक को पढ़ो। पुस्तक में अगर उत्तेजना देने वाली वस्तु है तो भी उत्तेजना पैदा नहीं होगी, क्योंकि सामने ॐ अर्हम् है। सुनने की बातों में ध्यान नहीं देकर एकमात्र 'ॐ अर्हम्' को सुनो।

जब इष्ट मंत्र को भूल जाते हैं, तब प्रमाद होता है। अतः चाहे इष्ट की प्रतिमा हो, चाहे इष्ट का मंत्र हो, हम दोनों को सामने रखें, उसका अभ्यास करें। अभ्यास एक दिन में नहीं होगा। लंबे समय के अभ्यास के बाद हम देखेंगे 'ॐ अर्हम्' मंत्र दिखाई दे रहा है। कहीं भी देखो वह 'ॐ अर्हम्' दिखेगा और बाद में दूसरी चीज दिखेगी फिर हमारी राग-द्वेष की जो परिणति है वह कमजोर हो जाएगी। इतना अभ्यास होने के बाद हमारे लिए शक्य बन जाएगा कि हम शब्द सुनेंगे, पर उसमें राग-द्वेष के भाव नहीं आएंगे।

इष्ट की साधना करें

दृश्य वस्तु चाहे वह कोई व्यक्ति हो, चाहे पशु, चाहे मकान, चाहे कोई खाद्य वस्तु हो, कुछ भी हो, तत्काल उस पर राग या द्वेष आ जाता है। अच्छी वस्तु देखी, तत्काल उसको खाने का मन हो जाता है। खराब वस्तु देखी तो उसे दूर करने का मन हो जाता है। ऐसे भी साधक होते हैं कि अपने आस-पास ही भिक्षा के लिए जाते हैं। एक-दो घर में जाकर अच्छा भोजन ले आते हैं।

यह सब स्खलना क्यों होती है? स्पष्ट मान लो कि जिस साधक ने कोई इष्ट की साधना नहीं की है और केवल वस्तु की साधना की है, तब ऐसी स्खलना होती है। राग-द्वेष तभी छूट सकते हैं, जब इष्ट की साधना करें। इसलिए इस बात पर ध्यान दें कि क्या आपने इष्ट बनाया है?

अपना इष्ट चाहे गुरु का आकार हो, चाहे मंत्र का आकार हो। इस विषय में योग के बहुत सारे साधक वैष्णव भक्त हैं। हम उन्हें साधु मानें या न मानें, किंतु एक अर्थ में पहुंचे हुए होते हैं। जैसे–हमने देखा स्वामी विद्यानन्दजी को, जो वेदान्त के संन्यासी थे। ऐसा पहुंचा हुआ संत मैंने अपने जीवन में कभी नहीं देखा। उनमें कहीं भी आसक्ति नहीं देखी। प्रिय, अप्रिय, राग-द्वेष कुछ भी नहीं था। सचमुच जो व्यक्ति साधना की दिशा में लग जाते हैं, वे राग-द्वेष से मुक्त होने की दिशा में प्रस्थान कर जीवन को आनंदमय बना लेते हैं।

40. अनुशासन : एक उपाय

अनुशासन एक उपाय है। हर आदमी को उपाय की खोज करनी चाहिए। जीवन में समस्याएं आती हैं। विघ्न और बाधाएं आती हैं। अगर उपाय जानता है तो आदमी कठिनाइयों से बच जाता है, उपाय नहीं जानता तो समस्याओं से घिर जाता है। आदमी ने उपाय की खोज की है। कपड़े की खोज की, कपड़ा एक उपाय है। इससे सर्दी, गर्मी से बचाव होता है। मकान भी एक उपाय है। आदमी गर्मी, सर्दी और वर्षा से बच जाता है। हम अपने परिपार्श्व में होने वाली प्रवृत्तियों का लेखा-जोखा करें तो लगेगा कि सुरक्षा के लिये उपाय खोजे गए हैं। भूख लगी, रोटी उसको शांत करने का उपाय है। प्यास लगी तो उसे बुझाने का पानी एक उपाय है।

ऐसा तो कोई आदमी नहीं करता कि लगती तो भूख है और पानी पीता है, क्योंकि वह उपाय को जानता है। लगती प्यास है और रोटी खाता है, ऐसा कभी नहीं करता।

शरीर पर अनुशासन करो

हर वस्तु का अपना एक उपाय है। धर्म भी एक उपाय है। अनुशासन भी एक उपाय है। हम उपाय को समझें। अनुशासन का प्रयोग करें। हमें अपने मन पर अनुशासन करना है। सबसे पहले शरीर पर अनुशासन करें। यदि शरीर की चंचलता को कम कर सकते हैं तो धर्माराधना का पहला सूत्र आपको मिल गया। आगमों में तीन गुप्तियां बतलाई गई हैं–मनोगुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति। गुप्ति हमारा अनुशासन है। यह हमारी सुरक्षा का प्राकार है। पहले काय गुप्ति यानी शरीर की गुप्ति करें। कैसे करें शरीर पर अनुशासन? दसवेआलियं में बताया गया है। सबसे पहले–हत्थसंजए–हाथ का संयम करो।

हाथ का संयम

हाथ पर अनुशासन करो, हाथ को साधो और उसे सुझाव दो। हमारे ज्ञान तंतु, हमारे सुझाव का बहुत आदर करते हैं। हाथ को सुझाव दो कि हाथ के द्वारा कोई भी गलत काम नहीं होगा। सर्वतः प्राक् हाथ का संयम करो।

हाथ के संयम का अर्थ है–एक-एक अंगुली का संयम और अंगूठे का संयम। हाथ हमारे विकास का बहुत बड़ा माध्यम है। आप स्वयं अनुभव करें कि मनुष्य ने जो विकास किया है उसका माध्यम है हमारा हाथ। पशु के पास हाथ नहीं, इसीलिए वह विकास नहीं कर सका। अगर हाथ होता तो पशु भी मकान बना लेता, अन्य काम भी कर लेता। वह चौपाया प्राणी है। दोनों हाथ उसके चलने के काम आ गए, इसलिए वह हाथ से होने वाले काम नहीं कर सकता। न रोटी पका सकता और न पानी ला सकता। मनुष्य को हाथ मिला है और हाथ से उसने बड़े-बड़े काम कर लिए। उपनिषद् का एक सुंदर वचन है–जिसके पास अंगुलियां हैं, उसे और क्या जरूरत है? दस अंगुलियों से बहुत बड़े-बड़े काम होते हैं।

अनेकांत का सूत्र

अंगुलियों में भी अनेकांत है। अगर आदमी की अंगुलियों की रचना की तरह यदि अंगूठा भी सीधा होता तो विकास नहीं होता। अंगूठा अंगुलियों की विपरीत दिशा में है। विपरीत होना कोई शत्रुता का लक्षण नहीं है, उपयोगिता है। सब एक ही दिशा में होते तो हमारा कोई काम नहीं होता। हम लिखते हैं। अंगूठा विपरीत दिशा में है, अंगुलियां सीधी हैं, तो हम लिख सकते हैं।

अहिंसा की दृष्टि से अनेकांत का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है, विपरीत दिशा में जाने वाले को शत्रु मत मानो, उपयोगिता मानो। प्रतिपक्ष को शत्रु मत मानो, उसको उपयोगी मानो। तुम सोचते हो वैसे ही सब सोचें तो दुनिया का काम भी नहीं चलता। विपरीत दिशा में सोचनेवाला मिले, तभी अच्छा होता है।

प्राचीन इतिहास को देखें। राजा ने एक बात कही और मंत्री ने असहमति प्रकट कर दी कि महाराज! ऐसा नहीं होना चाहिए। ऐसा नहीं हो सकता, इस पर आप चिंतन करें। विपरीत विचार आया, चिंतन का मौका मिला और काम ठीक हो गया। विचार की स्वतंत्रता के लिए विपरीत दिशा में सोचना बहुत आवश्यक होता है।

धर्म भी अनुशासन है

सब अपने-अपने ढंग से सोचें, फिर विचारों में सामंजस्य और समन्वय करने की बात करें, किंतु उसे शत्रु न माने। यह अहिंसा का बहुत बड़ा पहलू है। अपने से भिन्न व्यक्ति को शत्रु मत मानो। चाहे उसकी जीवनशैली भिन्न है, खाने का प्रकार भिन्न है, सोचने का प्रकार भिन्न है, पूजा-पाठ का प्रकार भिन्न है, रहन-सहन का प्रकार भिन्न है। उस भिन्नता को सृष्टि का सौंदर्य मानो न कि शत्रुता। बस भिन्न विचार आया और आदमी एकदम तमक उठता है।

यह हिंसा को जन्म देने वाली बात है और वह व्यक्ति धर्म के मर्म को नहीं समझता, अनुशासन को नहीं समझता। अनुशासन वहीं सफल होता है, जहां व्यक्ति अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार की स्थिति को सहन करे। मैं चाहूं वैसा न हो तो मैं नाराज हूं। इसका मतलब है, सचाई को नहीं समझा। जहां यह एकांगी दृष्टिकोण होता है, वहां लड़ाई-झगड़े शुरू हो जाते हैं। अनुशासन को समझने का प्रयत्न करें। धर्म को एक अनुशासन के रूप में समझें तो शायद सामाजिक सौहार्द, मैत्री, प्रेम बढ़ सकता है और जीवन आनंदमय बन सकता है।

हाथ है विकास का माध्यम

हाथ का अनुशासन हमारे विकास का माध्यम बना है। हाथ का संयम करना छोटी बात लगती है। हाथ को भी अनावश्यक मत फैलाओ। हाथ से निकम्मा काम मत करो। हाथ को भी स्थिर रखो। तुम बैठे हो कोई काम नहीं है, तो ज्ञानमुद्रा का अभ्यास करो। इससे हाथों का संयम हो जाएगा। कुछ लोगों की अकारण ही अंगुलियां चलती रहती हैं। जमीन पर बैठे हैं, वहां पर भी लिखते रहते हैं। लिखने का कोई प्रयोजन नहीं है। वे नहीं जानते कि इससे कितनी ऊर्जा नष्ट होती है, आदत हो जाती है। कभी-कभी पानी में भी लिखने लग जाते हैं। अनावश्यक प्रवृत्ति से कर्म का बंध भी होता है। हाथ का प्रयोग काम हो तो करो, अन्यथा हाथ का संयम कर दो।

हाथों की मुद्रा

हाथ जोड़ना हाथ का संयम है। जब दोनों हाथ जुड़ेंगे, हमारी ऊर्जा का संयम हो जाएगा। बैठने की भी कला है, हाथ को रखने की भी कला है। हाथ

को कैसे रखें? आप बैठे हैं। हाथों को घुटनों के सहारे नीचे लटका दिया, इससे आपकी ऊर्जा भी नीचे जा रही है। अंगुलियां सदैव ऊपर की ओर रहनी चाहिये। ऊर्जा का व्यय नहीं होगा, प्राण-शक्ति बनी रहेगी। यह एक बहुत बड़ा विज्ञान है।

ज्योतिष विद्या में हाथ की रेखाओं के आधार पर जीवन का अध्ययन किया जाता है। मैं ज्योतिष की नहीं, धर्म की बात कर रहा हूं। एक आदमी बैठा है और उसके हाथ कैसे हैं, इस बात को देखकर पता लग जाएगा कि इसका जीवन कैसा है? हाथ सूचना देनेवाला है, उससे जानकारी मिल जाएगी।

बहुत चंचल है तो हाथ एक प्रकार का होगा। चंचलता कम है तो हाथ की मुद्रा अन्य प्रकार की होगी। हाथ की मुद्रा पर बहुत कुछ निर्भर है। हाथ पर भी हमारा अनुशासन रहे, यह वांछनीय है। हाथ का संयम करने के लिए मुद्रा का प्रयोग किया जा सकता है। योग में एक मुद्रा है–अभय मुद्रा। इस मुद्रा से आदमी का भय दूर हो जाता है या कोई भी महान आत्मा होती है और वह सबको अभय देना चाहती है, उसकी मुद्रा अभय की मुद्रा बन जाती है। हाथ का संयम होने से अंगुलियों पर अनुशासन हो गया। अंगुलियों का काम दोनों तरह का होता है। गलत काम भी अंगुलियों से होता है और अच्छा काम भी अंगुलियों से होता है। एक स्त्री की तर्जनी अंगुली किसी के द्वारा कट गई। उसने दस हजार रुपये का हरजाना मांगा। न्यायालय में केस गया।

जज ने कहा–इस आदमी के कारण तुम्हारे हाथ की अंगुली कट गई, पर बहन जी! दस हजार रुपये तो बहुत ज्यादा होते हैं। बाएं हाथ की तर्जनी अंगुली है, इसके दस हजार कैसे?

वह बोली–जज साहब! आप जानते नहीं, इसी के द्वारा तो मैं मेरे पति को नाच नचाती थी, वह कट गई तो भला मेरा सारा काम बंद हो गया। यह अंगुली ही सबको नचाने की अंगुली है, किसी को चलाना हो तो इसी से चलाया जाता है।

अगर आप अध्यात्म में प्रवेश करना चाहते हैं तो अध्यात्म जीवन में सीधा नहीं आएगा, धर्म सीधा नहीं आएगा। उसके लिए उपाय करना होगा। सीधा कह देते हैं सामायिक करो। यह निर्देश नहीं देते कि सामायिक कैसे करना

चाहिए? उपाय को, विधि को नहीं जानते तो क्रिया का जो फल मिलना चाहिए शायद दस प्रतिशत भी मुश्किल से मिलता है। विधि को जान लें तो सौ प्रतिशत नहीं तो अस्सी-नब्बे प्रतिशत तो फल मिल सकता है। सबसे महत्त्व की बात है कि कैसे करें?

एक व्यक्ति बिलोना करना नहीं जानता और उसे बिलोना करने बिठा दिया। मक्खन नहीं निकलेगा, क्योंकि वह बिलोने की विधि नहीं जानता। महिलाएं उपाय जानती हैं। रसोई बनाने का आटा गोंदा और फुलका बना लेती हैं। अगर एक भाई जिसने कभी रसोई नहीं बनाई, उसे रसोई में बिठा दो, निर्देश दो कि आज रसोई बना लो, फुलका बनाओ। वह क्या बनाएगा? वह नहीं बना सकेगा, क्योंकि उपाय को नहीं जानता। हम उपाय को जानें, विधि को जानें, फिर हाथ का संयम करें।

पैर का संयम

पायसंजए–पैरों का संयम करो। पैर का संयम बड़ा अनुशासन है। अगर यह अनुशासन आ जाए तो चोरी, डकैती, अपराध और व्यभिचार की बात के लिए एक पैर भी नहीं उठेगा। हमें पैर का भी संयम करना है। पैर का शरीर में महत्त्वपूर्ण स्थान है। शरीर में सबसे नीचा स्थान पैर का है। हमने नीचे वाले को छोटा मान लिया। किसी के हाथ लग गया तो बुरा नहीं मानता है। पैर लग गया तो गुस्से में आ जाएगा, मेरे पैर लगा दिया। पैर का अंगूठा इतना शक्तिशाली होता है कि जो योग के मर्म को समझने वाला है, वह वंदना भी करेगा तो अंगूठे पर सिर लगाएगा। वह ऊर्जा का स्रोत है। अंगूठे पर सिर लगाने से ऊर्जा मिलती है। अंगूठे पर कोई हाथ न लगाए, पैर न लगाए। यह ध्यान का एक बड़ा महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। अगर आपका मन चंचल है, मन बेचैन है, मन टिकता नहीं है, आप अंगूठे पर ध्यान करें, आपकी समस्या का समाधान हो जाएगा।

सारे अवयव हैं हाथ और पांव में

आजकल ऐक्युपंक्चर और ऐक्युप्रेशर वालों ने एक नई विधि को खोजा है। पूरे शरीर का प्रतिनिधित्व करने वाले सारे अवयव हमारे पैर में हैं, हाथ में हैं। हृदय, गुर्दा, आंख, कान आदि जितने हमारे शरीर के अवयव हैं, सारे पैर में हैं। भगवान महावीर के साधनाकाल की बात है। उन्होंने नौका का प्रयोग किया। नौका से उतर कर नदी के तट पर भगवान जा रहे थे, पीछे से एक ज्योतिषी

आया। उसने देखा–यह पैर किसका है? समझ में नहीं आया। पीछे-पीछे गया और वहां पहुंचा, जहां महावीर खड़े थे। ध्यान से देखा कि यह तपस्वी है। बोला–महाराज! ये पैर आपके हैं? आज तो मेरा ज्योतिष-शास्त्र झूठा हो गया। जिसके ये पैर हैं और पैर में जो रेखाएं हैं, वह व्यक्ति तो पैदल चल नहीं सकता, वह तो कोई चक्रवर्ती का पैर है। अगर ये आपके पैर हैं तो मेरा शास्त्र तो झूठा हो गया।

भगवान ने कहा–तुम नहीं जानते चक्रवर्ती कोरा भूमि पर शासन करने वाला ही नहीं होता, आत्मा पर शासन करने वाला भी चक्रवर्ती होता है। वह धर्म चक्रवर्ती होता है, तब उसके सारी बात समझ में आ गई कि ये पैर धर्म चक्रवर्ती के हैं, भौतिक चक्रवर्ती के नहीं। पैर के आधार पर तो कितने बड़े-बड़े निर्णय लिए गए हैं। हम पैर को कम न मानें। किसी ने प्रमाद से ठोकर लगा दी, उस पर गुस्सा न करें, गालियां न दें। यह सोचें अच्छा है, थोड़ी ऊर्जा मिल गई। अंगूठा लगा है तो सघन ऊर्जा मिल जाएगी।

सूत्रकार ने कहा है–पैर का संयम करो। अनावश्यक मत चलो। हाथ और पैर का संयम होने से पूरे शरीर का संयम हो जाता है। इसका कारण है कि हाथ हमारी प्राणधारा का प्रतिनिधित्व करता है। पांचों अंगुलियों के माध्यम से पांचों प्राणधाराएं हमारे शरीर में प्रवाहित होती हैं। पैरों की पांच अंगुलियां प्रकृति की विचित्र संरचना है। हर प्राणधारा ने अपने अवयवों का निर्माण कर लिया। जब प्राणधाराएं पांच हैं तो पांच अंगुलियां बन गईं। पांच दाएं, पांच बाएं और वैसे ही पैरों में भी प्राणधाराएं हैं। हमें इनका संयम करना है।

सबसे पहले शरीर पर अनुशासन करें। शरीर के एक-एक अवयव पर ध्यान देकर उसे अनुशासित करें। जिस व्यक्ति ने शरीर के अनुशासन को समझ लिया, साध लिया, वह धर्म के क्षेत्र में आगे बढ़ सकता है। सामायिक में बैठ गया, शरीर में हलन-चलन हो रही है, पूरा लाभ नहीं मिलता। कोई व्यक्ति सामायिक के साथ कायोत्सर्ग में यह उच्चारण करता है–ठाणेणं मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि अर्थात मैं शरीर को छोड़ रहा हूं, शरीर का व्युत्सर्ग कर रहा हूं। साधना के प्रथम चरण में शरीर का व्युत्सर्ग किया जाता है। शरीर का विसर्जन कैसे किया जाए? शरीर को त्यागने की पहली कक्षा है, शरीर का स्थिर हो जाना। ध्यान करें तो हमारा शरीर स्थिर रह सकता है। जयाचार्य ने लिखा है–तन चंचलता मेट ने,.... किधो है मन मेरु समान के।

शरीर की चंचलता को समाप्त कर, मन को मेरु के समान अडोल बना लिया। शरीर की चंचलता को कम करने की कला नहीं है तो मन की चंचलता को कभी कम नहीं किया जा सकता। हमारी साधना और धर्माराधना की चाबी है शरीर का अनुशासन। हम शरीर पर अनुशासन करें। आज विज्ञान के कारण शरीर के अनेक रहस्य हमारे सामने आ गए। आज के शरीर-शास्त्र को पढ़ने वाला, एन्डोक्राइन सिस्टम को जानने वाला, न्यूरोट्रांसमीटर, हॉर्मोन्स आदि को जानने वाला व्यक्ति बहुत कुछ लाभ उठा सकता है। वह बहुत अच्छा धार्मिक बन सकता है, इसलिए हमें शरीर को समझना है।

धार्मिक लोग सीधे आत्मा तक जाते हैं। सीधे आत्मा को पकड़ने का प्रयत्न मत करो। वह तुम्हारी पकड़ में नहीं आएगी। तुम और भटक जाओगे। पहले शरीर को पकड़ने का प्रयत्न करो। पहले शरीर को साधने का प्रयत्न करो। शरीर के रहस्यों को समझने का प्रयत्न करो। एक मिनट में बहुत बड़ा परिवर्तन हो जाता है। थोड़ा-सा स्विच ऑन किया, इतने में तो एक बड़ा परिवर्तन हो जाता है। हम शरीर के रहस्यों को समझने का प्रयत्न करें।

हमारा एक-एक अवयव कितना उपयोगी होता है। अगर लीवर ठीक काम नहीं कर रहा है तो धर्म में विघ्न आ जाएगा, पाचन ठीक नहीं होगा। इसके साथ-साथ स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो जाएगा। गुस्सा ज्यादा आने लग जाएगा। यह चिड़चिड़ा स्वभाव क्यों बना? यह मत देखो कि कर्म का उदय है, उसके साथ यह भी देखो कि शरीर का कौन-सा अवयव विकृत हो गया, जिससे इस प्रकार का व्यवहार हो रहा है।

Behaviour Psychology मनोविज्ञान की एक शाखा है। उसमें बताया जाता है कि अमुक स्राव हो रहा है, जिसके कारण ऐसा व्यवहार हो रहा है। अमुक ग्रंथि ठीक काम नहीं कर रही है, जिससे ऐसा व्यवहार हो रहा है। शरीर के इन रहस्यों को समझे बिना धर्म के रहस्यों को समझने की बात बड़ी कठिन बात है। धार्मिक लोगों को पहला पाठ अवश्य पढ़ना चाहिए। हम धर्म को शुरू कहां से करें? क ख ग घ ड़ से शुरू करें। धर्म की वर्णमाला से शुरू करें। अगर वहां से शुरू करेंगे तो सबसे पहले आपको शरीर का अनुशासन करना होगा। शरीर का अनुशासन एक उपाय है धर्म की आराधना का। धर्म के द्वारा जो मिलता है, वह किसी पदार्थ के द्वारा कभी नहीं मिल सकता। न पैसे से मिल

सकता, न और किसी वस्तु से मिल सकता है। उसके लिए आपको फिर से पहली कक्षा में प्रवेश पाना होगा। चाहे साठ वर्ष के हो गये, चाहे सत्तर वर्ष के, कोई चिंता नहीं, हमारे संस्कृत-शास्त्र में एक ग्रंथ है–लिंगानुशासन।

लिंगानुशासन के प्रारंभ में ही आता है, जिसने शब्दशास्त्र पूरा पढ़ लिया, किंतु लिंगानुशासन नहीं पढ़ा है तो लिंगानुशासन के लिए अभी वह बच्चा ही है। धार्मिक आदमी को सोचना है कि बहुत बूढ़ा हो गया, किंतु धर्म की विधि को समझने के लिये वह अभी बाल ही है, विद्यार्थी ही है। इस विद्यार्थी जीवन का अनुभव करें।

धर्म की पहली कक्षा को पढ़ने का प्रयत्न करें। वर्णमाला पढ़ने का प्रयत्न करें। धर्म के द्वारा जीवन का वह आनंद मिल सकता है, जिसकी कल्पना किसी पदार्थ के द्वारा, किसी वैज्ञानिक उपकरण के द्वारा नहीं की जा सकती, इसलिए अनुशासन एक उपाय है, उसके रहस्य को समझने का प्रयत्न करें।

41. चैतन्य विकास के सूत्र

शरीर की दृष्टि से हम विचार करें। आदमी कुछ काम बार-बार करता है। पानी बार-बार पीता है, श्वास बार-बार लेता है और रोटी भी बार-बार ही खाता है। एक जमाना था, जब आदमी एक बार भोजन करता था। फिर दो बार शुरू हुआ, फिर तीन बार। आजकल तो चार-पांच बार का पता ही नहीं है और शायद कुछ लोगों की चाय तो बार-बार पीने की आदत सी हो गई है।

शरीर की दृष्टि से कुछ काम बार-बार किए जाते हैं। हम चेतना की दृष्टि से विचार करें तो ऐसे कौन से काम हैं, जो बार-बार किए जाएं? बार-बार करने के लिए संस्कृत साहित्य का एक अच्छा शब्द है अभीक्ष्ण। अभीक्ष्ण अर्थात बार-बार करो। धर्म की दृष्टि से, साधना की दृष्टि से अथवा चेतना को शुद्ध बनाने की दृष्टि से बार-बार क्या करें?

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग

चेतना को शुद्ध बनाने का पहला सूत्र–अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग। हमारा ज्ञानोपयोग बार-बार होता रहे। ज्ञान की प्रवृत्ति सतत बनी रहती है तो आदमी निकम्मा नहीं रहता, कहीं न कहीं मन लगा रहता है, कहीं न कहीं इन्द्रियां लगी रहती हैं और कहीं न कहीं चिंतन भी लगा रहता है। जब हमारी चेतना आवेश के साथ जुड़ती है तो उसका नाम है क्रोधोपयोग, क्रोध का उपयोग। उस समय हमारी चेतना क्रोध में व्यापृत हो जाती है।

कभी मनुष्य की चेतना अहंकार में व्यापृत हो जाती है, उसे मानोपयोग कहते हैं। कभी छल कपट में व्यापृत हो जाती है, उसे मायोपयोग कहते हैं, कभी लोभ में व्यापृत होती है तो उसे लोभोपयोग कहा जाता है। कभी हास्य में तो हास्योपयोग, कभी भय में तो भयोपयोग और कभी कामवासना में तो

वेदोपयोग कहलाती है। प्रतिक्षण चेतना का चक्र चलता है। अब प्रश्न यह है कि किस विषय में चेतना का व्यापार हो रहा है? चेतना की प्रवृत्ति कहां हो रही है?

क्रोध आदि सारे नकारात्मक भाव हैं, सारे हिंसा को पैदा करने वाले भाव हैं, हिंसामय भाव हैं। यदि हमारी चेतना, क्रोध आदि में व्यापृत होती है और क्रोधोपयोग में समय बीतता है, वह स्वास्थ्य के लिए भी अच्छा नहीं, आत्मा के लिए भी अच्छा नहीं, शुद्धि के लिए भी अच्छा नहीं है। उसका उपाय बतलाया कि अगर तुम स्वस्थ रहना चाहते हो, शांति का जीवन जीना चाहते हो, तो एक काम करो अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग करो। ज्ञानोपयोग का बार-बार प्रयोग करो। रोटी खाई, थोड़ा समय विश्राम किया और ज्ञान की चर्चा में लग गए, अध्ययन में लग गए, स्वाध्याय में लग गए, तत्त्व चर्चा में लग गए तो वह उपयोग ज्ञानोपयोग हो गया।

हर कार्य के अंतराल में शरीर को चलाने के लिए आवश्यक काम किया और फिर हमारा उपयोग ज्ञान में लग गया। जब उपयोग ज्ञान में लगेगा तो फिर अर्थशून्य बातों में नहीं जाएगा। उपयोग जब दूसरी प्रवृत्तियों में लग जाता है तो फिर चिंतन भी वैसा नकारात्मक हो जाता है। बहुत अच्छा निर्देश है बार-बार ज्ञानोपयोग का अभ्यास करो। हमारा मन जब भी खाली हो, ज्ञान में लग जाए। बहुत लोग भजन करते हैं, जप करते हैं और प्रायः जिनका अभ्यास अच्छा हो गया, उनका जप चौबीस घंटा ही चलता है, कभी खाली नहीं जाता।

पुणे के एक पुजारी हैं। वे हमारे भी बहुत निकट हैं। बहुत बार आते हैं। उनको देखते हैं वे बात कर रहे हैं, एक क्षण बीच में रुके और होंठ हिलने शुरू हो जाएंगे। उनका मंत्र जप सतत चलता है। स्वाध्याय, ध्यान, चिंतन में मन बार-बार लगता है तो फिर लड़ाई-झगड़ा करने का अवकाश नहीं रहता है। मन खाली होता है तो लड़ाई-झगड़ा हो सकता है। खाली है तो और कोई गलत काम आदमी कर सकता है, किंतु ज्ञानोपयोग रहे उस अवस्था में यह कलह, कदाग्रह, लड़ाई, झगड़ा करने का मौका नहीं मिलता। एक बहुत सुंदर प्रयोग है अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग।

हम गणित की भाषा में सोचें। चौबीस घंटे में हमारा चित्त कितनी देर तक ज्ञानोपयोग में रहा। उपयोग का मतलब है चेतना को काम में लेना, चेतना का व्यापार। चेतना को हमने सकारात्मक प्रवृत्तियों में कितना काम लिया,

ज्ञानात्मक प्रवृत्तियों में कितना काम लिया और निकम्मी बातों में कितना काम लिया?

एक आदमी गलत योजना बनाना शुरू करता है कि चोरी कैसे करूं? डकैती कैसे करूं? आतंक कैसे फैलाऊं? हत्या कैसे करूं? कितना उपयोग लगाता है, उसमें ही दत्तचित्त हो जाता है। उपयोग का अर्थ है–दत्तचित्त हो जाना। कितने लंबे समय की योजना के बाद वह गलत काम करता है। आतंक फैलाने वाले आतंक फैलाते हैं।

यह कार्य एक दिन में नहीं होता, लंबे समय तक उनकी योजना चलती है, वही ध्यान रहता है, तब कहीं जाकर वे अपना काम करते हैं। जो अपने दिमाग को स्वस्थ रखना चाहता है, तनाव मुक्त रखना चाहता है, शांति से जीना चाहता है, वह अच्छी योजना बनाएगा और उसमें चेतना का नियोजन करेगा। उसके लिए जरूरी है–ज्ञानोपयोग। हमेशा हमारे उपयोग में ज्ञान की बात रहे। जब आवश्यक बात पूरी हुई और हमारा मन ज्ञान में लग जाए, चाहे जप में, स्वाध्याय में, भजन में, पढ़ने में लग जाए, स्मृति में लग जाए, किसी में लगे, किंतु ज्ञान का उपयोग रहे।

समय की सार्थकता का, समय को सफल बनाने का बहुत महत्त्वपूर्ण सूत्र है अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग। जब ज्ञान में हमारा मन बार-बार रमा रहता है उससे विकास होता है। अगर चेतना दूसरे-दूसरे कामों में, प्रवृत्तियों में उलझी रहती है तो फिर ज्ञान का विकास भी नहीं हो सकता। ज्ञान के विकास के लिए भी जरूरी है अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग।

अभीक्ष्ण विगय वर्जन

चेतना को शुद्ध बनाने का दूसरा सूत्र है अभिक्खणं निव्विगइं गओ य–बार-बार सरस भोजन को छोड़ना। एक दिन सरस भोजन किया, दूसरे दिन साधारण भोजन करो। ऐसा भी हो सकता है कि सुबह सरस भोजन किया तो शाम को साधारण भोजन कर लिया। बार-बार प्रयोग करो। बार-बार गरिष्ठ भोजन खाने का वर्जन करो। एक महत्त्वपूर्ण निर्देश है साधक के लिए। शारीरिक बीमारी पैदा करने वाली और मानसिक समस्या पैदा करने वाली जो भोजन सामग्री है उसका प्रयोग न करें। यह बहुत कठिन है। आज भोजन के साथ स्वाद का संबंध जुड़ गया।

आदमी न स्वास्थ्य पर विचार करता है और न किसी अन्य बात पर विचार करता है। केवल स्वाद पर विचार करता है। छोड़ना बड़ा मुश्किल है। एक अच्छा निर्देश दिया गया कि जो स्वस्थ रहना चाहता है, उसे बार-बार विगय का वर्जन करना चाहिए। एक अवस्था के बाद और ज्यादा ध्यान देना चाहिए। चालीस वर्ष का हो गया, शरीर की शक्ति कम होनी शुरू हो गई तो ध्यान देना जरूरी है।

चालीस वर्ष तक तो चढ़ाव है और चालीस वर्ष के बाद उतार शुरू होता है, यह आगम सिद्ध बात भी है और स्वास्थ्य के सिद्धांत से भी सिद्ध बात है। उस समय गरिष्ठ भोजन पर और अधिक ध्यान देना चाहिए। कुछ लोग गरिष्ठ चीजें बहुत खाते हैं, वे चीजें स्वादिष्ट लग सकती हैं, परंतु उससे बीमारियां होती हैं। राजस्थान में पहले लोग जल्दी बूढ़े हो जाते थे और मृत्यु भी जल्दी हो जाती थी, मैं जब दीक्षित हुआ, मैंने देखा हमारे कुछ मुनि थे तीस, पैंतीस वर्ष के या चालीस के बीच में थे, पर हम तो यह समझते थे कि ये बूढ़े संत हैं, बूढ़े साधु हैं। उनका सारा व्यवहार बूढ़े जैसा होता था। कारण कि वही अम्लता प्रधान भोजन था, मिठाइयां, दूध, दही, घी प्रधान भोजन था। क्षार भोजन का अंश भी कम था। बीमारियां भी ज्यादा होती और किसी की पचास-साठ के बीच में मृत्यु होती तो यही कहा जाता कि पूरी उमर पा ली। ज्यादा गरिष्ठ भोजन खाना स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है। यह निर्देश साधु-साध्वियों और गृहस्थों–दोनों के लिए भी उतना ही जरूरी है।

अगर विकास करना चाहें तो सुंदर निर्देश है–बार-बार ज्ञानोपयोग करें, निकम्मी बातों में न जाएं। अगर स्वस्थ रहना है और अच्छा जीवन जीना है तो रोज गरिष्ठ भोजन मत खाओ और दिन में भी बार-बार मत खाओ। सुबह भी हलुवा खाया, दोपहर में खाया, शाम को भी खाया, इतना घी खाया, खाते ही चले गए, किंतु ऐसा मत करो, विगय वर्जन करते रहो, बीच में लंघन करते रहो।

डॉक्टरों का भी मुख्य रूप से ध्यान जर्म्स और वायरस पर जाता है, क्योंकि ये बीमारी में निमित्त बनते हैं। भोजन भी बीमारी का एक बड़ा कारण है। इस पर ध्यान कम दिया जाता है। साठ-सत्तर वर्ष का हो गया, खूब मावा खाता है, मलाई भी खाता है, तली हुई चीजें भी खाता है, कचौड़ी, पकोड़ा भी खाता है और गरिष्ठ मिठाइयां भी खाता है, तो फिर शरीर कैसे काम करेगा और दिमाग भी कैसे काम करेगा?

दिमाग को भी बहुत संतुलित भोजन की जरूरत है। जो पोषक हो, पेट पर भार डालने वाला न हो, ऐसे भोजन की जरूरत रहती है। एक अच्छा निर्देश सूत्र है–अभिक्खणं निव्विगइं, गओ य–बार-बार विगय का वर्जन करो। दूध, दही, घी, मिठाइयां–ये सारी विगय कहलाती हैं। यह स्वाभाविक भोजन नहीं है, इनका बार-बार वर्जन करो। लोग कहते हैं दूध खूब पियो। आजकल हृदय रोग विशेषज्ञ कहते हैं कि ज्यादा दूध, मक्खन आदि खाना हृदय रोग का एक कारण है, इसलिए यह विवेक जरूरी है कि जो भी गरिष्ठ चीजें हैं वे कैसे, कितनी मात्रा में खानी चाहिए, कब खानी चाहिए और कब नहीं खानी चाहिए। पचास-साठ वर्ष के बाद तो भोजन पर पूरा ध्यान देना चाहिए। बार-बार विगय वर्जन का प्रयोग करना चाहिए। आज मैंने अमुक द्रव्य खाया, कल नहीं खाया तो शरीर पर क्या असर रहा, मन कितना शांत रहा और क्या परिणाम आया?

आहार के बारे में बार-बार ध्यान दो। प्रतिदिन ध्यान दो। जितना हल्का भोजन होता है, वह लाभदायी होता है और यह भारी-भरकम भोजन उतना लाभदायी नहीं होता। एक स्वाद की धारणा बनी हुई है, इसलिए आदमी खा लेता है, पर जितना खाता है, उतना शायद आवश्यक नहीं है। कम खाएगा तो अधिक अच्छा रहेगा। पोषण पूरा होना चाहिए, पर मात्रा में ज्यादा न हो। हम इस दूसरे सूत्र पर विचार करें कि अभिक्खणं निव्विगइं गओ य बार-बार हम भी विगय का वर्जन करें। एक संघीय मर्यादा है, इसलिए विगय का वर्जन होता है और एक अपने विवेक से होता है कि मुझे कब खाना चाहिए, कब नहीं खाना चाहिए। तपस्या का पारणा किया और पारणे में हलुवा खा रहा है, तो फिर तपस्या का लाभ कम हुआ, स्वास्थ्य के लिए भी बाधा हो गई।

तपस्या का नियम है पारणा हल्का हो। आगम साहित्य में और भाष्य साहित्य में एक बहुत सुंदर निरूपण किया गया है। लंबी तपस्या की बात करें तो पहले मूंग का पानी, जौ का पानी पिलाया, ऐसे धीरे-धीरे बढ़ाते गए। काफी दिनों के बाद साधारण भोजन में आता है। तपस्या करना जितना आवश्यक है, उससे भी अधिक आवश्यक है पारणे में खाने का संयम। तपस्या एक कला है तो पारणा करना उससे भी बड़ी कला है। तपस्या करते हैं पारणा ठीक नहीं करते तो और समस्या पैदा हो जाती है, इसलिए इस दृष्टि से भी विचार करना चाहिए कि बार-बार विगय का वर्जन करें।

अभीक्ष्ण कायोत्सर्ग

चेतना को शुद्ध बनाने का तीसरा महत्त्वपूर्ण सूत्र है अभिक्खणं काउस्सग्गकारी। बार-बार कायोत्सर्ग करें। कुछ लोग इस बारे में बहुत कम जानते हैं। एक व्यक्ति ने लिखा है कि कायोत्सर्ग तो प्रतिक्रमण के बाद करना चाहिए, ऐसे कायोत्सर्ग करना अच्छा नहीं, विधान नहीं है। शायद उन्हें पूरा ज्ञान नहीं होता। कायोत्सर्ग तो बार-बार करना चाहिए। प्रतिक्रमण तो दिन में एक बार, दो बार करते हैं, पर कायोत्सर्ग तो बार-बार करना है। कायोत्सर्ग स्वस्थ रहने की कला और कार्य करने की कला है। कार्य करना शुरू किया, दो घंटा हो गया, अगर दस मिनट कार्य को रोककर कायोत्सर्ग कर ले तो दो घंटे में जो श्रम हुआ, शक्ति का व्यय हुआ, ऊर्जा का व्यय हुआ और जो मस्तिष्क में तनाव आया, दस मिनट के कायोत्सर्ग में सब समाप्त और बिल्कुल फ्रेश हो जाएगा, ताजगी आ जाएगी।

मैं तो प्रतिदिन कायोत्सर्ग करता हूं। सुबह आगम शब्द कोष का काम करते हैं, उसमें भी काफी एकाग्र होना होता है, काफी ध्यान देना होता है। जहां ध्यान देंगे वहां थोड़ा स्नायविक तनाव तो होगा ही, यद्यपि वह तनाव नहीं होता, परंतु परिश्रमजनित तनाव तो होता ही है। उसके बाद फिर ग्रंथ लेखन का काम होता है। लगभग डेढ़ घंटे तक निरंतर एक शोध का-सा काम चलता है और उसके बाद सीधे अगर व्याख्यान में आ जाएं तो समस्या पैदा होती है। कार्य के बाद दस-पन्द्रह मिनट कायोत्सर्ग कर लेते हैं, फिर व्याख्यान में जाते हैं। कायोत्सर्ग किया 'अतीतम् व्यतीतम्', अतीत व्यतीत हो गया। अतीत छूट गया, हम वर्तमान में आ गए। कायोत्सर्ग हर प्रवृत्ति के साथ जुड़ा हुआ है। जो व्यक्ति प्रवृत्ति और निवृत्ति का सम्यक् उपयोग करना जानता है, वह धर्म को भी जानता है, स्वास्थ्य को भी जानता है और मानसिक प्रसन्नता को भी जानता है। यदि निरंतर चक्का चलता रहे तो फिर कार्य व्यवस्थित नहीं होगा। कार और बस चलती है तो बहुत लंबी चलती है, उसे सर्विस में देना होता है। घोड़ा बहुत तेज चलता है, पर अगर उसको विश्राम न दो तो घोड़े को भी फिर बदलना पड़ेगा। हर प्रवृत्ति के साथ विश्राम की बात है।

अंतरिक्ष में पायलट यान चलाते हैं। एक पायलट युवक आया। उससे पूछा कि तुम कितने घंटे अंतरिक्ष में यान चलाते हो? क्या चलाते ही रहते

हो? नहीं, ऐसा नहीं है, लगभग छह-सात घंटे के बाद हमारा परिवर्तन होता है, दूसरा आ जाता है और हम विश्राम में चले जाते हैं। श्रम और विश्राम, प्रवृत्ति और निवृत्ति–ये सब कायोत्सर्ग के रहस्य हैं। कायोत्सर्ग करें, शरीर को शिथिल कर दें और साथ-साथ मन को भी शिथिल कर दें। केवल शरीर का ही शिथिलीकरण नहीं, मन का भी शिथिलीकरण हो और वाणी का भी शिथिलीकरण हो।

वीतराग स्तोत्र में बताया गया–प्रभो! आपने मन के शल्य को निकाल दिया। बहुत बड़ी बात है शल्य को निकाल देना। प्राचीन काल में लड़ाई में कोई बाण का टुकड़ा या भाले का टुकड़ा भीतर रह जाता तो वह समस्या पैदा करता। महावीर ने मन के शल्य का निराकरण कर दिया। तीनों प्रकार की चेष्टा–मन की चेष्टा, वाणी की चेष्टा और शरीर की चेष्टा, तीनों प्रवृत्तियों का एकदम संहरण कर लिया। मन खाली, वचन भी निष्क्रिय, शरीर भी निष्क्रिय बना लिया। उस अवस्था में कायोत्सर्ग की साधना की और भीतर के शल्य सारे बाहर निकल गए। प्रवृत्ति में उन्हें बाहर निकलने का मौका नहीं मिलता। जब हम निवृत्ति करते हैं, प्रवृत्ति को बंद करते हैं, उस समय भीतर की बुराइयां बाहर आ जाती हैं।

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग का संबंध है हमारे बौद्धिक विकास और ज्ञान पक्ष के विकास के साथ। विगय वर्जन का संबंध है हमारे शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के साथ और तीसरे कायोत्सर्ग का संबंध है पूरी जीवन चर्या के साथ। दिमाग को श्रम के बाद विश्राम देते रहो तो दिमाग भी बहुत अच्छा काम करेगा और ज्यादा भार ढोया तो वह भी थक जाएगा। वह भी काम करना कम कर देगा। ये तीन निर्देश बहुमूल्य निर्देश हैं। ज्ञान की प्रवृत्ति बार-बार चलती रहे, साधारण भोजन और गरिष्ठ भोजन का संतुलन बना रहे, प्रवृत्ति और निवृत्ति का भी संतुलन रहे। यह संतुलन साधक के लिए जितना महत्त्वपूर्ण है और उपयोगी है, उतना ही एक गृहस्थ के लिए भी उपयोगी है। इन तीन छोटे-छोटे निर्देशों पर हम खूब मनन करें, चिंतन करें। अपनी जीवन चर्या को ऐसा बनाएं, जिसमें इन तीनों निर्देशों को हम विधिवत उतार सकें, इनका पालन कर सकें।

42. साधना में मंत्रों की भूमिका

लक्ष्य की दिशा में गति-प्रगति ही हमारी साधना बन जाती है, आराधना बन जाती है। हमारा लक्ष्य है आत्मा तक पहुंचना। हम आत्मा हैं, पर अभी आत्मा से निकट नहीं हैं, कुछ दूर हैं। आत्मा तक पहुंचना, आत्मा का साक्षात्कार करना या अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना हमारा लक्ष्य है। साधना वही होती है, जो लक्ष्य तक पहुंचाए। साधना भी अनेक प्रकार की होती है। जैन दर्शन की साधना का लक्ष्य है वीतरागता। वीतराग होना अर्थात राग-द्वेष से मुक्त होना। यह बहुत लंबी साधना है, क्योंकि राग और द्वेष का बंधन इतना जटिल है कि एक साथ एक कदम में कोई आदमी वीतराग नहीं बनता। काफी लंबे समय तक, कई जन्मों तक साधना करते-करते कोई वीतराग बनता है।

साधना के लिए अनेक उपाय हैं, अनेक मार्ग हैं। उसके लिए कोई एक मार्ग नहीं होता, कोई एक उपाय नहीं होता, जो सब कुछ प्राप्त कराए। हरिभद्र सूरी ने एक बहुत सुंदर बात लिखी–कर्म विचित्र हैं, कर्मजनित अवस्थाएं भी अनेक हैं। उनको खपाने के, क्षीण करने के उपाय भी अनेक हैं, इसलिए भगवान महावीर ने तप अथवा निर्जरा के बारह प्रकार बतलाए–उपवास से लेकर व्युत्सर्ग तक। उपवास करना बहुत अच्छा है, पर वह पर्याप्त नहीं। सब काम उपवास से नहीं होता। जो काम स्वाध्याय से होता है, वह उपवास से नहीं होता और जो उपवास से होता है, वह स्वाध्याय से नहीं होता। सबका अपना-अपना कार्य है। जो काम ध्यान से होता है, वह उपवास से नहीं होता, इसलिए अनेक उपाय हैं, अनेक आलंबन हैं।

साधना का एक प्रकार है स्वाध्याय

स्वाध्याय के भी अनेक प्रकार हैं–पढ़ना, प्रश्न पूछना, अनुप्रेक्षा करना, धर्मकथा करना, पुनरावर्तन करना। मंत्र का जप भी एक अनुप्रेक्षा है, पुनरावृत्ति

है। यह भी साधना का शक्तिशाली आलंबन बनता है। हमारी एकाग्रता को वृद्धिंगत करता है। साधना के लिए एकाग्रता जरूरी है। मन की चंचलता को कम करना जरूरी है। उसमें मंत्र बहुत सहयोगी बनता है। इसका कारण बहुत साफ है कि हम लोग दो चीजों से बहुत प्रभावित होते हैं–एक शब्द और एक रूप। शब्द आदमी को प्रभावित करता है। एक आदमी को कहें कि आप बड़े सौभाग्यशाली हैं। आप आए, मैं धन्य हो गया हूं। इतने में आदमी प्रसन्न हो जाता है और यह कह दें कि मूर्ख आदमी है, सुबह-सुबह ही घर पर आ गया। बस इतने में दुःखी हो जाता है। शब्द बहुत प्रभावित करते हैं। एक बार किसी व्यक्ति ने स्वामी विवेकानंद से कहा–आप मंत्र का ध्यान करते हैं। इसमें कोई सार नहीं है। विवेकानंद बोले–बेवकूफ! कैसी बात करते हो। कहते ही आगंतुक आगबबूला हो गया। बोला–संन्यासी होकर कैसी भाषा बोलते हो? विवेकानंद ने कहा–अभी तो तू कह रहा था कि शब्दों में क्या पड़ा है और अभी गुस्से में आ गया।

शब्द में शक्ति निहित है। मंत्र में दो बातें होती हैं–एक है ध्वनि का प्रकंपन (Vibration) और दूसरा है भावना का योग। भावना मूल प्राण तत्त्व है। जिस भावना के साथ हम शब्द का उच्चारण कर रहे हैं। हमारे भीतर वैसा ही परिणमन शुरू हो जाता है। परिणमन और प्रकंपन का सिद्धांत बहुत महत्वपूर्ण है। जो कुछ होता है, वह परिणमन से होता है। पारिणामिक भाव परिणमन से होता है। परिवर्तन जितना होता है, परिणमन से होता है। ध्वनि के प्रकंपन एक प्रकार का परिणमन शुरू कर देते हैं और फिर भावना के योग से वह शक्तिशाली बन जाता है। एक उदाहरण की भाषा में कहा गया–

यथा विरेकं कुर्वन्ति, हरीतक्याः स्वभावतः।
भावनावशतः कार्यं, तथा यरलवादयः॥

कोई आदमी हरड़ खाता है। उसमें रेचन की परिणति शुरू हो जाती है। वैसे ही कोई य र ल व अक्षरों का उच्चारण करता है तो वे उच्चारण के प्रकंपन भीतर जाकर अपना कार्य शुरू कर देते हैं। मंत्र का बहुत बड़ा शास्त्र बना हुआ है। वैदिक परंपरा और बौद्ध परंपरा दोनों ने ही मंत्र के महत्त्व को स्वीकार किया है। जैन परंपरा में चौदह पूर्व माने जाते हैं। वे अपूर्व ज्ञान राशि के भंडार हैं। उसमें एक पूर्व है विज्ञान प्रवाद, मंत्रों का प्रवाद।

मंत्र की साधना

दिवाली के दिन बही खाता लिखने की परंपरा है। उसमें गौतम स्वामी की लब्धि यानी गौतम स्वामी का नाम लिखा जाता है। भगवान पार्श्व के समय में भी मंत्र विद्या बहुत चलती थी। पार्श्व के नाम का महत्त्व रहा है। मंत्र विद्या के अनेक कारण हैं, प्रयोजन भी अनेक हैं। जहां जीवन है, वहां बहुत विघ्न-बाधाएं आती रहती हैं। प्रकृति के विघ्न हैं, आकाशीय, खगोलीय विघ्न हैं। ग्रहों के प्रभाव हैं और बुरे विचारों के भी प्रभाव हैं। कुछ तांत्रिक लोग अनिष्ट का प्रयोग करते हैं, उसका भी प्रभाव होता है। आदमी अनेक प्रभावों से प्रभावित होता है। ऐसी स्थिति में कैसे वह अपने लक्ष्य की ओर बढ़े, जिससे उसके जीवन में कोई बाधा, विघ्न न आए और शांति के साथ जीए। इसमें मंत्र की साधना बहुत उपयोगी हो सकती है।

हम लोग प्रेक्षाध्यान के साथ मंत्र का भी प्रयोग कराते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि शब्द नहीं होना चाहिए, केवल मंत्र को देखना चाहिए। देखना भी बहुत अच्छा है। प्रेक्षा का मतलब है देखना। देखना पर्याप्त नहीं है। एक व्यक्ति ध्यान करने आया। ध्यान में उसकी रुचि कम है या योग्यता कम है। उसे सीधा ध्यान नहीं कराना चाहिए। उसे पहले मंत्र का जप कराना चाहिए। जप करते-करते वह एकाग्र हो जाए, उसमें ध्यान करने की अर्हता आ जाए तब उसको ध्यान में ले जाना चाहिए।

जब तक कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या व्यक्ति में प्रधान रहती है, वह ध्यान नहीं कर सकता। उसमें ध्यान की अर्हता नहीं आती। ध्यान की भूमिका आती है तेजोलेश्या से। जिस व्यक्ति में तेजोलेश्या का विकास हो गया, पवित्रता आ गई, वहां ध्यान की अच्छी भूमिका बनती है। ध्यान की अर्हता पैदा करने के लिए मंत्र का जप बहुत जरूरी है।

ध्यान

हम विचार करें मन की एकाग्रता के लिए। मन ध्यान में बाधक बनता है। आदमी ध्यान करने बैठता है, मन इधर-उधर दौड़ता है। जब श्वास के साथ किसी मंत्र का प्रयोग करा दें तो मन की एकाग्रता में बहुत बड़ी सहायता मिलती है। 'अर्हम्' एक छोटा-सा मंत्र है, वह अर्हत् का वाचक है। उसे श्वास के साथ जोड़ दें। कुछ दिनों में एकाग्रता की स्थिति बन जाती है। चित्त एकाग्र

होने लगता है। चंचलता कम हो जाती है। जब मन की चंचलता कम होती है तो उसमें ध्यान करने की भूमिका आ जाती है।

ध्यान के साथ भी मंत्र का प्रयोग चलना चाहिए। प्रेक्षाध्यान शिविर में ध्यान के तीन या चार अलग सत्र होते हैं। उनमें एक सत्र में मंत्र का भी प्रयोग कराया जाता है। सम्यक् विधि को जाना जाए तो मंत्र भी बड़े सहयोगी बन जाते हैं। णमो अरहंताणं नमस्कार मंत्र का पहला पद है। कोई व्यक्ति अपने भीतर अर्हता पैदा करना चाहे तो उसके लिए यह बहुत बढ़िया मंत्र है। इस मंत्र का ज्ञान केन्द्र पर ध्यान कर जप करें। प्रारंभ में संकल्प करें–मेरी अमुक अर्हता बढ़नी चाहिए, इसका विकास होना चाहिए। संकल्प के साथ बैठें और फिर ज्ञानकेन्द्र पर सफेद रंग के साथ णमो अरहंताणं का जाप करें। दो से चार सप्ताह में अनुभव होगा कि मैं जो चाहता था वह हो रहा है।

मूल बात यह है कि मंत्र की ठीक विधि को जानना जरूरी है। जप करते समय हमारा ध्यान चैतन्यकेन्द्र पर रहे और श्वास की गति उसके साथ रहे। श्वास के साथ जोड़े बिना मंत्र शक्तिशाली नहीं बनता। श्वास के साथ एक लय बन जाए और फिर उच्चारण के बाद उसका जो तात्पर्य है, अर्थ है, भाव है वह हृदयंगम हो जाए तो मंत्र बहुत जल्दी अपना फल दे देता है। जैन आचार्यों ने अनेक ग्रंथ लिखे हैं। विद्यानुशासन नामक ग्रंथ दिगम्बर परंपरा में बहुत प्रसिद्ध है। आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य मलयगिरि आदि उत्तरवर्ती अनेक आचार्यों ने मंत्र का प्रयोग किया। उनसे बड़े-बड़े कार्य संपादित हुए, काफी बाधाएं दूर हुईं और अनेक सिद्धियां मिलीं।

मंत्र का प्रभाव

एक व्यक्ति हमारे पास आया। बोला–मानसिक तनाव बहुत रहता है। चिंता बहुत रहती है, बहुत दुःखी हूं। हमने कहा–तुम ॐ क्षौं क्षौं का जाप करो। इसमें सिर्फ तीन अक्षर हैं। उसने जप किया और कुछ समय बाद आया और बताया कि मेरा सारा संकट टल गया। हर मंत्र का प्रभाव निश्चित होता है। अगर हम ठीक तरह से उपयोग करें। कोई भी विघ्न और बाधा आती है और उस समय अगर ठीक प्रयोग किया जाए तो वह विघ्न दूर हो सकता है।

ॐ ह्रीं नमः–यह पार्श्वनाथ और पद्मावती का शक्तिशाली मंत्र है इसकी साधना करने वाला सफलता को प्राप्त करता है। आत्मशुद्धि के लिए नमस्कार

महामंत्र सर्वोत्तम है। णमो अरहंताणं–मंत्र के प्रयोग से अर्हता का विकास होता है। णमो सिद्धाणं–सफलता या सिद्धि प्राप्त करने का मंत्र है। णमो आयरियाणं–आचार कौशल का विकास होता है। णमो उवज्झायाणं–ज्ञान और सुख को वृद्धिंगत करने की औषधि है। णमो लोए सव्वसाहूणं–पवित्रता का प्रतीक है। ये पांचों परमार्थ के पद हैं। एक व्यक्ति को सफल होने के लिए ये पांच बातें बहुत जरूरी हैं–अर्हता जरूरी है, सिद्धि जरूरी है, आचार जरूरी है, ज्ञान-ध्यान जरूरी है और पवित्रता जरूरी है।

ये जीवन की पांच आवश्यकताएं हैं। ये पांच गुणवत्ताएं हैं, विशिष्टताएं हैं। उनके विकास के लिए संकल्पपूर्वक जप किया जाए तो आदमी सफल हो सकता है। मंत्र का प्रयोग करते समय एक ही बात पर ध्यान देना है कि उच्चारण के साथ अर्थ बोध और हमारा तादात्म्य स्थापित होना चाहिए। मंत्र के साथ एकात्मकता हो जानी चाहिए। ऐसी अनुभूति हो कि मंत्र जप करने वाला और मंत्र अलग नहीं है। मंत्र अलग है, इष्ट अलग है, यह भेद प्रणिधान रहेगा, तब तक मंत्र फल नहीं देगा। अभेद प्रणिधान होने पर यानी हम जिसका जप कर रहे हैं, उसके साथ तादात्म्य स्थापित हो जाए, एकाग्रता हो जाए, किसी प्रकार का अलगाव न रहे, तब मंत्र सिद्ध होता है। रामसेन ने ग्रंथ लिखा है–तत्त्वानुशासन। वह बहुत ही सुंदर ग्रंथ है। जिसमें उन्होंने लिखा है कि अगर तुम अपनी शक्ति का विकास करना चाहते हो, सहन करने की शक्ति का विकास करना चाहते हो, तो भगवान महावीर की तस्वीर सामने रखकर आंख बंद कर लो और मानसिक चित्र बनाओ और उनका ध्यान करो।

भगवान महावीर के समय शायद जितने साधक हुए हैं, उनमें सहिष्णुता का उत्कृष्ट उदाहरण दूसरा कम मिलेगा। इतनी सहनशीलता हर व्यक्ति के लिए संभव नहीं है। महावीर का ध्यान करो, उनकी सहिष्णुता का ध्यान करो। तुम्हारी सहन करने की शक्ति बढ़ जाएगी। अगर तुम्हें शारीरिक शक्ति का विकास करना है तो बाहुबली का ध्यान करो, बाहुबली का मानसिक चित्र बनाओ और उनका जप करो, तुम्हारा मनोबल या शारीरिक बल बढ़ जाएगा।

भीतर की पवित्रता

हम जैसा सोचते हैं वैसा परिणमन शुरू हो जाता है। एक वाक्य बहुत सुंदर कहा गया है–जं जं भावं आविसइ तं तं भावं परिणमइ–मनुष्य जिस भाव

में जाता है, उसी भाव का परिणमन शुरू हो जाता है। जो लोग नकारात्मक भाव में रहते हैं, जिनका निषेधात्मक चिंतन रहता है, वे स्वयं निषेधात्मक बन जाते हैं। जो विधायक भाव में रहते हैं, विधायक बात सोचते हैं तो उनका चिंतन भी विधायक बन जाएगा।

बहुत कुछ निर्भर है हमारे भावों पर। हमारे भाव कैसे हैं? हमारा सारे जीवन का संचालन भाव के द्वारा हो रहा है। हमारा भाव विधायक है या निषेधात्मक। बहुत लोग अपनी समस्या प्रस्तुत करते हैं। मन में बुरा विचार आता है, क्योंकि बुरी कल्पना आती है। व्यक्ति चाहता नहीं है, फिर भी आ जाती है। भीतर से जब तक भाव शुद्धि नहीं होगी, तब तक बुरे विचारों को भी नहीं रोका जा सकेगा और न बुरी कल्पना को रोका जा सकेगा। भाव शुद्धि का अभ्यास करने में मंत्र भी हमारा सहयोग करते हैं। मंत्र ऐसे प्रकंपन पैदा कर देते हैं, जो हमारी बुराई को बाहर निकाल कर फेंक देते हैं।

आजकल प्रकंपन का सिद्धांत वैज्ञानिक जगत में बहुत मान्य हो रहा है। जैन दर्शन का मूल आधार रहा है–उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। उत्पाद और व्यय ही परिणमन का सिद्धांत है। आंतरिक प्रकंपनों के द्वारा ही हमारा सारा रूप बनता है। हमारी आकृति दिखाई देती है। यह सब क्या है? प्रकंपनों का पुंज है। ये प्रकंपन दीवाल के परे भी चले जाते हैं। सर्दी के प्रकंपन दीवाल के पार चले आते हैं। कमरे के भीतर भी ठंड आ जाती है। गर्मी में धूप के प्रकंपन भी कमरे में आ जाते हैं, इसीलिए बैठते हैं तो गर्मी लगती है। प्रकंपन के लिए कोई भींत नहीं होती, कोई दीवार नहीं होती, कोई रुकावट नहीं होती, कोई अवरोध नहीं होता। ये इतने सूक्ष्म हैं, इनके लिए सब जगह खुली है, कोई बाधा नहीं है।

मंत्र के प्रकंपन

प्रकंपन पैदा करने में मंत्र हमारा बहुत सहयोग करते हैं। यह एक प्रकार का शास्त्र है कि एक-एक अक्षर के अलग-अलग प्रकंपन होते हैं। 'लं' के अलग प्रकंपन हैं। 'रं' के अलग प्रकंपन हैं। 'वं' का अलग प्रकंपन है। बहुत गर्मी है और अगर आप 'वं वं' का हजार बार प्रयोग करें तो शायद आपका तापमान नीचे आ जाएगा, गर्मी कम हो जाएगी। बहुत सर्दी है और आपको ठंड लग रही है, 'रं' का तैजसकेन्द्र पर ध्यान करें। दस मिनट में शायद एक डिग्री तापमान बढ़ जाएगा और गर्मी बढ़ जाएगी। अलग-अलग प्रभाव है। इसमें रोग निवारण

की भी क्षमता है। मानसिक तनाव को मिटाने की भी क्षमता है। कुछ ऐसे शब्द भी हैं, जो उत्तेजना दे देते हैं, इसलिए मंत्र शास्त्र में ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है। अगर कोई बाधा आ गई, कोई बाह्य उपद्रव हो गया–

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कलिकुण्डदण्डस्वामिन्!

आगच्छ आगच्छ आत्ममंत्रान् रक्ष रक्ष परमंत्रान् छिन्द छिन्द हुं फट् स्वाहा।

इस मंत्र के ऐसे प्रकंपन होते हैं, जो सारे वातावरण को बदल देते हैं और आने वाली कठिनाइयों को दूर कर देते हैं।

मंत्र का एक बहुत बड़ा विषय है, जो साधना के लिए बहुत उपयोगी है। जो प्रेक्षाध्यान की साधना शुरू करें, वे प्रारंभ में 'अर्हम्' का जप शुरू करें। हमारे पुराने आचार्यों ने 'अर्हम्' मंत्र पर बल दिया है। अर्हम् का वलय भी बनता है और वह बाह्य दूषित प्रभावों से बचाता है। हम प्रेक्षाध्यान के प्रारंभ में अर्हम् की ध्वनि करते हैं। अर्हम् के प्रकंपन ध्यान के वातावरण को निर्मित करते हैं। मंत्र ध्यान में प्रवेश करने का एक माध्यम बनता है और इससे एकाग्रता सहज हो जाती है।